दो शब्द और

इस पुस्तक के छपते छपते कितनेक हितैषियों का ऐसा आग्रह हुआ कि मंडल ऑफिस से अब जो भी साहित्य प्रकाशित हो, वह श्री जवाहिर किरणावली के किरणरूप में ही हो उनके आग्रह को मान देकर इस पुस्तक को श्री जवाहिर किरणावली की छठी किरण पुस्तक के प्रारम्भ के पृष्ठ पर छपवाया है परन्तु पीछे से खबर मिली कि छठी किरण दूसरी जगह छप रही है। इस लिये इसे सातवीं किरण जाहिर किया जाता है।

प्रकाशक—
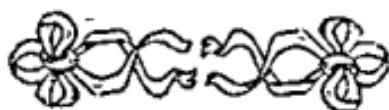
॥ श्री महावीरायनमः ॥

श्री जवाहिर किरणावली

किरण ६

(जवाहिर स्मारक पुष्प प्रथम)

१

वास्तविक शांति

"श्री शांति जिनेश्वर सायब सोलवाँ............."

यह भगवान शान्तिनाथ की प्रार्थना है। भक्त भगवान् से क्या चाहता है? यह कि 'हे प्रभो! तू शांति का सागर है, तू स्वयं शान्ति का स्वरूप है, तेरे में शान्ति का भण्डार भरा है, मैं अशान्त हूं (आशा और तृष्णा के कारण) मुझे शान्ति की आवश्यकता है, अतः मेरे शान्ति रहित हृदय को शान्ति प्रदान कर'।

जिसको शान्ति की जरूरत होती है, जिसके हृदय में अशान्ति भरी पड़ी हो, वही व्यक्ति शान्ति की चाहना करता है। पानी की चाह प्यासा ही करता है। रोटी की मांग भूखा ही रखता है। जिसमें जिस बात की कमी होती है वह उसे दूर करना चाहता है। तदनुसार भक्त भी भगवान् से कहते हैं (प्रार्थना करते हैं) कि 'हे प्रभो! तू शान्ति का

सागर है, किन्तु मुझ में अशान्ति है, अतः मैं तुझ से शान्ति चाहता हूं। यों तो संसार में शान्ति देने वाले अनेक पदार्थ माने हुए हैं। मैंने उन सब पदार्थों को खोजा किन्तु किसी भी पदार्थ में मुझे शान्ति नहीं मिली। वास्तव में संसार के किसी भी जड़ पदार्थ में शान्ति है ही नहीं।

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगने पर रोटी मिलजाने से शांति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। ऐसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि संसार के किसी भी पदार्थ में शांति नहीं है? इसका उत्तर यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते हैं जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ में एकान्तिक और आत्यंतिक शान्ति नहीं है, वह शान्ति दायक नहीं कहा जा सकता। पदार्थों में शान्ति का आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुनः पानी पीने के लिए कहा जाय तो क्या वह पानी पीयेगा? नहीं पियेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुनः पुनः पानी पीने से क्यों इन्कार करता है। दूसरी बात-एक बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी में शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नहीं? फिर पानी पीने का क्या कारण है? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। इसी तरह रोटी खाई थी। क्या भूख पुनः नहीं लगेगी? यदि रोटी से भूख मिट जाती है तो पुनः क्यों खानी पड़ती है? इससे ज्ञात होता है कि रोटी पानी आदि भौतिक पदार्थों में सुख नहीं है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नहीं है किन्तु शान्ति का आभास है। संसार के किसी भी पदार्थ में एकान्तिक या आत्यन्तिक सुख नहीं है। जब भूख लगी हो तब लड्डू कितने प्यारे लगते हैं। यदि भूख न हो तो क्या लड्डू खा सकते हैं। [illegible]

दासी महाराजा विश्वसेन का ध्यान भंग न कर सकी। वह दूर से ही धीरे २ कहने लगी कि भोजन तय्यार है, आप आरोगने के लिए पधारिये। उसका शब्द इतना धीमा था कि वह महाराजा के कान में पड़ा हो या न पड़ा हो। महाराजा का ध्यान भंग न हुआ। वे तो ध्यान में यही सोच रहे थे कि हे प्रभो! मेरे किस पाप के उदय के कारण मेरी प्यारी प्रजा महामारी का शिकार बन रही है। मैं राजा हूं। प्रजा मुझे पिता कहती है, मेरे पैरों पड़ती है। और अपनी शक्ति मुझे सौंपती है। फिर उसका कल्याण कर सकूं तो मुझ पर बड़ा भार चढ़ता है।

राजकोट श्री संघ के सेक्रेटरी मुझसे कहने लगे कि महाराज! आप यहां क्या पधारे हैं, हमारे लिए तो साक्षात् गंगा अवतीर्ण हुई है। मैं कहता हूं कि गंगा तो यहां का श्री संघ है। यहां का संघ या समाज मुझको जो मान बड़ाई प्रदान करता है उससे मुझ पर भार बढ़ता है, मेरी जिम्मेवरी बढ़ती है। यदि मैं यहां की समाज का वास्तविक कल्याण न कर सकूं तो आपका दिया हुआ मान मुझपर भार ही है। आप लोग बैंक में रुपये रखते हैं। बैंक का काम आपके रुपयों की रक्षा करना है। यदि वह रक्षा न करे तो उस पर भार है। बैंक तो कभी दिवाला भी निकाल दे किन्तु क्या हम साधु लोग भी दिवाला निकाल सकते हैं। आप लोग हम साधुओं के लिए कल्याण मंगल आदि शब्द कहते हैं। हमारा ऊपरी साधु भेष देखकर ही आप लोग ऐसा कहते हैं। कल्याण मंगल आदि शब्द कहला कर भी यदि हम आपका कल्याण न करें तो सचमुच हम पर भार चढ़ता है। आपके दिए हुए मान के बदले में हमारा कुछ कर्तव्य हो जाता है और वह आपके लिए कल्याण कार्य करना ही है।

महाराजा विश्वसेन ने इस प्रकार सत्याग्रह या अभिग्रह किया, वह अपने निजी स्वार्थ या हित के लिये नहीं किन्तु जनता के हित के लिए किया था। जन हित के लिए इस प्रकार का दृढ़ निश्चय करके महाराजा परमात्मा के ध्यान में बैठ गये। ध्यान में यह विचारने लगे कि मेरे किस पाप के कारण यह महामारी उपस्थित हुई है और प्रजा मरने लगी है। मेरी किस कमी या असावधानी के कारण प्रजा को यह दुःख सहन करना पड़ रहा है।

जो अपने दुःख को तो दुःख समझता है किन्तु दूसरों के दुःख को महसूस नहीं करता वह धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः धर्म का अधिकारी वह है जो अपने दुःखों की चिन्ता न करे किन्तु दूसरों के दुःखो को दूर करने की कोशिश करे। दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न हो और दुःखी देखकर दुःखी हो वही सच्चा धर्माधिकारी है। यदि आप धर्मात्मा बनने की ख्वाहिश रखते हैं तो यह निश्चय करिये कि हे दीनानाथ! हम हमारा दुःख सहन कर लेंगे किन्तु अज्ञानी लोग जो कि दुःख से घबड़ाते हैं उसको सहन न करेंगे। उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करेंगे। "अत्तसमं मानिजे छप्पि कायं" अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पती और चलते फिरते त्रस जीव इन छः काया के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानना चाहिए। ज्ञानी जन ही यह विचार कर सकता है कि कोई प्राणी दुःख से पीड़ित न हो। अज्ञानी लोग ऐसा विचार नहीं कर सकते।

महाराजा विश्वसेन अन्न जल त्याग का अभिग्रह ग्रहण कर के परमात्मा के ध्यान में तल्लीन होकर बैठे हुए थे। उधर महारानी अचिरा भोजन करने के लिए पतिदेव की प्रतीक्षा कर रही थी। भारतीय सभ्यता के अनुसार पतिव्रता स्त्री पति के भोजन करने के पूर्व भोजन नहीं करती है। गुजराती भाषा में कहावत है कि '**माटी पहली बैयर खाय, तेनो जमारो एले जाय**' आज भी भले घरों की स्त्रियाँ पति के भोजन करने के पहले भोजन नहीं करती किन्तु पति के भोजन कर चुकने पर भोजन करती है।

भोजन करने का समय हो चुका था और भोजन भी तैय्यार था फिर भी महाराजा के न पधारने से महारानी अचिरा ने दासी को बुलाकर उससे कहा कि तू जाकर महाराजा से अर्ज कर कि भोजन तय्यार है। राजा को भोजन निश्चित समय पर ही करना चाहिए ताकि शरीर रक्षा हो और शरीर रक्षा होने से प्रजा की भी रक्षा हो सके। दासी महाराजा के पास गई किन्तु उन्हें ध्यान में तल्लीन देखकर बोलने की हिम्मत न कर सकी। साधारण लोगों को तेजस्वी महापुरुषों की ओर देखने की हिम्मत न होती है। तेजस्वियों के मुख से एक प्रभा मण्डल निकलता है जिसके कारण साधारण आदमी उनकी ओर नहीं देख सकता।

कष्ट सहन करके भी यदि हम दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो इसमें तुम्हारा और हमारा दोनों का कल्याण है। आपके तीर्थङ्कर के माता पिता जगत् के कल्याण के लिए असमल त्याग देते हैं और आप बीड़ी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड़ सकें यह मुझ पर कितना भार है। मैं इस विषय में क्या कहूं। यदि आप लोग बीड़ी पीना छोड़ दें तो मैं कह सकता हूं कि राजकोट का संघ बीड़ी नहीं पीता है।

बीड़ी पीने वाले कहते हैं कि बीड़ी पीने से दस्त साफ आता है। पेट में किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं रहती। पहले से लोग पीते आये हैं अतः हम भी पीते हैं। यदि यह कथन ठीक है तो मैं पूछता हूं कि बहिनें बीड़ी क्यों नहीं पीतीं। उन से यदि बीड़ी पीने के लिए कहा जाय तो वे यही उत्तर देंगी कि हम क्यों पीयें, हमारी बलाय पीये। स्त्रियाँ तो यों कहती हैं और आप लोग पगड़ी बांधने वाले पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं। क्या यह ठीक है। पेट साफ रहता है आदि कथन बीड़ी पीने का बहाना मात्र है। बीड़ी पीने से लाभ नहीं होता। बीड़ी न पीने से किसी प्रकार की हानी होगी तो इस बात की मैं जिम्मेवारी लेता हूं। मैं कहता हूं कि, बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी। भाइयों! बीड़ी पीना छोड़ दीजिये। डाक्टरों का कहना है कि तमाखू में निकोटाइन नामक जहर रहता है जो पेट में जाकर भयंकर हानि पहुंचाता है। डाक्टरों का यह भी कहना है कि एक बीड़ी में जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय तो उससे एक मैंढक मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुंचाने वाली तमाखू से क्या लाभ हो सकता है। हाँ, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बीड़ी पीने लगते हैं। आपके फैंके हुए टुकड़े को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की कोशिश करते हैं कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पिया करते हैं उसमें क्या मजा भरा हुआ है। बीड़ी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीड़ी नहीं पीते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं। जो पीते हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड़ दें। बीड़ी दु:ख का कारण है। [illegible] इससे आपकी आत्मा में [illegible] मैं [illegible] यह [illegible] बहुत [illegible]

है [illegible]

[illegible]

से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैंने हुक्का पीना क्या छोड़ दिया है गोया एक बीमारी छोड़ दी है ।

बीड़ी न पीने से रोग रहता है ! यदि यह बात ठीक मानी जाय तो कई लोग जोकि बीड़ी नहीं पीते हैं, क्या रोगी रहते हैं ? मारवाड़ में विश्नोई जाति लोग रहते हैं, जो न मांस खाते, न दारू पीते, न बीड़ी ही पीते हैं वे बड़े तन्दुरुस्त रहते हैं । वे फुरसद के समय पुस्तकें पढ़ते हैं । किसी भी दुर्व्यसन में नहीं फंसते । इससे वे बड़े सुखी हैं ।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो ! यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ में लिखा हुआ ही है अब हम चाहे जैसे काम किया करें । यह विचार करो कि यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेंगे तो श्रावक नाम कैसे धरायेंगे । आज मैं इस विषय पर थोड़ाही कहता हूं । बीड़ी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा व्याख्यान हो सकता है ।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान दासी की आवाज से नहीं टूटा । दासी की हिम्मत इससे अधिक कुछ करने की नहीं हुई । वह महारानी के पास चली गई । महारानी ने पूछा कि आज महाराजा कहाँ व्यस्त हैं ! दासी ने उत्तर दिया कि आज महाराजा बड़े गंभीर बने बैठे हैं । आज की तरह गंभीर बने हुए महाराजा को मैंने कभी नहीं देखा । मैं उन का ध्यान भंग न कर सकी । यदि उनका ध्यान भंग करना है तो आप स्वयं पधारिये। आप उनकी अर्धाङ्गिना हैं अतः आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भंग कर सकती हैं । मुझ दासी से यह काम नहीं हो सकता ।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार सागर में डूबे हुए हैं । किसी नये मसले पर विचार करते होंगे । उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है ।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वयं महाराजा के पास चली गई । वे गर्भवती हैं फिर भी इस नियम को नहीं तोड़ा कि पति के जीमाये बिना पत्नि नहीं जीम सकती । गर्भवती होने के कारण रानी भूखी भी नहीं रह सकती थी । यदि उनका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखे रहने का प्रश्न था । गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । और गर्भ को भूखा नहीं रखा जा सकता था ।

यहां पर इस प्रसंग में मैं कुछ कहना आवश्यक समझता हूं । मैं [illegible] का पक्षपाती हूं । लेकिन गर्भवती स्त्री [illegible] करती है यह मैं ठीक नहीं [illegible]

आपके कर्त्तव्य में हिस्सा बटाने के लिए रानी हूं। जो जवाबदारी आपके सिर पर है वह मेरे सिर पर भी है। सीता को वनवास करने के लिए किसी ने नहीं कहा था। न सीता पर वनवास करने की जिम्मेवारी ही थी। फिर भी सीता वन गई थी। क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि जो जवाबदारी मेरे पति पर है वह मुझ पर भी है। अतः जिस प्रजा को आप पुत्रवत् मानते हैं वह मेरे लिए भी पुत्रवत् है। जो प्रतिज्ञा आपने ली है वह मेरे लिए भी है।

रानी का कथन सुनकर महाराजा ने कहा कि महारानी आप गर्भवती हैं। आपके लिए अन्न जल त्यागना ठीक नहीं है। रानी ने कहा आप चिन्ता मत करिये। अब प्रजा पर आई हुई आफत गई ही समझिये। रानी के मन में कुछ विचार आये। उन विचारों के सम्बन्ध में कहने का समय नहीं है। इतना अवश्य कहता हूं कि लोग बाहरी बातों का विचार करते हैं और बाहरी बातें ही देखते हैं। किन्तु खयाल करना चाहिये कि बाहरी बातों के सिवाय आन्तरिक बातें भी हैं और उनका प्रभाव बहुत अधिक है। उन पर विचार करना चाहिये।

'अब आप प्रजा में से रोग गयाही समझिये' कहकर रानी ने स्नान किया और हाथ में जल पात्र लेकर महल पर चढ़गई। उस समय उनकी आंखों में अपूर्व ज्योति थी। वे हाथ में जल लेकर कहने लगीं कि यदि मैंने यावज्जीवन पतिव्रता धर्म का पालन किया हो, मेरे गर्भ में महापुरुष हो, तथा मैंने कभी झूठ कपट का सेवन न किया हो तो हे रोग! तू मेरे पति की रक्षा के लिए गर्भस्थ बालक के प्रभाव से चला जा। यह कह कर रानी ने पानी छिड़का। रानी के द्वारा पानी छिड़कते ही प्रजा में से रोग-महामारी चली गई।

महारानी ने जो पानी छिड़का था उसमें महामारी को भगाने की शक्ति नहीं थी। यह शक्ति रानी के शील में थी। पानी कोई भी छिड़क सकता है। पानी छिड़कने मात्र से ही रोग नहीं चले जाते। पानी छिड़कने के पीछे सदाचार की शक्ति चाहिये। सुना है कि महाराणा प्रताप का भाला उदयपुर में रखा है। दो आदमियों के उठाने से वह उठता है। वह भाला प्रताप का है। उसके उठाने के लिए प्रताप की सी शक्ति चाहिए। इसी प्रकार पानी के साथ भीतर की शक्ति का भी सम्बन्ध है।

पानी के छींटे देखकर महारानी को लोग महाशक्ति की तरह देखने लगे। चारों

ओर देखती हुई वे उस तरह ध्यान मग्न हो गई जिस तरह राजा हुए थे। रानी इस प्रकार ध्यान मग्ना थीं कि इतने में लोगों ने महाराजा से आकर कहा कि महामारी के रोगी अच्छे होगये हैं और अब प्रजा में शांति बरत रही है। राजा विचार कर रहे थे कि रानी गर्भवती है अतः भूखे रखने से गर्भ को न मालूम क्या होगा किन्तु यह समाचार सुनकर प्रसन्न हुए और गर्भस्थ आत्मा का ही यह चमत्कारिक प्रभाव है, ऐसा माना। रानी के गर्भ में रहे हुए महा-पुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शांति छायी है। महाराजा ऐसा सोच रहे थे कि इतने में दासी ने आकर कहा कि महारानी देवी या शक्ति की तरह महल के ऊपर खड़ी हैं। इस समय की उनकी मुद्रा के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। दासी से यह समाचार सुनकर महाराजा रानी के पास दौड़े गये और कहने लगे कि हे देवि! अब क्षमा करो। अब प्रजा में शांति है। आपके प्रताप से सब रोग दूर हो गये हैं।

बन्धुओं! राजा रानी को इस प्रकार बढ़ावा देते हैं, उनकी कदर करते हैं। आप लोगों के घरों में इसके विपरीत तो नहीं होता है न! ज्ञातासूत्र में मेघकुमार के अधिकार में यह पाठ आया है कि "उरालेणं तुमे देवी सुविणे दिट्ठे" आदि। मेघकुमार की माता स्वप्न देखकर जब पतिदेव को सुनाने गई थी तब उनके द्वारा कहे हुए ये प्रशंसा वचन हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर किस प्रकार ऊंची सभ्यता से बर्ताव करना चाहिए उसका यह नमूना है। शास्त्र में पारस्परिक बर्ताव में कैसी सभ्यता दिखानी चाहिए शिक्षा दी हुई है। यदि शास्त्र ठीक ढंग से सुनाये और सुने जाय तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। मेघकुमार के पिता ने कहा कि हे रानी तुमने जो स्वप्न देखे हैं वे बहुत उदार, सुखकारी तथा मंगलकारी हैं। इन स्वप्नों के प्रताप से तुम को राज्य और पुत्र का लाभ होगा। रानी को लाभ होने से राजा को लाभ है ही। फिर भी ऐसा न कहा कि मुझे लाभ होगा। किन्तु यह कहा कि रानी तुझे लाभ होगा।

महाराजा विश्वसेन ने प्रजा में शान्ति होने का सारा यश रानी के हिस्से में ही बताया और स्वयं यश के भागी न बने। रानी चलो, अब भोजन करें। रानी ने कहा महाराज इस प्रकार बड़ाई करके मुझ पर बोझा क्यों डाल रहे हैं। मै तो आपके पीछे हूं। आपके कारण मैं रानी कहाती हूं। मेरे कारण आप राजा नहीं कहलाते। जो कुछ हुआ है वह सब आप के ही प्रताप से हुआ है। मुझ में जो शक्ति या भक्ति है वह आपकी प्रदान की हुई है। आप मुझ पर इस प्रकार बोझा न डालिये। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को यश का भागी बनाने लगे। ऐसे घर में ही महापुरुष जन्म धारण करते हैं।

—⊰ सूत्रारम्भ में मंगल ⊱—

" कुन्थु जिनराज तू ऐसो नहीं कोई देव तो जैसो………… ।"

यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है । भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करें चाहे पूर्व के महात्माओं द्वारा मागधी भाषा में जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करें, एक ही बात है । आज मैं उन्हीं विचारों को सामने रखकर प्रार्थना करता हूँ जो पूर्व के महात्माओं ने प्राकृत भाषा में कहे हैं । शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है । शास्त्र में प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरी इस मान्यता मे किसी का मतभेद भी हो सकता है लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता । अर्हन्तों के द्वारा कहे हुए द्वादशांगी में से जो ग्यारह अंग इस समय मौजूद हैं, [illegible] परमात्मा की प्रार्थना [illegible] हुई है। आत्मा से परमात्मा बनने के [illegible] शास्त्र में [illegible] है। [illegible] का [illegible] प्रार्थना रूप ही है। [illegible]
[illegible]

समस्त जैन शास्त्रों का सार कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । इस में छत्तीस अध्ययन है ।

सारे उत्तराध्ययन सूत्र को क्रमशः आद्योपान्त पढ़ने में बहुत समय की आवश्यकता होती है । अकेले उत्तराध्ययन के लिए यह बात है तो समस्त द्वादशांगी वाणी के लिए बहुत समय शक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है । भगवान् की समस्त वाणी को समझाना और समझना हमारी शक्ति के बाहर है । हमारी शक्ति गागर उठाने की है । सागर उठाने की हमारी शक्ति नहीं है । हमारा सद्भाग्य है कि पूर्वाचार्यों ने हम अल्प शक्ति वाले लोगों के लिए भगवान् की द्वादशांगी वाणी रूपी सागर को इस उत्तराध्ययन रूपी गागर में भर दिया है । इस गागर को हम उठा सकते हैं, समझ सकते हैं पूर्व के उपकारी महात्माओं ने यह प्रयत्न किया है मगर शास्त्रों को समझने की असली कुंजी हमारी आत्मा में है । शास्त्र तो निमित्त कारण है । कागज और स्याही के लिखे होने से जड़ वस्तु है । शास्त्र समझने का वास्तविक कारण—उपादान कारण हमारी आत्मा है । उदाहरण के लिए, सब लोग पुस्तकें पढ़ते हैं किन्तु जिनका हृदय विकसित हो, पूर्व भव के निर्मल संस्कार हो, उन्हीं की समझ में पुस्तकों में रही हुई गूढ बातें आती हैं । हर एक को समझ नहीं पड़ती । इसी बात को ध्यान में रख कर कक्षा—दर्जा के अनुसार पुस्तकें बनाई जाती है । सातवीं कक्षा॰ में पढ़ाई जाने वाली पुस्तक यदि पहले दर्जे वाले विद्यार्थी को पढ़ाई जाय तो उसकी समझ में कुछ न आएगा ।

कारण कि प्रथम कक्षा के विद्यार्थी का दिमाग अभी उतना विकसित नहीं हुआ है । यही बात शास्त्र के विषय में भी है । जिसकी बुद्धि का जितना विकास हुवा होगा उतना ही उसे शास्त्र ज्ञान हासिल हो सकता है । शास्त्र समझने का असली उपादान कारण आत्मा है और जिसका आत्मा जितना निर्मल-वासना रहित होगा उतना ही वह समझ सकेगा। हृदय में धारण करके आचरण में भी उतार सकेगा ।

समस्त उत्तराध्ययन का वर्णन करना, उसमें रहे हुए गूढ़ विषयों का भावार्थ समझाना बहुत कठिन है । समय भी अधिक चाहिये सो नहीं है अतः उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन का वर्णन किया जाता है ।

यह बीसवां अध्ययन इस जमाने के लोगों के लिए (नौका) समान है । मानव हृदय में जितनी भी शंकाएं उठती है उन सब का समाधान इस अध्ययन में है, ऐसी मेरी

धारणा है। इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर में किया था अतः अब पुनः वर्णन करने की जरूरत नहीं है। किन्तु मेरे सन्तों का आग्रह है कि उसी अध्ययन का यहां भी पुनः विवेचन किया जाय। सन्तों के कहने से मैं इसपर व्याख्यान प्रारम्भ करता हूं। इस अध्ययन को आधार बनाकर मैं कुछ कहना चाहता हूं।

उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का वर्णन है। उस में कहा गया है कि साधु महात्माओं को वैद्य डाक्टरों की शरण में न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार करना चाहिए। आत्मा का ही सुधार करना या जगाना इसका अर्थ यह नहीं है कि स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता न लें। स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता ले सकते हैं मगर यह अपवाद मार्ग है। शारीरिक बीमारी मिटाने के लिए दवा दारू लेना उत्सर्ग मार्ग नहीं है। उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि सिवा भगवान् या अपनी आत्मा या अन्य किसी की सहायता न लेकर आत्म जागृति में ही तल्लीन रहे। इस बीसवें अध्ययन में इसी बात का वर्णन है कि साधु वैद्यों की शरण न ले। वैद्य या अन्य कुटुम्बी कोई भी इस आत्मा का त्राण करने में समर्थ नहीं हैं। इस अध्ययन में यह बतलाया गया है कि आत्मा में अद्भुत शक्ति रही हुई है। भूतकाल में आत्मा कैसी भी स्थिति में रहा हो, वर्तमान में कैसी भी स्थिति में हो और भविष्य में भी कैसी भी स्थिति में रहे इस बात की चिन्ता नहीं किन्तु इस स्थिति का यदि त्याग कर दिया जाय तो आत्मा में अनन्त शक्ति का विकास हो सकता है और वह सब कुछ करने में समर्थ भी हो सकता है।

इस बीसवें अध्ययन में भी कुछ कहा गया है उस सब का सार यह है कि खुद के डाक्टर खुद बनो। ऐसा करने से किसी का आसरा (शरण) लेने की आवश्यकता न रहेगी। आत्मा की शक्ति से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के ताप—रोग दूर हो सकते हैं। अशरण के मिट जाने पर आत्मा में किसी प्रकार का उत्पात नहीं रहता। [illegible] का कोई भी [illegible] उत्पात नहीं चाहता। कोई भी आत्मा अशान्ति नहीं चाहता। सब कोई शान्ति चाहते हैं। किन्तु शान्ति प्राप्त करने के लिए किस प्रकार के प्रयत्न किए जा रहे हैं, यह वास्तविक दृष्टि से देखना चाहिए। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि जितने [illegible] शान्ति इस से दूर भागती है।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया है यह बतलाने के लिए मैं इसी अध्ययन की प्रथम [illegible] का [illegible] करता हूं।

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थ धम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे।

यह मूल सूत्र है।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हें शिक्षा देता हूं। तुम्हें मुक्ति का मार्ग बताता हूं। किन्तु यह कार्य मैं अपनी शक्ति पर ही भरोसा रख कर नहीं करता। सिद्ध और संयतियों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके आधार पर यह काम करता हूं।

वैसे तो जहां का मार्ग पूछा जाता है वहीं का मार्ग बताया जाता है किन्तु यहां मुक्ति का मार्ग बताया जाता है। गुरु कहते हैं कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूं। पहले अर्थ का-अर्थ समझ लेना चाहिए।

अर्थ्यते प्रार्थ्यते धर्मार्थिभिरिति अर्थः। स च प्रक्रमे मोक्षः,
संयमाद्विर्वा। स एव धर्मः। तस्य गतिः ज्ञानम्
यस्यां तां अनुशिष्टिं मे शृणुत इत्यर्थः॥

अर्थः—धर्मार्थी लोगों के द्वारा जिसकी चाहना की जाय वह अर्थ है। यहां अर्थ से मतलब मोक्ष या संयम से है। मोक्ष या संयम ही धर्म है। उसकी गति या मार्ग ज्ञान है। उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो।

जिसकी इच्छा की जाय उसे अर्थ कहते हैं। सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते हैं। और धन के लिए ही रात दिन दौड़ धूप किया करते हैं। किन्तु यहां अर्थ का मतलब धन नहीं है। आप लोग मेरे पास धन लेने नहीं आये हैं। धन का मैं कतई त्याग कर चुका हूं। धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं। और उसी ग्रहण करने के लिए यहां आये हो। कदाचित् किसी गृहस्थ की यह भावना हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य कारण से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतियाँ जो यहां आये हुए हैं किसी भी तरह पौद्गलिक चाहना से नहीं आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये हैं। सन्त और सतियां आई हैं इसी से मालूम होता है कि आप का अर्थ धन नहीं किन्तु कोई अन्य वस्तु है। वह अन्य वस्तु मुक्ति से जुदा नहीं है अर्थात् मुक्ति [illegible] के [illegible] मुक्ति पाने की इच्छा स्वाभाविक रूप है।

जिसकी इच्छा की जाय वह अर्थ है। किन्तु इस में इतना और बढ़ा देना चाहिए कि धर्मात्मा लोग जिसकी इच्छा करें वह अर्थ है। धर्मात्मा लोग धर्म की ही इच्छा करते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि यहां अर्थ का मतलब धर्म है। आगे और स्पष्ट कहा है कि-धर्म रूपी अर्थ में जिससे गति होती है वह शिक्षा देता हूं। धर्म रूपी अर्थ में ज्ञान से गति होती है। ज्ञान द्वारा ही धर्म रूपी अर्थ प्राप्त किया जा सकता है। अतः सारे कथन का यह भावार्थ निकलता है कि मैं ज्ञान की शिक्षा देता हूं। ज्ञान प्रकाश है और अज्ञान अंधकार। ज्ञान रूपी प्रकाश मे आत्मदेव के दर्शन सुलभ है।

ज्ञान का अर्थ भी बड़ा लम्बा होता है। संसार-व्यवहार का ज्ञान भी ज्ञान ही कहलाता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान भी ज्ञान ही है। किन्तु यहां कहा गया है कि धर्म रूपी अर्थ मे गति कराने वाले तत्त्व का ज्ञान देता हूं। अर्थात् संसार प्रपंच का ज्ञान नहीं देता किन्तु तत्त्व का ज्ञान देता हूं। यह ज्ञान शिष्य में भी मौजूद है मगर जागृत अवस्था में नहीं है, दबा हुआ है। उस छिपे हुए ज्ञान को मैं प्रकट करने की कोशिश करूंगा। शिक्षा देकर उस ज्ञान को जगाऊँगा।

दीपक में तेल भी हो और बत्ती भी हो किन्तु यदि अग्नि का संयोग न हो तो दीपक जल नहीं सकता। प्रकाश नहीं कर सकता। इसी प्रकार हर आत्मा में ज्ञान रूपी प्रकाश मौजूद है मगर गुरु अथवा महापुरुष के सत्संग बिना विकसित नहीं हो सकता। महापुरुष का सत् समागम हमारे ज्ञान को विकसित करता है किन्तु ज्ञान हमारे में ही मौजूद है। यदि हमारे में ज्ञान मौजूद न हो तो अनेक महापुरुष मिल कर भी कुछ नहीं कर सकते। ज्ञान, बीज रूप में आत्मा में विद्यमान है। महापुरुष रूपी बाह्य निमित्त कारण के मिलने से बीज वृक्ष का रूप धारण करता है और फलता-फूलता है। यदि दीपक में न तैल हो और न बत्ती हो तो दूसरे दीपक से भेटने पर भी वह जल नहीं सकता। तैल बत्ती होने पर दूसरा दीपक सहायक हो सकता है। कहावत भी है कि खाली चूल्हे में फूंक मारने से आंखों में राख ही पहुंचती है। इसी प्रकार यदि आत्मा में ज्ञान शक्ति मौजूद न हो तो महापुरुष की मदद या उनके द्वारा दी हुई शिक्षा कुछ भी कारगर नहीं हो सकती।

यह जो कहा गया है कि "मैं शिक्षा देता हूं"। इस से हमें समझ लेना

चाहिए कि हमारे में शक्ति विद्यमान है इसीसे आचार्य हमें शिक्षा देते हैं। ऊसर भूमि में बीज बोने का कष्ट जानबूझ कर महापुरुष नहीं करते। हमारे में अविकसित रूप में रही हुई शक्ति का विकास करने के लिए अथवा राख में दबी हुई अग्नि को गुरु ज्ञान रूपी फूंक से प्रज्वलित करने के लिए हमें गुरु की दी हुई शिक्षा बड़ी सावधानी से सुननी चाहिए।

शिक्षा देने वाले महापुरुष ने कहा है कि--मैं सिद्ध और संयति को नमस्कार करके शिक्षा देता हूं। स्वयं शिक्षक जिन्हें नमस्कार करता हो और बाद में शिक्षा शुरू करता हो उनका स्वरूप समझ लेना आवश्यक है। पहले सिद्ध शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। नवकार मंत्र में एक पद में सिद्ध को नमस्कार किया गया है और शेष चार पदों में साधु को नमस्कार किया है। अर्थात् सिद्ध और साधक दोनों को ही नमन किया गया है। यहां भी आचार्य ने सिद्ध और साधक दोनों को नमस्कार किया है।

पहले सिद्ध किसे कहते हैं यह देखलें। '**पिञ् बन्धने**' धातु से सिद् शब्द बना है। इसका अर्थ यह है कि अष्ट कर्म रूपी बन्धे हुए लकड़ी के भारे को जिसने '**ध्मातम्**' यानी शुक्लध्यान रूपी जाज्वल्यमान अग्नि से जला दिया है वह सिद्ध है। अथवा '**पिधुगतौ**' से भी सिद्ध शब्द बन सकता है। जिस स्थान पर पहुँच कर फिर वहाँ से नहीं लौटना पड़ता, उस स्थान पर जो पहुँच गये हैं उन्हे भी सिद्ध कहते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सिद्ध होकर भी पुनः संसार में लौट आते हैं। जैसे कहा है:—

ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्त्तारः परमंपरम् ।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपिभवं तीर्थ निकारतः ॥

अर्थात्—धर्मरूपी तीर्थ के कर्त्ता ज्ञानी लोग अपने तीर्थ का पराभव देखकर परम पद को पहुँच कर भी पुनः संसार में लौट आते हैं।

यदि सिद्धि स्थल में पहुँच कर भी वापस संसार में आ जाते हों तो वह स्थल सिद्धि ही न कहा जायगा। सिद्धि--मुक्ति तो उसे ही कहते है कि जहाँ पहुँच कर वापस नहीं लौटना पड़ता। कहा है—

यत्र गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

अर्थात्—जहां जाकर वापस न आना पड़े वह परम धाम है और वही सिद्ध स्थान है। उसे ही सिद्धि कहते हैं। जहां जाकर वापस आना पड़े वह तो संसार ही है।

व्युत्पत्ति के अनुसार सिद्ध शब्द का तीसरा अर्थ भी होता है। 'षिधु संराद्धौ' जो कृतकृत्य हो चुके हैं, जिनको अब कोई काम करना बाकी न रहा है, वे भी सिद्ध कहे जाते हैं।

जैसे पकी हुई खिचड़ी को पुनः कोई नहीं पकाता। यदि कोई पकी हुई खिचड़ी को पकाता है तो उसका यह काम व्यर्थ समझा जाता है। इसी प्रकार जिसने सब काम कर लिए हैं और करने के लिए शेष कुछ नहीं रहा है वह सिद्ध है। इस प्रकार सिद्ध शब्द के ये तीन अर्थ हैं। शब्द एक ही है किन्तु जैसे एक शब्द में नाना घोष होते हैं उसी प्रकार एक शब्द के अनेक अर्थ भी हो सकते हैं।

सिद्ध शब्द का एक चौथा अर्थ भी किया जाता है। 'षिधून शास्त्रे मांगल्ये वा' इसका अर्थ है जो दूसरों को कल्याण मार्ग का उपदेश देता है और उपदेश देकर मोक्ष को पहुंचा है वह साक्षात् सिद्ध है। शासिता अर्थात् दूसरों को उपदेश देने वाला।

यदि दूसरे को उपदेश देकर मुक्ति जाने वाले को सिद्ध कहा जायगा तो अरिहन्त होकर जिन्होंने मुक्ति पाई है वे ही सिद्ध कहे जायगे अन्य नहीं। किन्तु सिद्ध तो पन्द्रह प्रकार के कहे गये हैं। इसके उपरान्त मूक केवली जो कि किसी को उपदेश नहीं देते तथा अन्तकृत् केवली जो कि अन्तिम समय में केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति पहुंच जाते हैं, जिनके लिए दूसरों को उपदेश देने का अवसर ही नहीं रहता, क्या वे सिद्ध नहीं कहे जायगे? क्या ध्यान मौन द्वारा आत्म कल्याण करने वाले महात्मा के लिए (सिद्ध शब्द के लिए) प्रयुक्त यह शास्ता शब्द लागू नहीं होगा?

इसका उत्तर यह है कि जो महात्मा मौन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिन्हें उपदेश देने का अवसर ही न मिला हो, वे भी जगत् का कल्याण करते ही हैं। उनके लिए भी यह शास्ता शब्द लागू होता है। ध्यान मौन द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाले महात्मा भी संसार को शिक्षा देते हैं और वह शिक्षा भी महान् है। संसार को मौन शिक्षा की भी बहुत आवश्यकता है। हिमालय की गुफा में बैठकर या किसी एकान्त शान्त स्थान में ध्यानस्थ होकर वे योगी संसार को जो सहायता पहुंचाता है और उसके द्वारा जगत् का

जो कल्याण साधता है, उसकी बराबरी बहुत उपदेश झाड़ने वाले किन्तु आचरण शून्य व्यक्ति कभी नहीं कर सकते। यह संसार अधिकतर न बोलने वालों की सहायता से ही चलता है। मूक सृष्टि के आधार पर ही यह बोलने वाली सृष्टि निर्भर रही है। पृथ्वी पानी आदि के जीव मूक ही हैं। ये मूक जीव ही इस बोलती हुई सृष्टि का पालन करते हैं। इस से यह बात समझ में आ जायगी कि उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का कल्याण करते ही हैं। वासनाओं से रहित उनकी शान्त, दान्त और संयत आत्मा से वह प्रकाश-आध्यात्मिक तेज निकलता है कि जिससे आधि व्याधि और उपाधि से संतप्त आत्माओं को अपूर्व शांति मिल सकती है।

गुरोस्तु मौनं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः

अर्थात्—गुरु के मौन होने पर भी उनकी आकृति आदि के दर्शन मात्र से संशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं। नास्तिक से नास्तिक शिष्य भी गुरु की ध्यानावस्थित आकृति से आस्तिक बनने के दृष्टान्त मौजूद हैं। अतः यह बात सिद्ध हो जाती है कि मौखिक उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत का कल्याण करते ही हैं। उनके आचरण से जगत बहुत शिक्षा ग्रहण करता है।

दूसरी बात सिद्ध भगवान मोक्ष गये हैं इसीलिये लोग मोक्ष की इच्छा करते हैं। यदि वे मोक्ष न पहुँचते तो कोई मोक्ष की इच्छा नहीं करता। वे महात्मा मन, वचन और काया को साध कर मोक्ष गये और इस तरह संसार के लोगों को अपना आदर्श रख कर मोक्ष का मार्ग बताया। संसार के प्राणियों में मुक्ति की लालसा पैदा की। अतः उनको मांगलिक कहा जा सकता है।

' सिद्धान् शरणं मांगल्ये वा ' में अरिहन्त के साथ ही साथ जो मांगलिक हैं वे भी सिद्ध हैं, कहे गये हैं। मांगलिक का अर्थ पाप नाश करने वाला होता है। मां अर्थात् पापं गालयतीति मांगलिक। जो पाप का नाश करने वाले हैं वे सिद्ध हैं।

यहाँ यह शंका होती है कि जो पाप का नाश करने वाला है, वह सिद्ध है तो बड़े बड़े महात्मा, जो कि पाप के नाश करने वाले थे उनको पाप का उदय कैसे हुआ? उन महात्माओं को रोग तथा दुःख कैसे हुए? गजसुकुमार मुनि के सिर पर अंगारे रखे गये और भगवान महावीर को [illegible] हुए। क्या उनमें सिद्धों की मांगलिकता न थी?

होकर उस आततायी-हत्यारे से कहता है कि ऐ पापी ! इस व्यक्ति को मत मार। यदि तू खून का ही प्यासा है तो मुझे मार कर अपनी प्यास बुझाले मगर इस व्यक्ति को मत मार। कहिये यह दूसरा व्यक्ति आपको कैसा मालूम देगा। इसमें आपको क्या विशेषता नजर आयगी। आप कहेंगे यह दूसरा व्यक्ति बड़ा दयालु है इसमें दया धर्म है इस व्यक्ति में दया है और उस व्यक्ति में हिंसा है यह बात आपने कैसे जानी। किस प्रमाण से जानी। मानना होगा कि इसमें हमारी आत्मा ही प्रमाण है। आत्मा अपनी रक्षा चाहता है अतः रक्षण और भक्षण करने वाले को यह तुरत पहचान जाती है। दया-अहिंसा आत्मा का धर्म है। यदि आपको धर्मात्मा बनना हो तो दया को अपनाइये। शास्त्र में कहा है:—

एवं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम्।

यदि तू अधिक न जाने तो इतना तो अवश्य जान कि जैसा तेरा आत्मा है वैसा ही दूसरे का भी है। जो बात तुझे बुरी लगती है वह दूसरे को भी वैसी ही लगती है। एक फारसी कवि ने कहा है कि—

ख्वाहि कि तुरा हेच बदी न आयद पेश।
तात्वानी बदी मकुन अज कमोबेश॥

यदि तू चाहता है कि मुझपर कोई जुल्म न करे तो जिन्हें तू जुल्म मानता है, वे जुल्म तू स्वयं दूसरों पर मत कर।

यदि कोई आपको मार पीटकर आपके पास की वस्तु छीनना चाहे या झूठ बोलकर आपको ठगना चाहे अथवा आपकी बहू बेटी पर बुरी नजर करे तो आप उसे जुल्मी मानोगे न? ऐसी बातें समझने के लिए किसी पुस्तक या गुरू की जरूरत नहीं होती। आत्मा स्वयं गवाही दे देता है कि अमुक बात भली है या बुरी। ज्ञानी कहते हैं कि जिन कामों को तू जुल्म मानता है वे दूसरों के लिए मत कर। किसी का दिल न दुखाना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, पराई स्त्री पर बुरी निगाह न करना और आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग वस्तुएं समह करके न रखना ये पांच महा नियम हैं जिनके पालन करने से कोई जुल्मी नहीं बनता। जो बात हमें अच्छी लगती है वही दूसरे के लिए करना चाहिये यदि आप जुल्मी न बनोगे तो दूसरा भी जुल्म करना छोड़ देगा। इस बात को जरा गहराई से सोचिये। केवल दूसरे के जुल्मों की तरफ ही ख्याल न करो, अपने आपको भी देखो। करीमा में कहा है —

सूर्यातिशायि महिमासि जिनेन्द्र लोके

हे जिनेन्द्र ! जगत् में आपकी महिमा सूर्य से भी बढ़कर है, इत्यादि कहा गया हो, वे भगवान् जगत् में शिक्षा देने में क्या भेद भाव कर सकते हैं अनन्त महिमा वाले भगवान् की वाणी किसी व्यक्ति विशेष के लिए न होगी। सब के लिए होगी।

सूर्य सब के लिए प्रकाश करता है फिर भी यदि कोई यह कहे कि हमें सूर्य प्रकाश नहीं देता, अन्धेरा देता है, तो क्या यह कथन ठीक हो सकता है ! कदापि नहीं चिमगादड़ और उल्लू यह कहें कि हमारे लिए सूर्य किस काम का ! सूर्य के उदय होने पर हमारे लिए अधिक अन्धेरा छा जाता है इस के लिए कहना होगा कि इस में सूर्य का कोई दोष नहीं है, वह तो सब के लिए समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है। किन्तु यह उनकी प्रकृति का दोष है कि जिससे प्रकाश देने वाली किरणें भी उनके लिए अन्धकार का काम देती है।

सूर्य के समान ही भगवान् की वाणी सब के लाभ के लिए है। किसी की प्रकृति ही उल्टी हो और वह लाभ न ले सके तो दूसरी बात है। जिनके हृदय में अभिमान हो वे लोग भगवान् की वाणी से लाभ नहीं उठा सकते। भगवान् की वाणी की किरणें ऐसे लोगों के हृदय प्रदेश में प्रकाश नहीं पहुँचा सकती।

भगवान् की वाणी का महत्त्व और काम किस प्रकार लिया जा सकता है यह बात चरित्र कथन के द्वारा समझाता हूँ जिससे कि सब की समझ में आ जाय। चरित्र के [illegible] बात की समझ बहुत जल्दी पड़ती है। जो लोग तत्त्वज्ञान की बातें इस तरह नहीं समझ सकते उनके लिए चरितानुवाद बहुत सहायक है। यदि कोई मनुष्य अपने हाथ में फल लेकर कहे कि मेरे हाथ में [illegible] है या [illegible] है, तो समझदार मनुष्य को इस में सन्देह न होगी। किन्तु यदि वही मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] पूछे कि यह क्या है तो बड़ा आदमी भी कोई भी बता सकता है कि [illegible] है। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।

शील पालने वाला है। शील की यह व्याख्या भी अधूरी है। शील की व्याख्या में पांचों महाव्रत भी आ जाते हैं।

सुदर्शन सेठ करोड़ों की सम्पत्ति वाला था। फिर भी वह किस प्रकार अपने शील व्रत पर दृढ़ रहा यह यथा शक्ति और यथावसर बताने का प्रयत्न किया जायगा। इस कथा को सुनकर जो अशुभ से निवृत्त होंगे और शुभ में प्रवृत्त होंगे वे अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे तथा सब सुख उनके दास बन कर उपस्थित रहेंगे।

राजकोट
६—७—३६ का
व्याख्यान

महा निर्ग्रन्थ व्याख्या

२

चेतन भज तू अरहनाथ ने ते प्रभु त्रिभुवन राया ।

यह अठारहवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की प्रार्थना है । समय कम है अतः इस प्रार्थना पर विशेष विचार न करके शास्त्रीय प्रार्थना पर विचार करता हूँ । कल से उत्तराध्ययन का बीसवां अध्ययन शुरू किया है । इसका नाम महा निर्ग्रन्थ अध्ययन है। महान् और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ समझने हैं । पूर्वाचार्यों ने महान् शब्द के अर्थ बताते हुए अनेक बातें समझाई हैं । उन सब का विवेचन करने जितना समय नहीं है । सूत्र समुद्र के समान अथाह है । उनका पार हम जैसे कैसे पा सकते हैं । फिर भी कुछ कहना तो चाहिए अतः कहता हूँ ।

शास्त्रों में महान् आठ प्रकार के बताये गये हैं । १ नाम महान् २ स्थापना महान् ३ द्रव्य महान् ४ क्षेत्र महान् ५ काल महान् ६ प्रधान महान् ७ अपेक्षा महान् ८ भाव महान् । बीसवें अध्ययन में इन आठ प्रकार के महान् में से किस प्रकार का महान् कहा गया है यह जानने के पूर्व इनका अर्थ समझ लेना ठीक होगा ।

१ **नाम महान्**—जिसमें महानता का कोई गुण नहीं है किन्तु केवल नाम से महान् हो वह नाम महान् है। जैन शास्त्रों ने आरम्भ और अन्त समझाने का बहुत प्रयत्न किया है। वस्तु पहले नाम ही से जानी जाती है। मगर नाम जानकर ही न बैठ जाना चाहिए किन्तु उसका स्वरूप भी जानना समझना चाहिए।

२ **स्थापना महान्**—किसी भी वस्तु में महानता का आरोपण कर लेना स्थापना महान् है।

३ **द्रव्य महान्**—द्रव्य महान् का अर्थ समझाने के लिए यह दृष्टान्त बताया गया है कि केवल ज्ञानी अन्त समय में जब केवली समुद्घात करते हैं तब उनके कर्म प्रदेश चौदहराजू प्रमाण समस्त लोकाकाश में छा जाते हैं। उस समय उनके शरीर से निकला हुआ कार्माण शरीर रूप महास्कन्ध चौदह राजू लोक में पूर जाता है। यह द्रव्य महान् है।

४ **क्षेत्र महान्**--समस्त क्षेत्र में आकाश ही महान् है। आकाश लोक और अलोक दोनों में व्याप्त है।

५ **काल महान्**—काल में भविष्य काल महान् है। जिसका भविष्य सुधरा उसका सब कुछ सुधर गया। भूत काल चाहे जैसा रहा हो वह बीती हुई बात हो गया। अतः भविष्य ही महान् है। वर्तमान तो समय मात्र का है।

६ **प्रधान महान्**—जो प्रधान-मुख्य माना जाता है। वह प्रधान महान् है। इसके सचित्त, अचित्त और मिश्र ये तीन भेद हैं। सचित्त भी द्विपद, चतुष्पद और अपद के भेद से तीन प्रकार का है। द्विपद में तीर्थंकर महान् हैं। चतुष्पद में सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में पुण्डरीक-कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवों में कमल महान् है। अचित्त महान् में चिन्तामणि रत्न महान् है। मिश्र महान् में राज्य संपदा युक्त तीर्थङ्कर का शरीर महान् है। तीर्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्राभूषणादि धारण करते हैं वे भी महान् हैं। स्थापना के कारण वस्तु का महत्त्व बढ़ जाता है। अतः मिश्र महान् में वस्त्राभूषण युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७ **पडुच्च अपेक्षा महान्**—सरसों की अपेक्षा चना महान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

८ भाव महान्—टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से क्षायिकभाव महान् है और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित जीव और अजीव दोनों हैं किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय की दृष्टि से उदय भाव महान् है। क्योंकि संसार के अनन्त जीव उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा जुदा मत है। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है।। इस में सिद्ध और संसारी दोनों प्रकार के जीव आ जाते हैं। अतः प्रधानता से क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् है।

यहां महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि की दृष्टि से नहीं किन्तु भाव की दृष्टि से कहा गया है। जो महा पुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक में वर्तते हैं उनको महान कहा है।

अब निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये। ग्रन्थ शब्द का अर्थ है गांठ। गांठें दो प्रकार की होती हैं। द्रव्य गांठ और भाव गांठ। जो द्रव्य और भाव दो प्रकार के बंधनों से रहित होता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं। द्रव्य ग्रन्थी नौ प्रकार की और भाव ग्रन्थी १४ चौदह प्रकार की है।

कोई व्यक्ति द्रव्य ग्रन्थी अर्थात् धन दौलत स्त्री पुत्र मकानादि छोड़दे किन्तु भाव ग्रन्थी अर्थात् क्रोध मानादि विकार न छोड़े तो वह निर्ग्रन्थ न कहा जायगा। निर्ग्रन्थ होने के लिये निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार की ग्रन्थी छोड़ना आवश्यक है। यह बात ठीक है कि सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं और उनमें गृहलिङ्ग सिद्ध भी होते हैं जो द्रव्य से लिङ्ग नहीं छोड़ते किन्तु वे भाव की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। द्रव्य से तो स्वलिङ्गी ही सिद्ध होते हैं। जिन्होंने द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के बंधन या ग्रन्थी छोड़दी है वे निर्ग्रन्थ हैं और जिन्होंने सर्वथा प्रकार से ग्रन्थी का छेदन या नाश कर दिया है वे महा निर्ग्रन्थ हैं। कोई द्रव्य ग्रन्थी के छेदक हैं तो कोई भाव ग्रन्थी के। अतः यहां यह समझ लेना चाहिये कि जिन्होंने दोनों प्रकार की ग्रन्थियां छोड़ दी हैं वे महा निर्ग्रन्थ हैं।

[illegible]

[illegible]

सकते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि हर प्रवृत्ति का कोई न कोई उद्देश्य जरूर होता है। दूध दही लेने के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति दूध दही मिलने के स्थान की तरफ जायगा और शाक भाजी के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति शाक मार्केट की ओर जायगा। जो जिस उद्देश्य से निकला है वह उसकी पूर्ति जिधर होती है उधर ही जाता है जिसने मुक्ति पाने के लिए घर छोड़ा है वह मुक्ति की ओर जायगा अतः प्रथम शास्त्र का उद्देश्य बताया जाता है।

शास्त्र का उद्देश्य अर्थात् विषय जान लेने के बाद प्रयोजन जानना जरूरी है। इस शास्त्र के पढ़ने से किस प्रयोजन की सिद्धि होगी यह बात दूसरे नम्बर पर है। प्रयोजन के बाद अधिकारी का विचार किया जाता है। इस शास्त्र का अध्ययन मनन करने के लिए कौन व्यक्ति पात्र है और कौन अपात्र है। इसके बाद शास्त्र का सम्बन्ध बताना चाहिए। किस प्रसंग से यह शास्त्र बना है, कौन वस्तु कहां से ली गई है, इस शास्त्र का कहने वाला कौन है और सुनने वाला कौन है आदि बताया जाना चाहिए।

इन चारों बातों से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है यह पहले कह दिया गया है। इस महा निर्ग्रंथ अध्ययन में ये चारों बातें हैं, यह बात इस के नाम से ही प्रकट है। अभी समय कम है अतः फिर कभी अवसर होने पर अपनी बुद्धि के अनुसार यह बताने की चेष्टा करूँगा कि किस प्रकार अनुबन्ध चतुष्टय का इस अध्ययन में समावेश है।

अब इसी बात को व्यावहारीक ढंग से कहा जाता है जिससे कि सामान्य समझ वाले व्यक्ति भी सरलता से समझ सकें। यह सब की इच्छा रहती है कि महान् पुरुष की सेवा की जाय लेकिन महान् का अर्थ समझ लेना चाहिए। भागवत में कहा है कि

> महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितांसंगिसंगम् ।
> महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

अर्थ—मुक्ति का द्वार महान् पुरुषों की सेवा करना है और नरक द्वार कामिनी की संगति करने वाले की सोहबत करना है। महान् वे हैं जो समचित्त हैं, प्रशान्त हैं, क्रोध रहित हैं, सब के मित्र और साधु चरित हैं।

महान् पुरुष की [illegible] [illegible] बताया गया है [illegible] कामिनी में फंसे हुए [illegible] [illegible] [illegible] उसमें [illegible] जाता है कि महान् पुरुष [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] २ जागीरे

भोगते हैं, अच्छे खाते और कपड़े पहनते हैं, आलीशान बंगलों में निवास करते हैं, उन्हें महान् समझें अथवा किन्हीं दूसरों को।

जैन शास्त्रानुसार इस का खुलासा किया ही जायगा किन्तु पहले भागवत पुराण के अनुसार महापुरुष की व्याख्या समझ लें। भागवत पुराण कहता है कि इस प्रकार की उपाधि वालों को महान् नहीं मानना चाहिए। महान् उसे समझना चाहिए जो समचित हो। महान् पुरुष का चित्त सम होना चाहिए। शत्रु और मित्र पर समभाव होना चाहिए। जिसका मन आत्मा में हो, दुकान में न हो वह समचित है और वही महान् भी है।

समचित का अर्थ जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही मानना भी है। आत्मा चैतन्य स्वरूप है और जड़ पदार्थ पुद्गल रूप है। इन दोनों को जुदा मानना तथा इनके धर्म भी जुदा २ मानना समचित का लक्षण है। कोई यह शंका कर सकता है कि कार्माण शरीर की अपेक्षा से संसारी जीव के पीछे अनादि काल से उपाधि लगी हुई है जिससे यह मेरा कान है, यह मेरी नाक है, यह मेरा मुख है, आदि रूप से जड़ वस्तुओं को भी अपनी मानता है तब वह समचित कैसे रहा। यह ठीक है कि उपाधि के कारण जीवात्मा परवस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधि को उपाधि मानना यह भी समचित का लक्षण है।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को कंकर कहे और कंकर को रत्न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है। जब कि रत्न और कंकर दोनों ही जड़ वस्तु हैं। कोई व्यक्ति जंगल में जा रहा था। भ्रमवश उसने सोने को चांदी मान लिया और चांदी को सोना। उसके मान लेने से सोना चांदी नहीं हो गई और न चांदी ही सोना होगई। किसी के उल्टा मान लेने से वस्तु अन्यथा नहीं हो जाती। किन्तु ऐसा मानने या कहने वाला जगत् में मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ कहने मानने वाले भी अज्ञानी समझे जाते हैं। इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा तेरा किया करता है। जो इस प्रकार की उपाधि में फंसे हैं वे महान् नहीं हैं। वे जड़ पदार्थ के गुलाम हैं। वे आत्मदर्शी नहीं कहे जा सकते। महान् वे हैं जो खुद के शरीर को भी अपना नहीं मानते। अन्य वस्तुओं के लिए तो कहना ही क्या। व्यवहार से भले ही इन्हें वह मेरा हाथ, मेरा कान, नाक आदि कहेंगे मगर निश्चय में वे जानते हैं कि ये सब इनके नहीं हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समचित वाले उपाधि को उपाधि मानते हैं।

अब इस बात पर भी विचार करें कि महान् का सेवन किस लिए करें? कोई यह ख्याल करके महापुरुष की सेवा करे कि वे उनके कान में मन्त्र फूंक देंगे या सिर पर हाथ धर

देंगे तो वह शुद्धि शाली हो जायगा महान् पुरुष का अपमान करना है । वह महान पुरुष की सेवा नहीं गिनी जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी । जो इस भावना से महान पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से संसार की माया जाल में फसा हुआ हूँ, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूं, जड़ को अपना मान बैठा हूं, इन सब से महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊं, उसकी सेवा सफल है । ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है ।

समचित्त वालों को कोई लाखों गालियां दे तो भी उनके मन में किंचित् विकार नहीं आता । कहते हैं कि एक बार पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठजी के बाजार में और शायद उन्हीं के मकान में विराजते थे । उस समय रतलाम बहुत उन्नत शहर माना जाता था, और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी । पूज्यश्री की प्रशंसा सुनकर एक मुसल्मान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भावना पैदा हुई । अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ । उस समय पूज्यश्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्म कृत्य कर रहे थे उस मुसल्मान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अनेक गालियां दीं । उसकी गालियां ऐसी थी कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे । किन्तु पूज्यश्री समचित्त थे । वे गालियां सुनकर भी विकृत न हुए । हँसते ही रहे । उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नजर न आये । आखिर वह मुसल्मान हाथ में हाथ जोड़कर पूज्यश्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है । वास्तव में आप सच्चे फकीर हैं । माफी मांगकर वह चला जाता है ।

केवल कहने वक्त श्रोताओं को प्रशान्त रहने का उपदेश देना बड़ा सरल है किन्तु प्रशान्त रहने का मौका आये तब प्रशान्त रहना बड़ा कठिन है । महान् वह है जो [illegible] के अवसर पर [illegible] दिखाता है । कोई पूछ सकता है कि क्या दूसरों की गालियां सुनते रहना और [illegible] में [illegible] करना [illegible] है । हाँ, महान् पुरुष वह है [illegible] है [illegible] गालियों को [illegible] नहीं [illegible] । [illegible] सहन कर लेते हैं । [illegible] पूछ यह क्या करते हो [illegible] अपने [illegible] में [illegible] महान् पुरुष अपने लिये [illegible] मनुष्य हुए [illegible]

हो तो वे आत्म निरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते हैं और दुष्ट कहने वाले का उपकार मानते हैं, किन्तु यदि उन्हें आत्म निरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने की कोई सामग्री नहीं है तो वे खयाल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह किसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और भूल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं। मेरे समान वेष भूषा वाले किसी अन्य व्यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु इस में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रक्खा है। किसी ने आपको बुलाने के लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले इधर आओ। क्या आप यह बात सुनकर नाराज होंगे? नहीं। आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिरपर सफेद साफा है और यह काले साफे वाले को बुला रहा है सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी खयाल कर सकते हैं कि भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है। ऐसा विचार करने पर न क्रोध आवेगा और न नाराज होने का प्रसंग ही। इसके विपरीत यदि आपने यह खयाल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे कहता है, इसकी भूल का मज़ा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको अपने सिर पर बांधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नहीं है।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे ही न रहें। सर्वत्र शांति छा जाय। पिता पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते हैं कि एक समझता है 'मैं ऐसा नहीं हूं फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया'। इसके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मैं ऐसा हूं ही नहीं तब इसका ऐसा कहना व्यर्थ है, तब अशांति या झगड़े का कोई कारण खड़ा ही नहीं हो सकता आप लोग निर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा करने वाले हो, अतः सहनशीलता का यह गुण अपनाओ और समचित्त बन कर आत्मा का कल्याण करो। संसार में कोई किसी का अपमान नहीं कर सकता। हमारा आत्मा ही हमारा अपमान करता है।

> स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीय लभते शुभाशुभम्।
> परेणदत्तं यदि लभ्यते ध्रुवं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थ—हमारी आत्मा ने पहले शुभ या अशुभ जो भी कृत्य किया है उसीका

रहा है तो गुरु का किया हुआ श्रम व्यर्थ हो जायगा।

कहने का सारांश यह है कि जो प्रसंग पर क्रोधादि विकारों को काबु में रख र और सामने वाले को अपने प्रेम पूर्ण बर्ताव से जीत सके वही महान् है और वही सच्चे भी है। ऐसे पुरुष जड़ पदार्थों के वश में नहीं होते। वे यह सोचते हैं कि

जीव नवि पुग्गली नैव पुग्गल कदा पुग्गलाधार नहीं तास रंगी।
परतणो ईशनहीं अपर ए ऐश्वर्यता वस्तु धर्मे कदा न परसंगी॥
श्री देवचन्द्र चौबीसी

जिस व्यक्ति की परमात्मा के साथ लौ लगी होगी वह यह सोचेगा कि मैं पुद् नहीं हूं और पुद्गल भी मेरे नहीं है। मैं पुद्गलों का मालिक बन कर भी नहीं र [illegible] तो उनका गुलाम होने की बात ही क्या है!

आज लोगों को जो दुःख है वह पुद्गलों का ही है। वे पुद्गलों के गुलाम ब रहे है। यदि धैर्य रखा जाय तो पुद्गल उनके गुलाम बन सकते है। किन्तु लोग धैर्य छो कर पुद्गलों के पीछे पड़े हुए है इसी से दुःख उठा रहा है, यह दुःख दूसरों का लगा हु नहीं है किन्तु अपने खुद के अज्ञान के कारण से ही है।

श्री समयसार नाटक में कहा है कि:—

कहै एक सखी सयानी, सुनरी सुबुद्धि रानी, तेरो पति दुखी—
लग्यो और यार है
महा अपराधी छहों माहीं एक नर सोई दुख देत लाल—
दीसे नाना पर है।
कहै आली सुमति कहा दोष पुद्गल को अपनी ही भूल लाल—
होता आप ख्वार है।
खोटो नाणो आपको सराफ कहा लागे वीर काहू को न दोष—
[illegible] है।

[illegible]

अब सुदर्शन की कथा कही जाती है। मुझे सुदर्शन से किसी प्रकार का लेन-देन नहीं है। पुद्गल को छोड़नेवाले सब महात्माओं को मेरा नमस्कार है। सुदर्शन ने भी पुद्गलों पर से ममता हटाई है अतः उसका गुणानुवाद किया जाता है और धन्य धन्य कहा जाता है। पुद्गल ममता को छोड़कर जो महात्मा आगे बढ़े हैं उनको नमस्कार करने से हमारा आत्मा निर्मल बनता है। और आगे कहा है।

चम्पापुरी नगरी अति सुन्दर दधिवाहन तिहां राय।
पटरानी अभया अति सुन्दर रूप कला शोभाय ॥ रे धन०

सुदर्शन को मैंने अकेले ने ही धन्यवाद नहीं दिया है किन्तु आप सब ने भी दिया है। क्यों धन्यवाद दिया गया, इसका विचार करिये। यदि वह सेठ था तो अपने घर का था। इससे हमें क्या मिलना था। हम लोगों ने उसकी सेठाई के कारण धन्यवाद नहीं दिया है किन्तु उसने धर्म का पालन किया है अतः धन्यवाद दिया है। वस्तुतः यह धन्यवाद धर्म को दिया गया है। हम लोग सुदर्शन को धन्यवाद देते हैं। किन्तु कोरा धन्यवाद देकर ही न रह जाएं। हम भी उसके पद चिह्नों पर चलें तभी धन्यवाद देना सार्थक है। उसके गुणों का अनुसरण न किया तो हमारा बड़ा दुर्भाग्य होगा। कल्पना करो कि एक आदमी भूखा है। वह भूख से कराह रहा था। वह सेठ के घर गया। उस समय सेठ स्वर्णथाल में परोसे हुए विविध व्यञ्जनों का भोग कर रहे थे। सेठ को भोजन करते देखकर वह भूखा व्यक्ति कहने लगा कि सेठ तुम धन्य हो जो ऐसे पदार्थ भोग रहे हो। मैं अन्न के बिना तड़प रहा हूं। भूखों मर रहा हूं। यह सुनकर सेठ ने कहा कि भाई! आ तू भी मेरे साथ बैठ जा और भोजन कर ले। [illegible] सेठ के द्वारा भोजन का प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिलने पर भी [illegible] कहे कि नहीं नहीं मैं न [illegible] मुझे भोजन नहीं [illegible]!

[illegible] धन्यवाद [illegible] नहीं [illegible] है। किन्तु [illegible] धन्यवाद देते हैं [illegible]

आपके सामने भी मौजूद है। आप धन्यवाद देकर न रह जाइये किन्तु उस चारित्र धर्म का पालन करिये जिसके पालन से सेठ धन्यवाद के पात्र बने हैं। धन्यवाद दे लेने से आत्मा की भूख न मिटेगी। सुदर्शन के समान आप धर्म पर दृढ़ न रह सको तो भी उसके कुछ अंश का तो अवश्य पालन कीजिये। उसका चरित्र सुनकर उसके चरित्र का कुछ अंश भी यदि जीवन में उतार सको तो आपका दुर्भाग्य मिटेगा और सौभाग्य का उदय होगा। संसार की सब वस्तुएँ नाशवान् हैं! आप इस अविनाशी धर्म को क्यों नहीं अपनाते। आप कहेंगे कि हम सुदर्शन के समान कैसे बन सकते हैं? खैर, सुदर्शन के ठीक समान न बनें तो भी उसके चरित्र में से कुछ बातें अवश्य अपनाइये। कोशिश तो सब बातें अपनाने की करनी चाहिए। कीड़ी यह कहकर अपनी चाल को नहीं रोकती कि मैं हाथी की बराबरी नहीं कर सकती हूं। वह हाथी के समान नहीं चल सकती तो भी चलना जारी रखती है और अपने खाने तथा घर बनाने का ऐसा प्रयत्न करती है कि जिसे देख कर बड़े२ वैज्ञानिकों को दंग रह जाना पड़ता है। आप भी अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार आगे बढ़ने का प्रयत्न कीजिये।

सुदर्शन की कथा कहने के पूर्व क्षेत्र का परिचय दिया गया है। क्षेत्री का वर्णन करने के लिये क्षेत्र का परिचय आवश्यक है। शास्त्र में भी यही शैली है। वर्णन तो भगवान महावीर स्वामी का करना था किन्तु प्रसंग से साथ ही चम्पा नगरी का भी वर्णन दे दिया है —जैसे

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामे नयरी होत्था।

सुदर्शन सेठ की कथा कहने पहले वह कहां हुआ था यह बताना आवश्यक था सो यही बताया गया है।

कोई यह पूछ सकता है कि क्या क्षेत्र के साथ क्षेत्री का कोई सम्बन्ध होता है? हां क्षेत्री का क्षेत्र के साथ बहुत सम्बन्ध होता है। [illegible] प्रकृतियों का वर्णन आता है। एक आदमी [illegible] है और [illegible] पूरब का। क्षेत्र विशेष [illegible] प्रयत्न के द्वारा इस [illegible]।

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामं नगरी होत्था रिद्धीए ठिम्मिए समिद्धे

इन तीन विशेषणों से चम्पा का पूरा परिचय हो जाता है। नगर में तीन बा[illegible] होना आवश्यक है। प्रथम ऋद्धि होना आवश्यक है। हाट, महल, मंदिर, बागबगीचे, [illegible] जल स्थल के स्वच्छ निवास ऋद्धि में गिने जाते हैं। किसी नगर में केवल ऋद्धि हो कि[illegible] यदि समृद्धि न हो तो नगर की शोभा नहीं हो सकती। समृद्धि के न होने से लोग भूखों [illegible] लगें। चम्पा नगरी धन धान्य से समृद्ध थी धन के साथ धान्य की भी आवश्यकता है। केवल धन हो और धान्य न हो तो यह कहावत लागू होती है कि.—

सोना नी चलचलाट, अन्ननी फलफलाट।

जीवन निभाने के लिए धान्य की भी पूरी आवश्यकता होती है। धन और ध[illegible] कहने से जीवनोपयोगी प्रायः सब वस्तुएं आजाती हैं। जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए च[illegible] नगरी किसी की मोहताज न थी। वहां सब आवश्यक चीजें पैदा होती थीं। प्राचीन स[illegible] में भारत के हर ग्राम में जीवनोपयोगी चीजें पैदा होती थीं और इस दृष्टि से भारत का [illegible] ग्राम स्वतन्त्र था। ऐसा न था कि अमुक चीज आना बन्द हो गया है अतः [illegible] क्या किया जाय।

पुरातन साहित्य हमें बताता है कि उस समय भारत का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र था [illegible] कोई भी गांव ऐसा न था कि जहां आवश्यक अन्न और वस्त्र पैदा न हो। अन्न तो [illegible] जगह पैदा होता ही था किन्तु वस्त्र भी सब गांवों में बनाये जाते थे। जहां रुई न होती थी [illegible] सन होती थी जो रुई से भी मुलायम थी। हर ग्राम में कपड़े बुनने वाले लोग रहते थे [illegible] इस प्रकार भारत का हर गांव स्वतन्त्र था। नगर तो स्वतन्त्र थे ही। उनमें विशेष कला प्रद[illegible] र्शित होती थीं।

चम्पा में ऋद्धि भी थी और समृद्धि भी। ऋद्धि और समृद्धि के होने पर [illegible] [illegible] है। [illegible] नहीं थी। ठिम्मि[illegible] [illegible] था। [illegible] राजा ह[illegible] [illegible] नहीं करती थी और [illegible] दूसरा [illegible] चाहता है। [illegible] मांगती है। मैं

पूछता हूं कि देवी बकरे का बलिदान ही क्यों मांगती है शेर का क्यों। नहीं बकरा निर्बल है और शेर सबल है अतः ऐसा होता है।

शास्त्र में चम्पा का इस प्रकार वर्णन है। कोई भाई यह कहे कि महाराज त्यागी लोगों को इस प्रकार वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी तो उसका उत्तर यह है कि फल बताने के पूर्व वृक्ष का और बीज का परिचय कराना भी जरूरी होता है। जो फल बताया जा रहा है वह जादू का तो नहीं है। अतः फल के पहले वृक्ष का वर्णन भी आवश्यक है। शील के साथ चम्पा का भी इसी लिए वर्णन है। इस वर्णन को सुन कर आप भी सच्चे नागरिक बनिये और शील का पालन कर आत्म कल्याण कीजिये।

राजकोट
७—८—३६ का
व्याख्यान

धर्म का अधिकार

"मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी.........।"

यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। यदि इस प्रार्थना के विषय में को[illegible] महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की खोज करके व्याख्यान दे तो बहुत लोगों की उल्टी सम[illegible] दूर हो जाय, ऐसा मेरा ख्याल है। मुझे शास्त्र का उपदेश करना है अतः [illegible] विषय में इतना ही कहता हूँ कि भक्ति और प्रार्थना के मार्ग में पुरुषों को अभि[illegible] नहीं करना चाहिए। अभिमान भूले बिना भक्तिमार्ग पर नहीं चला जा सकता [illegible] अहंकार दूर किए बिना भक्ति मार्ग प्राप्त नहीं हो सकता। हम पुरुष हैं, इस बात [illegible] अहंकार त्याग कर चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष जो भी महापुरुष हुए हैं, उन सब की भ[illegible] में तल्लीन हो जाना चाहिए।

बहुत से [illegible] है और इसके को यह मानते हैं कि[illegible] यह [illegible] है। जब कि स्त्री तीर्थं[illegible]

सकती है वैसी हालत में तुच्छ कैसे मानी जा सकती है। और पुरुष को किस बात का अभिमान करना चाहिए। अतः अहंकार छोड़ कर विचार करो और गुणों के स्थान पर मत लाओ।

भगवान् मल्लिनाथ को नमस्कार करके अब मैं उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन की बात शुरू करता हूं। कल महा और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ बताये गये थे। इस द्वादशांग वाणी को सुनने से क्या क्या लाभ है, यह बताने के लिए पूर्वाचार्यों ने बहुत प्रयत्न किए हैं। उन्होंने शास्त्र की पहिचान के लिए अनुबन्ध चतुष्टय किया है। इस बीसवें अध्ययन में यह अनुबन्ध चतुष्टय कैसे घटित होता है, यह देखना है। हम इस बात की जाँच करें कि इस अध्ययन में भी विषय, प्रयोजन अधिकारी और सम्बन्ध है या नहीं।

बीसवें अध्ययन का विषय उसके नाम मात्र से ही प्रकट है। अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थ अध्ययन है। जिससे स्पष्टतया मालूम हो जाता है कि इस अध्ययन में महान् निर्ग्रन्थ की चर्चा होगी। नाम के सिवा प्रथम गाथा में यह स्पष्ट कहा गया है कि मैं अर्थ धर्म में गति कराने वाले सत्य की शिक्षा देता हूं। इससे यह बात निश्चित हो गई कि इस अध्ययन में सांसारिक बातों की चर्चा न होगी। किन्तु जिन तत्त्वों से पारमार्थिक मार्ग में गति हो सके उनकी चर्चा होगी।

अब इस बात का विचार करें कि इस पारमार्थिक चर्चा से समाज को क्या लाभ होगा। आज समाज में इस प्रकार के भ्रान्त विचार फैले हुए हैं कि जिनके कारण धार्मिक उपदेश और उनका प्रभाव केवल नाम मात्र का रह गया है। मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता। मैले कपड़े पर रंग चढ़ाने के लिए पहले उसे साफ करना पड़ता है। इसी प्रकार हृदय अगर मैला हो तो उस पर उपदेश का रंग नहीं चढ़ सकता। यह बात स्वाभाविक है। मुझे प्रतीत है कि आपके सब कपड़े मलिन नहीं हैं अर्थात् आपका हृदय मलिन नहीं है। यदि मलिन होता तो [illegible] उपस्थित न होते। आप यहाँ आते हैं इससे यह प्रकट है कि आपका हृदय [illegible] नहीं है। [illegible]

[illegible]

चाहिए। फिर गुरु के पास जाकर भी निसीही कहना। इस प्रकार तीन बार निस्सीही शब्द का उच्चारण करने का क्या कारण है। घर से निकलते वक्त निस्सीही कहने का मतलब यह है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व ही सांसारिक प्रपञ्च पूर्ण विचारों को मन से निकाल देना चाहिए। निस्सीही शब्द का अर्थ है पाप पूर्ण क्रियाओं का निषेध करना, उनको रोक देना।

जो संसार के कामों और विचारों को छोड़ कर धर्म स्थान पर आता है वही पुरुष धर्म स्थान में पहुंच ने के मकसद को सिद्ध कर सकता है। जो घर से व्यवहार के प्रपंचों को दिमाग में रख कर धर्म स्थान पर जाता है वह वहां जाकर क्या करेगा। वह धर्म स्थान में भी प्रपञ्च ही करेगा। धर्म का क्या लाभ ग्रहण करेगा? धर्म स्थान तक पहुंचने के बाद निसीही इस लिये कहा जाता है कि धर्म स्थान तक तो गाड़ी घोड़ा आदि सवारी पर सवार होकर भी जाया जाता है लेकिन धर्म स्थान में ये सवारियां नहीं जा सकती अतः इनका निषेध भी इष्ट है।

धर्म स्थान तक पहुंच कर अन्दर कैसे प्रवेश करना इसके लिये पांच अभिगमन शास्त्रों में बताये गये हैं भगवान् या अन्य महात्माओं के दर्शन करने के लिये धर्म स्थान में पहुंचने पर पांच अभिगमन का वर्णन शास्त्रों में आया है। प्रथम अभिगमन सचित्त द्रव्य का त्याग है। साधु के पास पान फूल आदि सचित्त द्रव्य नहीं ले जा सकते अतः उनको त्याग कर फिर दर्शनार्थ जाना चाहिये। दूसरा अभिगमन उन अचित द्रव्यों का भी त्याग करके साधु के पास जाना चाहिये जिनका त्याग जरूरी हो। अस्त्र शस्त्रादि पास हों तो उन्हें छोड़ कर साधु के समीप जाना चाहिये। शस्त्रादि लेकर साधु के पास जाना अनुचित है तथा वस्त्रादि का संकोच करना भी दूसरे अभिगमन में है। इसका अर्थ नंगे होकर साधु दर्शनार्थ जाना नहीं है। किन्तु जो वस्त्र बहुत लम्बे हों और जिनसे पास वालों की आसातना हो सकती है उनका त्याग करना चाहिये। तीसरा अभिगमन उत्तरासंग करना है। चौथा अभिगमन जिनके दर्शनार्थ जाना है वे ज्योंही द्रष्टि पथ में पड़े कि तुरत हाथ जोड़ लेना चाहिये। अर्थात् नम्रता पूर्वक धर्म स्थान में पहुंचना चाहिये। पांचवा अभिगमन मन को एकाग्र करना है।

साधु के समीप पहुँचकर निसीही कहने का अभिप्राय यह है कि मैं समस्त सांसारिक प्रपञ्चों का निषेध करता हू। निसीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो और

भिगमन भी कर लिए गये हो किन्तु यदि मन संसार की बातों में गुंथा हुआ ही रहा तो
स्थान में पहुँचने का उद्देश्य हासिल नहीं हो सकता। अतः मन को एकाग्र करके यह
क्ष्य करना चाहिए कि हमें श्रेय सिद्ध करना है।

सारांश यह है कि यदि आपको सिद्धान्त सुनने की रुचि है तो मन को स्वच्छ
नाकर आइये। मन स्वच्छ बनाने का भार मुझ पर डालकर मत आइये। धोबी का काम
बी करता है और रंगरेज का काम रंगरेज करता है। दोनों का काम एक पर डालने से
नन दब जाता है। मैं आप पर धर्म के सिद्धान्तों का रंग चढ़ाना चाहता हूं। रंग चढ़ाया
ा सकता है। किन्तु शर्त यह है कि आपका मनरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये। मन
स्वच्छ बनाकर आने का काम आपका है और उस पर धर्म का रंग चढ़ाने का काम मेरा
। धोबी वस्त्र को जितना साफ निकालकर लायेगा रंगरेज उतना ही आबदार रंग चढ़ा
केगा। रंगरेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है। आप लोगों की तरह यदि
मुझे भी मान प्रतिष्ठा की चाह हृदय में बनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे सकूंगा
र्म का उपदेश देने के लिए उपदेशक को भी स्वच्छ बनना चाहिए। उपदेशक और श्रोता
दोनों स्वच्छ हों तभी धर्म का रंग अच्छी तरह चढ़ सकता है।

इस अध्ययन का विषय तो बता दिया गया है। लेकिन अब यह जानना चाहिए
कि इस अध्ययन के कहने का क्या प्रयोजन है। धर्म में गति कराना इस अध्ययन का
प्रयोजन है। अर्थात् साधुजीवन की शिक्षा देना इस अध्ययन का प्रयोजन है।

आप कहेंगे कि यदि साधुजीवन की शिक्षा देना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है
तो हम गृहस्थ लोगों को यह अध्ययन आप क्यों सुनाना चाहते हैं। पहले आप लोग
यह बात समझलें कि साधु जीवन की शिक्षाएँ आपको भी सुननी आवश्यक है या नहीं।
आपने अपने जीवन का ध्येय क्या नक्की किया है। आप गृहस्थ आश्रम में हैं और साधु
साध्वाश्रम में है। सब क्रियाएँ अपने अपने आश्रम के अनुसार करना ही शोभनीय है। किन्तु
गृहस्थ होने का अर्थ यह नहीं है कि वह धर्म का पालन न करे। यदि गृहस्थ धर्म का पालन
नहीं कर सकते हो तो भगवान् जगत् गुरु कैसे कहलाते। भगवान् साधु गुरु कहलाते।
भगवान् जगत गुरु कहलाते हैं। गृहस्थ जगत् में है अतः गृहस्थ भी धर्म पालन का अधि-
कारी ही है। दूसरी बात गृहस्थ जीवन का उद्देश भी आगे जाकर साधु जीवन व्यतीत
करने का है अतः जो बात आगे जाकर आचरण में लानी है उसका अवश्य पहले से ही कर
लिए जाय तो क्या हानि है। अतः यह शिक्षा गृहस्थों के लिये भी उपयोगी है।

श्रेणिक राजा गृहस्थ था। उसने साधु जीवन की शिक्षाएं सुनी थी यद्यपि वह साधु जीवन स्वीकार न कर सका तथापि साधु जीवन की शिक्षाएं सुन कर तीर्थंकर गोत्र बांध सका था। आपको इस शिक्षा की जरूरत क्यों नहीं है? अवश्य जरूरत है। आप लोग किसी सांसारिक कामना की पूर्ति करने के लिये नहीं आये हैं किन्तु धर्म करने की भावना रखते हैं, अतः आये हैं। इस प्रकार इस धर्म शिक्षा से आप गृहस्थों का भी प्रयोजन है। यदि यह शिक्षा केवल साधुओं के काम की ही होती तो साधु लोग किसी एकान्त शान्त स्थान में बैठ कर चर्चा कर लेते। आप गृहस्थों के बीच में आकर इसका वर्णन न करते। गृहस्थों को भी इस शिक्षा की आवश्यकता है यह अनुभव करके ही आपको यह सुनाई जा रही है। श्रेणिक राजा नवकारसी तप भी न कर सका था किन्तु यह शिक्षा सुन कर हृदय में धारण करके तीर्थंकर गोत्र बांध सका था। आप लोग भी श्रेणिक के समान गृहस्थ हैं अतः इस शिक्षा की जरूरत है।

प्रयोजन बता दिया गया है। अब इस अध्ययन के अधिकारी का विचार करना है। कौन २ व्यक्ति इस अध्ययन की शिक्षा सुनने या ग्रहण करने के पात्र हैं। जिस प्रकार सूर्य सबके लिये है। सब उसका प्रकाश ग्रहण कर सकते हैं। किसी के लिये भी प्रकाश ग्रहण की मनाई नहीं है। इसी प्रकार यह अध्ययन सबके लिये है। इतना होने पर भी सूर्य का प्रकाश वही देख सकता है जिसके आंखें हों और वे खुली हों तथा विकार रहित हों। जिसकी आंखों में उल्लू की तरह किसी प्रकार का विकार हो वह सूर्य प्रकाश ग्रहण नहीं कर सकता। इस अध्ययन की शिक्षा का अधिकारी भी वही है जिसके हृदय चक्षु खुले हुए हैं। किन्हीं लोगों के हृदय चक्षु खुले हुए होते हैं और किन्हीं के अज्ञान रूपी आवरण से ढके हुए होते हैं। जिनके हृदय चक्षु बन्द हैं किन्तु खोलने की चाह है वे भी इस अध्ययन के श्रवण करने के अधिकारी हैं। यह शिक्षा हृदय पट के आवरण को भी हटाती है किन्तु आवरण हटाने की इच्छा होनी चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि जो इस शिक्षा से लाभ उठाना चाहे वही इसका अधिकारी है।

अब इस अध्ययन के [illegible] के विषय में विचार करते हैं। [illegible]

[illegible]

भगवान् ने फरमाया है कि मोक्ष की इच्छा मात्र होने से मोक्ष कागजों से नहीं मिल जाता। कोरे सूत्र बांचने से ही मुक्ति नहीं मिल सकती। सद्गुरु अथवा सदुपदेशक की आवश्यकता होती है। कुगुरु मोक्ष का नाम लेकर विपरीत मार्ग में भी ले जा सकते हैं अतः प्रथम यह जान लेना चाहिए कि धर्म का सच्चा उपदेशक कौन हो सकता है ! शास्त्र में कहा भी है कि

आयगुत्ते सयादन्ते छिन्नसोये अणासवे ।
ते धम्मं सुद्धमक्खन्ति पडिपुन्नं मणेलिसं ॥

अर्थात्—धर्म का उपदेश वे कर सकते हैं जिन्होंने अपने मन पर काबू कर लिया हो, जो सदा विकारों पर काबू रखते हों, जिनका शोक नष्ट हो गया हो, जो पाप रहित हों। ऐसे सदादान्त सन्त पुरुष ही प्रीतिपूर्ण और शुद्ध अनुपम धर्म का उपदेश कर सकते हैं। पहले यह देखना जरूरी है कि अमुक ग्रन्थ या पुस्तक का रचयिता कौन है ! ग्रंथकार की प्रामाणिकता पर ग्रंथ की प्रामाणिकता है। आज कल के बहुत से अपकपरे विद्वान् कहते हैं कि ग्रंथकार के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हें क्या मतलब है, तुम्हें तो वह जो शिक्षा देता है उसे देखो कि वह ठीक है या नहीं। किन्तु ऐसा कहने वाले व्यक्ति भ्रम में हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का उपदेशक वह हो सकता है जो अपनी आत्मा को गुप्त रखता हो। संयमरूपी ढाल में इन्द्रियों को उसी प्रकार काबू में रखता हो जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को ढाल में रखता है। इन्द्रिय दमन करने वाला ही सच्चा उपदेशक या लेखक हो सकता है।

किसने इन्द्रिय दमन कर लिया है और किसने नहीं किया है इसकी पहचान यह है कि जिसकी आंखों में विकार न हो, शारीरिक चेष्टाएं शान्त और पापशून्य हों। इन्द्रिय दमन का अर्थ आंख कान आदि इन्द्रियों का नाश कर देना नहीं है किन्तु उनके पीछे रही हुई पाप भावना को मिटा देना है। आंख से धर्मात्मा भी देखता है और पापी भी। किन्तु दोनों की दृष्टि में बड़ा अन्तर होता है। धर्मात्मा पुरुष किसी स्त्री को देखकर उसके सुधार का उपाय सोचेगा और पापी पुरुष उसी स्त्री को देखकर अपनी वासना पूर्ति का विचार करेगा। जिस प्रकार घोड़े को शिक्षा देकर मन मुताबिक चलाया जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को मन माफिक चला सकता है, उनका गुलाम नहीं किन्तु मालिक बन सकता है, वही इन्द्रिय दमन करने वाला कहा जाता है। घोड़े का मालिक लगाम के जरिये घोड़े को कुमार्ग में नहीं जाने देता उसी प्रकार इन्द्रिय दमन करने वाला इन्द्रियों को विषय विकार की तरफ नहीं जाने देता। आत्म भजन करने में उनका उपयोग करता है। यही इन्द्रिय दमन का अर्थ है।

धर्मोपदेशक हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांच पापों से रहित होना चाहिए। जो सब स्त्रियों को मां बहिन समान समझता हो और धर्मोपकरण के सिवा फूटी कोड़ी भी अपने पास न रखता हो अर्थात् जो कंचन और कामिनी का त्यागी हो वह धर्मोपदेशक हो सकता है और वही प्रीतिपूर्ण, शुद्ध और अनुपम धर्म का उपदेश दे सकता है।

मैंने हिन्दू धर्म के विषय में गांधीजी का लिखा एक लेख देखा है। गांधीजी ने उस समय तक जैन शास्त्र देखे थे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु जो सच्ची बात होगी वह शास्त्र में अवश्य निकल आयगी। गांधीजी ने उस लेख में यह बताया था कि हिन्दू-धर्म का कौन उपदेश कर सकता है ? कोई पण्डित या शंकराचार्य हो इस धर्म का कथन कर सकता है यह बात नहीं है किन्तु जो पूर्ण अहिंसक, सत्यवादी और ब्रह्मचारी हो वही हिन्दू धर्म को कहने का अधिकारी हो सकता है। गांधीजी के लेख के पूरे शब्द मुझे याद नहीं है किन्तु उनका भाव यह था। गांधीजी और जैन शास्त्रों के विचार इस विषय में कितने मिलते हैं इस पर विचार करियेगा।

प्रकृत बीसवें अध्ययन के उपदेशक गणधर या स्थविर मुनि हैं। यह गुरुविषय सम्बन्ध हुआ। अब तात्कालिक उपायोपेय सम्बन्ध देख लें। दवा करना उपाय है और रोग मिटाना उपेय है। इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है ज्ञान प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति। मुक्ति उपेय है और ज्ञान प्राप्ति उपाय है।

संसार में उपाय मिलना ही कठिन है। यदि उपाय मिल जाय और वह किया जाय तो रोग मिट सकता है। डाक्टर और दवा दोनों का योग होने पर बीमारी चली जाती है। किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान मौजूद न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है। यदि रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार हो तो रोटी बनाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार रखी हो परन्तु यदि कर्त्ता रोटी बनाने वाला किसी प्रकार का प्रयत्न न करे तो रोटी कैसे बन सकती है ? आटा और पानी अपने आप नहीं मिल सकते और न रोटी स्वयं पक सकती है। कर्त्ता के उद्योग किये बगैर सब साधन या उपाय किस काम के ? आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या करना चाहिए? गफलत की नींद छोड़कर जागृत हो जाइये जिससे [illegible] के लिए मिले हुए साधन या उपाय व्यर्थ न हो जाय। [illegible] मनुष्य जन्म [illegible] है। यह [illegible] है। [illegible] हो सकते हो।

बहुत से लोग तो कच्ची उम्र में ही चल बसते हैं। यदि आप भी बचपन में ही चल बसते तो आपको कौन उपदेश देने आता। बालक, रोगी और अशक्त धर्म के अधिकारी नहीं माने जाते। उनसे कोई धर्म का उपदेश नहीं करता। अतः ज्ञानीजन कहते हैं कि उठ जाग! कब तक सोता रहेगा।

> उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत
> क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थात्—हे मनुष्यो! उठो जागो और श्रेष्ठ मनुष्यों के पास जा कर ज्ञान प्राप्त कर लो। कारण कि ज्ञानी जन कहते हैं कि छुरे की धारा पर चलना जितना कठिन है उतना ही इस विकट मार्ग (धर्म मार्ग पर चलना कठिन है।

जिस प्रकार प्रातःकाल माता अपने पुत्र से कहती है कि ऐ पुत्र! उठ जाग, खड़ा होजा, इतना दिन निकल आया है, कब तक सोता पड़ा रहेगा! इसी प्रकार ज्ञानी जन भी माता के प्रेम के समान प्रेम से सब जीवों पर दया लाकर कहते है कि ऐ मनुष्यों! किस गफलत में पड़े हुए हो। उठो जागो। भाव निद्रा का त्याग करो। विषय कषायादि विकारों को छोड़ कर आत्म कल्याण के मार्ग में लगजाओ। वैराग्य शतक में ज्ञानी सोते हुए प्राणियों को जगाते हुए कहते है—

> मा सुवह, जग्गियव्वं, पलाइयव्वम्मि किस्स विस्समिह ।
> तिण्णि जणा अणुलग्गा रोगो जराए मच्चुए ॥

हे भोलाभालो! मत सोओ! जाग जाओ। रोग, जरा और मृत्यु तुम्हारे पीछे पड़े हुए है। यह बात बहुत विचारणीय है अतः एक कथा द्वारा इस मुद्दे को सरल बनाकर कहता हूं।

दो मित्र जंगल में जा रहे थे। उन में से एक [illegible] था। [illegible] के साथ ही [illegible] है। सुन्दर [illegible] है [illegible] और [illegible] रहे हैं। [illegible]
[illegible]

आपके सामने भगवद् भक्ति रूपी नाव खड़ी है । आप यदि इस पर बैठ गये तो क्या कमी हो जायगी । तुलसीदासजी ने कहा है—

> जगनम वाटिका रही है फली फूली रे ।
> धुआं कैस धौरहर देखि तूं न भूली रे ॥

संसार की बाड़ी जैसे आसमान में तारे छिटक रहे हों वैसे फली फूली हुई है । मगर यह बाड़ी स्थायी नहीं है ! अतः संसार की भूल भुलैया में न फंसकर परमात्मा की भजन रूप्प नौका में बैठ कर संसार समुद्र पार कर लें ।

आज कल बहुत से भाईयों यह खयाल है कि हमें परमात्मा के भजन करने की कोई आवश्यकता नहीं है । वे कहते हैं कि जो लोग परमात्मा का भजन किया करते हैं वे दुःखी देखे जाते हैं और जो कभी परमात्मा का नाम तक नहीं लेते बल्कि धर्म और परमात्मा का खाधकाट करते हैं, वे लोग सुखी देखे जाते हैं । इस सवाल का जवाब यह है कि केवल परमात्मा का नाम लेना ही सुखी बनने का कारण नहीं है । किन्तु नाम स्मरण के साथ परमात्मा के बताये हुए नियमों का पालन करना भी जरूरी है । कोई प्रकट रूप में परमात्मा का नाम न लेता हो किन्तु उसके बताये नियमों का पालन करता हो तो वह सुखी होगा और कोई नियमों का पालन न करें और खाली नाम रटन्त करता रहे तो उससे दुःख दूर नहीं हो सकते । जो प्रकट रूप से नाम नहीं लेता किन्तु नियम पालन करता है वह सुख के साधन जुटाता है । अतः यह कहना कि परमात्मा का नाम लेने से या भजन करने से कोई दुःखी है कतई गलत धारणा है । भजन के साथ नियम आवश्यक है । एक आदमी ने गाड़ी में बैठे हुए एक पहलवान को देखा । देख कर उसने यह धारणा बांध ली कि गाड़ी में बैठने से आदमी पहलवान हो जाता है । उसे इस बात का भान न था कि पहलवान तो विशेष प्रकार की कसरत करने से बनता है । इसी प्रकार नियम पालने वाला प्रकट में नाम नहीं लेता अतः यह कह डालना कि नाम न लेने से सुखी है भ्रम पूर्ण विचार है । परमात्मा का भजन तो करना मगर उसके बताये नियम न पालना कैसा काम है, इस बात को एक दृष्टान्त से समझाता हूं ।

एक सेठ के दो स्त्रियां थीं । बड़ी स्त्री गादी लगा कर हाथ में माला लेकर अपने पति के नाम भजती रहती था । दिन भर मोतीलालजी मोतीलालजी की रटन

लगाती रहती। घर का कोई काम न करती थी। किन्तु इसके विपरीत छोटी स्त्री घर का सब काम करती रहती थी। उसने अपने मन में यह नक्की किया कि पति का नाम तो मेरे हृदय में है। चाहे मुंह से उसका उच्चारण करूं या न करूं मुझे वे काम करते रहना चाहिये जिनसे पति देव प्रसन्न रहें। एक दिन बड़ी सेठानी सेठ के नाम की माला जपती हुई बैठी थी कि इतने में कहीं बाहर से थके प्यासे सेठजी आगये और उससे कहा कि प्यास लगी है, पानी का लोटा भर कर लादे बड़ी सेठानी ने उत्तर दिया कि इतनी दूर से चल कर आये हो सो तो नहीं थके और अब घर आकर थक गये। पानी का लोटा भी नहीं लाया जाता। मेरे नाम जपन में क्यों बाधा पहुंचाते हो। क्या आपको मालूम नहीं कि मैं किसका काम कर रही हूं। और किसका नाम ले रही हूं। मैं आपही का नाम ले रही हूं।

भाइयों ! बताइये कि क्या बड़ी सेठानी का नाम जपन सेठजी को पसन्द आ सकता है ? सेठजी ने कहा कि तेरा यह नाम जपन व्यर्थ है। एक प्रकार का ढोंग है। दोनों का वार्तालाप सुन कर छोटी सेठानी तुरत अच्छे कलशे में ठण्डा पानी भरलाई और सेठजी की सेवा में उपस्थित किया। इन दोनों स्त्रियों में से सेठजी का मन किसकी ओर झुकेगा। सेठजी किसके कार्य को पसन्द करेंगे। कर्त्तव्य करने वाली के काम को ही सेठजी पसन्द करेंगे। न कि कोरा नाम जपने वाली का काम। इसी प्रकार भक्त भी दो प्रकार के होते हैं। एक केवल नाम जपने वाले और दूसरे नियम पालन या कर्त्तव्य करने वाले।

बहुत से लोग परमात्मा का नाम लेते हैं। किन्तु आपको मालूम है कि वे किस लिए नाम लेते हैं। वे 'रामनाम जपना और पराया माल अपना' करने के लिए नाम लेते हैं। इस तरह परमात्मा का नाम लेना दिखावामात्र है। नाम का महत्त्व नियम पालन के साथ है।

मतलब यह है कि कोई प्रकट में प्रभुनाम लेता है और कोई प्रकट में नाम न लेकर नियम पालन करता है। किन्तु भक्ति नाम न लेनेवाले में भी मौजूद है क्योंकि वह कर्त्तव्य का पालन करता है। अतः ऐसे व्यक्ति को सुखी देखकर यह न मान बैठना चाहिए कि यह नाम न लेने से सुखी है आपके सामने भगवद् भक्ति की नाव खड़ी है। उसमें बैठ जाओ और भक्ति का रस चख लो।

नाटक में पुरुष स्त्री का वेष धारण करते हैं और स्त्री की तरह नखरे दिखाने की चेष्टा करते हैं। ऐसा करने से कभी २ पुरुष बहुत अंशों में अपना पुरुषत्व भी खो बैठते हैं। नाटक में स्त्री बने हुए पुरुष के हाव भाव देखकर आप लोग बड़े प्रसन्न होते हैं। जो खुद अपना पुंस्त्व भी खो चुका है वह दूसरों को क्या शिक्षा देगा।

आज कल लोगों को नाटक सिनेमा का रोग बहुत बुरी तरह लगा हुआ है। घर में चाहे फाकाकसी करना पड़े मगर सिनेमा देखने के लिए तो जरूर तय्यार हो जायेंगे। रुपये खर्च होने के उपरान्त नाटक सिनेमा देखने से क्या २ हानियाँ होती हैं इसका जरा खयाल कीजिये। जब कि लोग बनावटी स्त्री पर भी इतने मुग्ध होते देखे जाते हैं तब अभया पर राजा इतना मुग्ध हो इस में क्या आश्चर्य की बात है। वह तो साक्षात् स्त्री थी और बहुत रूप सम्पन्न थी। आश्चर्य तो इस बात में है कि कहां तो आजकल के लोग जो बनावटी रूप मात्र देखकर मुग्ध बन जाते हैं और कहां वह सुदर्शन जो रूप लावण्य संपन्न अभया पटरानी पर भी मुग्ध न हुआ।

जब मैं अहमदनगर में था तब वहां के लोग मेरे सामने आकर कहने लगे कि एक नाटक कम्पनी आई है जो बहुत अच्छा नाटक करती है। देखने वालों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार उन लोगों ने मेरे सामने उस नाटक मंडली की बहुत प्रशंसा की। उस समय मैंने उन लोगों से यही कहा कि फिर कभी इस विषय में समझाऊंगा।

एक दिन मैं जंगल गया था कि दैवयोग से उस नाटक मण्डली में पार्ट लेने वाले लोग भी उधर ही घूमते हुए आ रहे थे। वे लोग अपनी धुन में मग्न होकर आ रहे थे। मैंने उन लोगों की चेष्टाएं और आपसी बातचीत सुनी। सुनकर मैं दंग रह गया। क्या ये वेही लोग हैं जिनकी नाटक मण्डली की इतनी प्रशंसा मेरे सामने की गई थी। उनकी बातें और चेष्टाएं इतनी गंदी थीं कि कुछ कहा नहीं जा सकता। मैंने मनमें विचार किया कि ये लोग भीम, राम या हरिश्चन्द्र का पार्ट अदा करते हैं, किन्तु क्या दर्शकों पर इनके खुद के आचार-विचारों का असर न होता होगा। क्या केवल इनके द्वारा दिखाये या कहे हुए भीम, राम या हरिश्चन्द्र के [illegible] का ही असर होता है? या नाटक दिखाने [illegible] का पड़ता है? मैं पहले व्याख्यान में कह चुका [illegible] उनके चरित्र का दर्शकों पर असर होता है। [illegible] असर नहीं होता। [illegible]।

कदाचित् कोई भाई यह दलील करे कि हमें तो गुण ग्रहण करना है। हाँ तो कोई कैसा है? इस बात से प्रयोजन नहीं। इसका उत्तर यह है कि यदि गुण ही लेना है, औ सामने वाले का आचरण नहीं देखना है तो नाटक में साधु बनकर आये हुए साधु को आ लोग वंदना नमस्कार क्यों नहीं करते और उसे सच्चा साधु क्यों नहीं मानते। आप कहें वह तो नकली साधु है उसे असली कैसे मानेंगे। मैं कहता हूँ कि जैसे साधु नकली है वैसे अन्य पात्र भी नकली ही हैं। जंगल से वापस लौटकर व्याख्यान में मैंने लोगों से कु कहा कि ऐसे लोगों के द्वारा दिखाए हुए खेल से आपका कुछ कल्याण नहीं होने का है

महारानी अभया बहुत सुन्दर थी और राजा दधिवाहन उस पर बहुत मुग्ध था। फिर भी सुदर्शन रानी पर मुग्ध न हुआ। उसके जाल में न फँसा। ऐसे मह पुरुष की शरण लेकर भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो! ऐसे चारित्रशील व्यक्ति के चारित्र का अंश हमको भी प्राप्त हो।

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा।

जो लक्ष्मीवान् की सेवा करता है क्या वह कभी भूखा रह सकता है। जो भगवान् की शरण जाता है वह भी उनके समान बन जाता है। वैसे ही शील धर्म का पालन करने वाले सुदर्शन की शरण ग्रहण करने से शील पालने की क्षमता अवश्य प्राप्त होगी।

यह चरित्र मनरूपी कपड़े के मैल को साफ करने का भी काम करेगा। लोक-नीति, शरीर रक्षा और संसार व्यवहार की बातें भी इस चरित्र में आयेंगी। आज समाज में जो अनेक कुरीतियाँ घुसी हुई हैं, उनके कारण जो हानि हो रही है, उनके विरुद्ध भी इस चारित्र में कुछ कहा जायगा। अतः इस चरित्र को सावधान होकर सुनिये और शील धर्म को अपनाकर आत्म कल्याण करिये।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

सिद्ध साधक

" श्री मुनि सुव्रत सायवा ....। "

यह २० वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी की प्रार्थना है। [illegible]
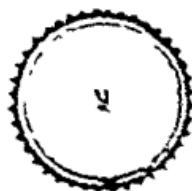
भगवान् ! मैं पाप का पुञ्ज हूं, मुझ में अनन्त पाप भरे हैं। अब मैं तेरी शरण में आया हूं अतः मुझे पाप मुक्त कर दे।

इस प्रकार की प्रार्थना वही कर सकता है जो पाप को पाप मानता है, खुद को अपराधी मानकर स्वगुण कीर्तन की वांछा नहीं रखता तथा अपनी कमजोरियां सुनने के लिए उत्सुक रहता हो। जो अपने गुण सुनने के लिए लालायित रहता है वह अभी प्रभु प्रार्थना से दूर है।

अब शास्त्र की बात कहता हूँ। कल कहा था कि इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहना है वह सब पीठिका, प्रस्तावना या भूमिका रूप से प्रथम गाथा में कह दिया गया है। इस गाथा का सामान्य अर्थ कर दिया गया है। अब व्याकरण की दृष्टि से विशेष अर्थ तथा परमार्थ रूप अर्थ करना बाकी है। इस गाथा में जो शब्द प्रयुक्त किए गये हैं उनसे किन किन तत्त्वों का बोध होता है यह टीकाकार बतलाते हैं।

मैंने पहले यह बताया था कि नवकार मंत्र के पांच पदों में दूसरा सिद्ध पद तो सिद्ध है और शेष चार पद साधक हैं। एक दृष्टि से यह बात ठीक है किन्तु टीकाकार दूसरी दृष्टि सामने रखकर अरिहन्त पद की गणना भी सिद्ध में करते हैं। इस दृष्टि से दो पद सिद्ध हैं और शेष तीन साधक हैं। अरिहन्त की गणना सिद्ध में की जाती है उसके लिए शास्त्रीय प्रमाण भी है। कहा है—

एवं सिद्धा वदन्ति परमाणु।

अर्थात्—सिद्ध परमाणु की इस प्रकार व्याख्या करते हैं। सिद्ध बोलते नहीं। उनके शरीर भी नहीं होता। वैसी हालत में यह मानना पड़ेगा कि यहां जो सिद्ध शब्द का प्रयोग किया गया है वह अरिहन्त वाचक ही है। इससे स्पष्ट है कि अरिहन्त की गणना भी सिद्ध पद में है। शेष तीन पद आचार्य, उपाध्याय और साधु तो साधु हैं ही। उनका नाम निर्देश करके नमस्कार किया गया है।

पुनः यह प्रश्न खड़ा होता है कि जब अरिहन्त को नमस्कार कर लिया गया तब आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार करने की क्या आवश्यकता है। राजा को जब नमस्कार कर लिया गया तब परिषद् बाकी नहीं रह जाती। अरिहन्त राजा है। आचार्य उपाध्याय साधु उनकी परिषद् है। इन्हें अलग नमस्कार क्या किया जाय।

प्रत्येक कार्य दो तरह से होता है। पुरुष प्रयत्न से तथा महापुरुषों की सहायता से। इन दोनों कारणों के होने पर कार्य की सिद्धि होती है। महापुरुषों की सहायता होना बहुत आवश्यक है किन्तु कार्य सिद्धि में स्वपुरुषार्थ प्रधान है। अपना पुरुषार्थ होने पर ही महापुरुषों की सहायता मिल सकती है। और तभी वह सहायता काम आ सकती है। कहावत भी है कि—

हिम्मते मरदां मददे खुदा

यदि मनुष्य स्वयं हिम्मत करता है तो परमात्मा भी उसकी मदद करता है। जो खुद हिम्मत या पुरुषार्थ नहीं करता उसकी कोई कैसे मदद कर सकता है। अतः खुद पुरुषार्थ करना चाहिये। मदद भी मिलती जायगी।

अरिहन्त को नमस्कार करके आचार्यादि को नमस्कार करने का कारण उनसे सहायता प्राप्त करना है। यद्यपि काम स्वपुरुषार्थ से होता है फिरभी महान् पुरुषों की सहायता की आवश्यकता रहती है। जैसे मनुष्य लिखता खुद है मगर सूर्य या दीपक के प्रकाश के बिना नहीं लिख सकता। लिखने में प्रकाश की सहायता लेना अनिवार्य है। मनुष्य चलता खुद है मगर प्रकाश की मदद लेनी है। उसके बिना चलते चलते खड्डे में गिर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक काम में महापुरुषों के सहारे की जरूरत रहती है।

परमात्मा की प्रार्थना के विषय में भी यही बात है। यदि हृदय में परमात्मा का ध्यान हो तो दुर्वासना उस समय टिक ही नहीं सकती। परमात्म ध्यान और दुर्वासना का परस्पर विरोध है। एक समय में दोनों का निर्वाह नहीं हो सकता। जब हृदय में दुर्वासना न रहे तब समझना चाहिए कि अब उसमें ईश्वर का निवास है। यदि जानबूझ कर हृदय में दुर्वासना रखे और ऊपर से परमात्मा का नाम लिया करे तो यह केवल ढोंग है। दिखाव है। सिद्ध और साधक दोनों की सहायता की अपेक्षा है अतः दोनों को नमस्कार किया गया है।

नमस्कार रूप में जो प्रथम गाथा कही गई है उसमें एक बात और समझनी है गाथा में कहा है कि सिद्ध और साधु को नमस्कार कर के तत्व की शिक्षा दूंगा। इस कथन के दो प्रकार हैं। जब एक समय में क्रियाएं हों तब प्रथम क्रिया का अस्तित्व होता है इस क्रिया का प्रयोग अमुक काम के लिये होता है, जैसे कोई कहे कि मैं अमुक काम

करके यह काम करूंगा। इसमें दो क्रियाएं हैं। एक अपूर्ण और दूसरी पूर्ण। प्रस्तुत गाथा में श्री आचार्य ने दो क्रियाएं रख कर एक बड़े परमार्थ की सूचना की है। जैसे सूर्य को अन्धकार के साथ किसी प्रकार का द्वेष नहीं है और न वह अन्धकार का नाश करने के लिये ही उदय होता है। उसका उदय होने का स्वभाव है और अन्धकार का स्वभाव प्रकाश के अभाव में रहने का है। अतः सूर्य उदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञानियों की अज्ञानियों या अज्ञान के साथ किसी प्रकार का द्वेष नहीं है। सत्य का प्रकाशन या निरूपण करने से असत्य या अज्ञान का खण्डन अपने आपही हो जाता है। ज्ञानी के निरूपण से अज्ञानान्धकार नष्ट होता ही है।

इस गाथा में जो क्रियाएं हैं उनमें भी ऐसा ही हुआ है। बौद्धों की मान्यता है कि आत्मा निरन्वय विनाशी है। किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि यह बात सत्य नहीं है। आत्मा का निरन्वय नाश नहीं होता किन्तु सान्वय नाश होता है। पर्यायदृष्टि से आत्मा का नाश होता है द्रव्यदृष्टि से नहीं। जैसे मिट्टी का घड़ा बनाया गया। मिट्टी का पिण्डरूप पर्याय नष्ट होगया और घट पर्याय बन गया। मिट्टी का बिल्कुल नाश नहीं हुआ किन्तु रूप बदल गया है यदि मिट्टी का निरन्वय नाश होजाय तब तो घड़ा किसी हालत में नहीं बनाया जा सकता। जैसे के कड़े को तुड़वाकर हार बनवाया गया। यहां कड़े का नाश हुआ किन्तु निरन्वय नाश नहीं हुआ। कड़ा रूप पर्याय बदल गया और हार रूप बन गया। सोना दोनों अवस्थाओं में कायम रहा। मतलब कि जगत् का हर पदार्थ द्रव्यरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु पर्यायरूप से विनष्ट होता है। यदि द्रव्यही नष्ट होजाय तो फिर पर्याय किसका किया जाय।

इस गाथा में दो क्रियाएँ दिखाई हैं। जिनसे बौद्धों की निरन्वय नाश मानने की बात खण्डित हो जाती है। टीकाकार कहते हैं कि यदि आत्मा निरन्वय नष्ट हो तो [illegible] दोनों क्रियाएं निरर्थक हो जायगी। सिद्ध और स्थविर को नमस्कार करके अर्थ की शिक्षा देता हूं। इस वाक्य में 'नमस्कार करके' तथा 'शिक्षा देता हूं' ये दो क्रियाएं हैं। प्रथम नमस्कार किया गया और बाद में शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया गया। दोनों क्रियाओं का कर्ता आत्मा एक ही है। यदि आत्मा का निरन्वय नाश मान लिया जाय तो दोनों क्रियाओं का प्रयोग व्यर्थ हो जाय। आत्मा द्रव्य रूप नित्य है और पर्याय से अवस्था नष्ट होता है। उसकी पर्याय ही नष्ट नहीं होती किन्तु वह नष्ट हो जाता है। जैसे [illegible] नष्ट हो जाता है फिर शिक्षा देने

देगा। अथवा यह मानना पड़ेगा कि शिक्षा देनेवाला आत्मा दूसरा है क्योंकि नमस्कार करनेवाला आत्मा तो क्षणविनाशी होने के कारण उसी समय नष्ट हो गया। शिक्षा देने के लिए कायम न रहा। इस प्रकार आत्मा को निरन्वय विनाशी मानने से उपर्युक्त दोनों क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। किन्तु आत्मा बौद्ध की मान्यता मुताबिक एकांत विनाशी नहीं है। आत्मा द्रव्यरूप से कायम रहता है। अतः दोनों क्रियाएँ सार्थक हैं। दो क्रियाओं के प्रयोगमात्र से ही बौद्धों की क्षणवादिता का खण्डन होजाता है।

आत्मा का एकान्त विनाश मानने से अनेक हानियां हैं। इस सिद्धान्त पर कोई टिक भी नहीं सकता। उदाहरण के लिये किसी आदमी ने दूसरे आदमी पर दावा दायर किया कि मुझे इससे अमुक रकम लेनी है वह दिलाई जाय। मुदायले ने कोर्ट में हाकिम के समक्ष यह बयान दिया कि यह दावा बिल्कुल झूठा है। कारण यह है कि रुपये देने वाला मुद्दई और रुपये लेने वाला मुदायला दोनों ही कभी के नष्ट हो चुके हैं। हाकिम ने मन में सोचा कि यह देनदार चालाकी करके सिद्धान्त की ओट में बचाव करना चाहता है। अतः उसने उस आदमी को कैद की सजा देने की बात सुनाई। सुन कर वह रोने लगा और कहने लगा कि मैं रुपये दे दूंगा। सजा मत करिये। हाकिम ने उस आदमी से कहा कि अरे रोता क्यों है? तू तो कहता था कि आत्मा क्षण क्षण में पूर्णरूप से विनष्ट हो जाता है और बदल जाता है तब सजा भुगतने वक्त भी न मालूम कितनी बार आत्मा नष्ट हो जायगा और बदल जायगा। दुःख किस बात का करता है। मैं रुपये दिये देता हूं मुझे सजा मत करिये। कह कर उसने उसी वक्त रुपये दे दिये और पिंड छुड़ाया। इस प्रकार वह अपने क्षणवाद के सिद्धान्त पर कायम न रह सका।

कहने का मतलब यह है कि जब भावी पर्याय का अनुभव किया जाता है तब भूत पर्याय का अनुभव क्यों नहीं किया जाता। अवश्य किया जा सकता है। यदि ऐसा माना जाय कि जीव भावी क्रिया का तो अनुभव करता है लेकिन भूत पर्याय का अनुभव नहीं करता तब सब क्रियाएं व्यर्थ सिद्ध होंगी। मोक्ष भी नहीं होगा। आत्मा के विनाश के साथ क्रिया का भी विनाश हो जायगा। इस प्रकार पुण्य पाप कुछ न रहेंगे। अतः हर एक पदार्थ एकान्त विनाशी हैं। यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। टीकाकार ने दो क्रियाओं का प्रयोग करके दार्शनिक मर्म समझाया है।

बीसवें अध्ययन में कही हुई कथा महा पुरुष की है। इस कथा के वक्ता महा निर्ग्रन्थ

है और श्रोता महाराजा है। इन महा पुरुषों की बातें हम जैसों के लिये कैसे लाभ दायी होगी इसका विचार करना चाहिये। इस कथा के श्रोता राजा श्रेणिक का परिचय करते हुए कहा है:—

पभूय रयणो राया सेणिओ मगहाहिवो।

मगधदेश का स्वामी राजा श्रेणिक बहुत रत्न वाला था। पहले रत्न का अर्थ समझ लीजिए। आप लोग हीरे, माणिक आदि को रत्न मानते हो लेकिन ये ही रत्न नहीं हैं, कुछ अन्य पदार्थ भी रत्न कहे जाते हैं। नरों में भी रत्न होते हैं, हाथी, घोड़ा आदि में भी रत्न होते हैं और स्त्रियों में भी रत्न होते हैं। इस प्रकार रत्न का अर्थ बहुत व्यापक है। रत्न का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। जो श्रेष्ठ होता है उसे भी रत्न कहा जाता है। राजा श्रेणिक के यहां ऐसे अनेक रत्न थे।

यह बात विचार करने लायक है कि शास्त्रकार ने श्रेणिक राजा के लिए अन्य विशेषणों का प्रयोग न करके "बहुत रत्नों का स्वामी था" ऐसा क्यों कहा। प्रभूत रत्न कहने का आशय यह है कि यदि कोई अनेक रत्नों का स्वामी हो तो भी उसका जीवन बेकार है। किन्तु जिसने अपने आत्म-रत्न को पहचान लिया है उसका जीवन सार्थक है। यदि आत्मा को न पहिचाना तो सब रत्न व्यर्थ हैं। अन्य सब रत्न तो सुलभ हैं किन्तु धर्म-रत्न दुर्लभ है। धर्मरूपी रत्न के मिलने पर ही अन्य रत्न लेखे में गिने जा सकते हैं। अन्यथा वे व्यर्थ हैं।

आप लोगों को सब से बड़ी सम्पदा मनुष्य जन्म के रूप में मिली हुई है। आप इसकी कीमत नहीं जानते। यदि आप इसकी कीमत जानते होते तो यह विचार अवश्य करते कि हम कंकड़ पत्थर के बदले जीवन रूपी रत्न क्यों खो रहे हैं। आप पूछेंगे कि हम क्या करें कि जिससे हमारा यह मनुष्य जन्म रूप रत्न व्यर्थ न होकर सार्थक बन जाय। आपको रोज यही तो बताया जाता है कि यदि जीवन सफल करना है तो एक एक क्षण का उपयोग करो। वृथा समय मत गमाओ। हर क्षण परमात्मा का घोष हृदय में चलने दो। आत्मा को ईश्वर मय बनाने का प्रयत्न करना रत्न को सार्थक बनाना है।

फिर आप पूछेंगे कि 'आत्मा को परमात्मा कैसे बनाया जाता है' तो इसका उत्तर यह है कि संसार में पदार्थ दो प्रकार के होते हैं १ काल्पनिक २ वास्तविक। पदार्थ

क्रोध क्षोभ आदि विकारों के वश में भी होता है। स्वप्न में सिंह आदि हिंसक प्राणियों को देखकर भयभीत भी होता है। दुःखी भी होता है और सुखी भी। कोई मुझे काट रहा है तथा कोई मेरे शरीर पर चन्दन का लेप कर रहा है आदि भी अनुभव होता है।

स्वप्न की सब घटनाओं से आत्मा की शक्ति का पता लगता है कि बिना भौतिक इन्द्रियों की सहायता के भी वह किस प्रकार सब काम चला लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक पदार्थों के साथ आत्मा का कोई तालुक नहीं है। जो सम्बन्ध है वह वास्तविक नहीं है किन्तु हमारी गलत समझ के कारण है। 'मैं इस तरह की बाहर की चीजों में आत्मा को न डालूं किन्तु परमात्मा में अपने आपको लगाऊं' यह विचार करने से मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

प्रत्येक काम उसके स्वरूप के अनुसार ठीक होना चाहिए। उद्देश्य कुछ और हो और काम कुछ अन्य करते हों तो साध्य सिद्ध नहीं हो सकता। ऐसा करने से 'बनने गये महेश और बन गये मडेरा' वाली कहावत चरितार्थ होती है। कार्य किस प्रकार से करना चाहिए, यह बात एक उदाहरण से समझाता हूं।

एक साहसी चोर साहस करके राजा के महल में घुस गया। महल में वह घुस तो गया, किन्तु राजा की नींद खुल जाने से वह भयभीत होगया। चोर का साहस कितना होता है? मालिक के जाग जाने पर चोर की ठहरने की हिम्मत नहीं रही। राजा को जागा हुआ देख कर चोर ने सोचा कि यदि मैं पकड़ा जाऊंगा तो मारा जाऊंगा। अतः वह चोर वहां से भागा। राजा ने भागते हुए चोर को देख लिया। राजा ने सोचा यदि मेरे महल में से चोर बिना पकड़े भाग जायगा तो मेरी बदनामी होगी अतः वह चोर के पीछे पीछे दौड़ा। आगे चोर भागा जाता था और उसके पीछे राजा भी दौड़ता जा रहा था। राजा को चोर के पीछे दौड़ता देखकर सिपाही आदि भी उसके पीछे दौड़ने लगे। आगे-आगे चोर, उसके पीछे राजा और राजा के पीछे सिपाही। अन्त में चोर थक गया और विचारने लगा कि राजा उसके पीछे ही पड़ रहा है, यदि पकड़ा जाऊंगा तो मेरी खैर नहीं है, अब बचने की भी कोई गुंजाइश नहीं है। भागते हुए ही उसने [illegible]। उसने सोचा कि [illegible] होगा। [illegible] दिया। एक [illegible]

उसका यश: शरीर चरित्र और मोक्ष तीनों मौजूद हैं। जिस शील का आचरण करते हुए आज उसका व्याख्यान किया जारहा है उस शील के प्रताप से धधकती हुई आग भी शीतल होजाती है। दृष्टान्त के लिए सीता की अग्नि परीक्षा प्रसिद्ध ही है। कदाचित् सीता का दृष्टान्त पुराना बताकर कोई भाई इस बात पर एतबार न करे कि शील से अग्नि कैसे शान्त होसकती है तो उनके लिए ऐतिहासिक ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि धर्म की परीक्षा के लिए उनको आग में झोंका गया लेकिन अग्नि उन्हें न जला सकी। केवल भारत में ही ऐसे उदाहरण नहीं है किन्तु युरोप में भी ऐसे उदाहरण हैं। अग्नि कहती है कि मैं कुशील-व्यक्ति को जला सकती हू सुशील या सदाचारी को जलाने की दुम मेरे में ताकत नहीं है। उस सुशील आत्मा की महान आध्यात्मिक शान्ति के सामने मेरी गरमी नष्ट हो जाती है। जब द्रव्यशील की यह शक्ति है तब भावशील की क्या बात करना।

मेरे कथन को सुन कर कि शील पालने से अग्नि शीतल हो जाती है कोई भाई एक आध दिन शील का पालन करके यह जांच न करे कि देखूं मेरे हाथ को अग्नि जलाती है या नहीं। और यह सोच कर कोई घर जाकर चूल्हे की अग्नि में अपना हाथ मत डाल देना। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह मूर्ख गिना जायगा। जिस शक्ति की बात कही जा रही है माप भी उसी के अनुसार होना चाहिये। कहा जाता है और सत्य भी है कि हवा में भी वजन होता है। कोई आदमी एक लिफाफे में भर कर उसे तोलने लगे तो वह न तुलेगी। लिफाफे में हवा न तुलने से कोई आदमी यह निष्कर्ष निकाले कि हवा में वजन होने की बात बिल्कुल गलत है तो यह उसकी भूल है। हवा तोली जा सकती है मगर उसे तोलने के साधन जुदे होते हैं हवा बहुत सूक्ष्म है अतः उसे तोलने के साधन भी सूक्ष्म हैं तो किसी के ऐसा कह देने से क्या हवा के विषय में किसी प्रकार की शंका की जा सकती है।

शील की शक्ति से अग्नि शीतल हो जाती है मगर कब और किस हदतक शील पालने से होती है इसका अध्ययन करना चाहिए। केवल शील की बाधा लेली और करने परीक्षा कि हमारा हाथ अग्नि में जलता है या नहीं तो पछताना पड़ेगा। हाथ कर बैठोगे। शील की प्रशंसा करते हुए शास्त्र में कहा है:—

> देव दाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
> बंभयारिं नमंसन्ति दुक्करं जे करंति तं॥

था। शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर में न पचा सके तो उसे क्या करना चाहिये। धौर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन में एक बार स्त्री प्रसग करना अनुचित नहीं है। ऐसा करना वीर का काम है। जिस प्रकार सिंह जीवन में एक बार सिंहनी से मिलता है। वैसे ही जो जीवन में एक बार स्त्री संग करता है वह वीर पुरुष है। शिष्य ने पूछा कि यदि ऐसा करने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये। धौर ने उत्तर दिया कि साल में एक बार स्त्री प्रसग करना चाहिये। फिर शिष्य ने पूछा यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना। गुरु ने कहा कि मास में एक बार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये, इसके पर धौर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

पवनजय की हनुमानजी एक मात्र संतान थे। अजना पर कोप करके पवनजी बारह वर्ष तक अलग रहे। अलग रह कर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया था किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे। बारह वर्ष बाद अंजना से मिले थे अतः हनुमान जैसा वीर पुत्र हुआ था। आज लोगों को सशक्त और तेजस्वी पुत्र तो चाहिये मगर यह विचार नहीं करते कि हम वीर्य रक्षा कितनी करते हैं। डाक्टर धौर ने कहा है कि मास में एक बार स्त्री प्रसंग करने पर भी यदि मन न रुकता हो तो उस आदमी को मर ही जाना चाहिये क्योंकि जो आदमी मास में एक बार से अधिक वीर्य नाश करता है उसके लिये मरने के सिवा और क्या मार्ग है।

आज समाज की क्या दशा है। आठम चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पड़ती है। आठम चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं मानो हम साधुओं पर कोई उपकार करते हैं। सच्चा श्रावक स्व स्त्री का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी संतोष से काम लेगा। जहां तक होगा बचने की कोशीश करेगा। सब सुधारों का मूल शील है। आप यदि जीवन में शील को स्थान देंगे तो कल्याण है सुदर्शन किसका लड़का था। और उसका जन्म किस प्रकार हुआ यह बात अवसर होने पर आगे कही जायगी।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान
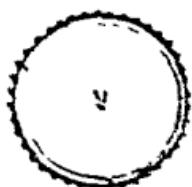
यदि कोई यह कहे कि जब हम शुद्ध परमात्म स्वरूप हैं तब प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता रह जाती है। प्रार्थना तो इसलिए की जाती है कि हम अपूर्ण हैं और परमात्मा सम्पूर्ण है। हम आत्मा हैं वह परम आत्मा है। अपूर्ण से सम्पूर्ण और आत्मा से परमात्मा बनने के लिए ही तो प्रार्थना की जाती है। परमात्म रूप बनकरही कैसे प्रार्थना कर सकते हैं। ऊपर ऊपर देखने से तो यह शंका ठीक मालूम देती है किन्तु आन्तरिक विचार करने से ऐसी शंका कभी नहीं उठ सकती। कुंभकार मिट्टी से घड़ा बनाता है। यदि मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता ही न हो तो कुंभकार क्यों प्रयत्न करने लगा। सोनी सोने का जेवर बनाता है यदि सोने में जेवर रूप बनने की शक्ति ही न हो तो सोनी क्या कर सकता है। आप जो कपडे पहिनते हैं वे सूत के धागों से बुने हुए हैं। यदि सूत में कपड़ा रूप से परिणत होने की योग्यता न हो तो आपके शरीर की शोभा कैसे हो सकती है। यही बात परमात्म स्वरूप बनकर परमात्मा की प्रार्थना करने के विषय में भी समझिये। जिस वस्तु में जैसी शक्ति होती है वही वस्तु वैसी बन सकती है। यदि आप में परमात्मा बनने की योग्यता अथवा शक्ति विद्यमान न हो तो आपको परमात्मा की प्रार्थना करने की बात ही क्यों कही जाय? बीजरूप से आप-हम सब में परमात्मा विद्यमान है। प्रार्थना रूप जल सिंचन करने से वह बीज फल-रूप हो सकता है। बीज ही न हो तो जल और मिट्टी क्या कर सकते हैं। अतः गुलामवृत्ति—दासवृत्ति को छोड़कर अपने लिए यह मानते हुए प्रार्थना करिये कि मैं शुद्ध परमात्मा हूं। इस वक्त कर्मपट रूप आवरण के कारण मेरा ईश्वरत्व ढका हुआ है। हे प्रभो! मैं आप से इसलिए प्रार्थना करता हूं कि आपकी सहायता से मेरे आत्म देव पर लगा हुआ कर्म रूप मैल दूर हो जाय और मैं भी आप जैसा ही बन जाऊं। मैं गुलाम नहीं हूं। मैं स्वतन्त्र हूं। ऐसी भावना रखने से गुलामवृत्ति छूट जाती है।

राष्ट्रीय और आर्थिक स्वतन्त्रता भी स्वतन्त्र भावना रखने से ही प्राप्त हो सकती है। सच्चा यकीन रखे बिना बिना राष्ट्रीय स्वतन्त्रता भी दुर्लभ है। जब तक गुलामी की भावना हृदय में से नहीं निकल जाती तब तक स्वतन्त्रता की बातें व्यर्थ हैं। सब लोग स्वतन्त्रता चाहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न भी करते हैं किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। सबका लक्ष्य तो एक मात्र स्वतन्त्रता प्राप्ति है किन्तु रास्ते जुदे जुदे बन गये जाते हैं। कोई कहता है स्त्रियों को

सुसंगठित बनाये बिना भारत आज़ाद नहीं हो सकता। कोई कहता है बिना सात करोड़ अछूत कहे जाने वाले लोगों का उद्धार किये आज़ादी दुर्लभ है। कोई कहता है बिना गांवों और ग्रामोद्योगों की उन्नति के स्वतन्त्रता की बातें बेकार हैं। कोई खादी को स्वतंत्रता की चाबी बतलाता है मतलब यह कि लक्ष्य एक होने पर भी मार्ग जुदा जुदा बतलाये जाते हैं।

यद्यपि ये सब मार्ग स्वतन्त्रता की प्राप्ति में उपयोगी हैं। किसी न किसी रूप से सब मार्ग काम के हैं। किन्तु आत्मा की गुलामी छूटे बिना सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। जब तक आत्मा में गुलामी के भाव भरे हुए रहेंगे तब तक ये सब जुदे जुदे उपाय भी बेकार होंगे। ये सब उपाय अपूर्ण हैं। पूर्ण उपाय तो गुलाम वृत्ति का त्याग ही है। आत्मिक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता भी इतनी उपयोगी न होगी। जब तक मनुष्य विकारों का गुलाम बना रहेगा तब तक वास्तविक शान्ति प्राप्त कर ही नहीं सकता। मान लीजिये कि एक आदमी खादी पहिनता है मगर दारू और पर स्त्री गमन के व्यसन में फंसा हुआ है। क्या केवल खादी पहिनने मात्र से स्वतंत्रता मिल जायगी। मानसिक गुलामी के रहते अन्य स्वतंत्रता किस काम की? उस स्वतंत्रता से तो उल्टा मनुष्य स्वच्छन्द बन जायगा। अतः कहा गया है कि आत्मा को स्वतंत्र बनाओ। उसमें रहे हुए दुर्गुणों को निकालने का यत्न करो। यदि आत्मा स्वतंत्र होगा तो वह मन और इन्द्रियों का गुलाम न रहेगा। किसी भी दुर्व्यसन में न फंसेगा।

आज मेरा मस्तक ठीक नहीं है। गुजराती भाषा बोलने में दिक्कत होगी अतः हिन्दी भाषा में ही बोल रहा हूं। मुझे उम्मीद है कि हिन्दी भाषा आप सब की समझ में आ जायगी। दूसरी बात, जब कि मैं अपनी मातृभाषा हिन्दी को छोड़कर आपकी भाषा अपनाता हूं। तब क्या आप मेरी भाषा को न अपनावेंगे। हिन्दी राष्ट्र भाषा है। देश के बीस करोड़ आदमी इसका व्यवहार करते हैं। मुझे विश्वास है कि आपको इस भाषा से प्रेम है।

अनेक लोगों ने आत्मा को सदा गुलाम बनाये रखने का ही सिद्धान्त मान रखा है। वे कहते हैं जीव, जीव ही है और सदा जीव ही रहेगा। शिव, शिव ही है और सदा शिव ही रहेगा जीव, शिव नहीं हो सकता। जीव, शिव का दास ही रहेगा। यदि बादशाह किसी नौकर पर प्रसन्न हो जाय तो वह उसे उच्चपद पर पहुँचा देगा। सब से उच्च पद मंत्री का है। भले बना देगा किन्तु बादशाहत तो नहीं देगा। इसी प्रकार ईश्वर भी हमारे कामों

से प्रसन्न होकर हमें सुखी बना देगा, किन्तु ईश्वरत्व तो नहीं दे देगा । बादशाह और नौकर के दृष्टान्त से आत्मा और परमात्मा में जो साम्य बताया गया है वह आध्यात्मिक मार्ग में लागू नहीं हो सकता । बादशाह और नौकर का दृष्टान्त स्थूल भौतिक है । जब कि आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध सूक्ष्म है, आध्यात्मिक है । इस प्रकार की कल्पना आध्यात्मिक मार्ग में कोई मूल्य नहीं रखती ।

अनलहक या खुदा शब्द का अभिप्राय यह है कि मैं ईश्वर हूं । खुदा का अर्थ है जो खुद से बना हो । तो क्या आत्मा किसी का बनाया हुआ है ? क्या यह आत्मा बनावटी है ? जैसे कुंभकार मिट्टी से घड़ा बनाता है, उसी प्रकार हमको भी किसी ने बनाया है ? जब कोई हमें बना सकता है तो कोई हमारा विनाश भी कर सकता है । जैसे कि कुंभकार घड़ा बना भी सकता है और फोड़ भी सकता है । ऊपर के सब प्रश्न निरर्थक हैं । वास्तव में आत्मा ऐसा नहीं है । यदि आत्मा बनावटी हो तो मुक्ति या स्वतन्त्रता के लिए किये हुए हमारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे । हम क्या हैं ? और कैसे हैं ? सो इस प्रार्थना में बताया गया है:—

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो ।
शुद्ध चेतन्य आनन्द विनयचन्द परमारथपद भेंटो ॥ सुज्ञानी ॥

कल्पना और कुमति के कारण [illegible] आत्म स्वरूप को पहिचानिये । आपका आत्मा ईश्वर के आत्मा से छोटा नहीं है । आप तो इतना विकास कर चुके हो, आपकी आत्मा ईश्वर के समान है, इस में क्या संदेह है । सूक्ष्म जितने शरीर में निगोद के अनन्त जीव रहे हुए हैं, उनका आत्मा भी ईश्वर के आत्मा के समान है ।

ज्ञानियों के कथनानुसार निगोद के जीव भी ईश्वर रूप हैं । आत्मा की दृष्टि से ईश्वर और इन जीवों में कोई भेद नहीं है । यह बात समझने के लिए यदि किसी अनुभवी सद्गुरु से दृष्टान्त सहित सुना जाय तो शंका का कोई स्थान न रहे । श्री [illegible] के [illegible] कहा है कि —

शुद्ध आत्मा

[illegible] ' जैसा आत्मा ' [illegible]

लोग पुण्य और पाप का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जो पुण्य लाया है व पुण्य भोगता है और जो पाप लाया है वह पाप । लेकिन यदि सब लोग ऐसा करने लगजायं तो क्या दशा हो? इसका ख्याल करिये । डाक्टर बीमार से कहदे कि तू अपने पापों का फल भोग रहा है मैं कुछ इलाज न करूँगा तो क्या आप यह बात पसंद करेंगे? पापी को पाप का उदय हुआ है मगर आपको किसका उदय है?

> दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवान् पावे, ज्यारे दया की बात सुहावे जी।
> भारी करमा अनन्त संसारी, ज्यारे दया दाय नहीं आवे जी॥

लोग यह मानते हैं कि जिनके पास गाड़ी, घोड़ी, लाड़ी तथा बाड़ी आदि हजर हों, जिसे अच्छा खान पान, कपड़ा, गहना, मिलता हो, तथा जिसके यहां नौकर चाकर वह पुण्यवान् है । इसके विपरीत जिसके पास खाना पीना और कपड़े आदि न हो पापी है । पापी और पुण्यवान् की ऐसी व्याख्या अज्ञानी लोग करते हैं । ज्ञानीजन व्याख्या नहीं करते । वे किसीके पास कपड़े गहने आदि होने से उसे पुण्यवान् नहीं म और न इनका अभाव होने से किसी को पापी ही मानते हैं । ज्ञानी उसको पुण् मानते हैं जिसके हृदय में दया है । और जिसमें दया नहीं है वह पापी है। लोग कहेंगे कि यह नई व्याख्या आपने कैसे निकाली है । मैं कहता हूँ कि आप लो पुण्यवान् और पापी की व्याख्या ऐसी ही मानते हैं जैसी अभी मैं कर रहा हूँ । बात ध्या में आने की देरी है ।

मान लो कि आपका एक लड़का है जो अकेला ही है । यानी आपका इक पुत्र है । वह सड़क पर खेल रहा था । एक सेठ उधर से मोटर में सवार होकर निक धनवानों में अक्सर दुर्व्यसनों का भी प्रचार होता है । जो जैसा होता है उसके नौकर वैसे ही होते हैं । सेठ और ड्रायवर दोनों नशे में मस्त थे । ड्रायवर बेभान होकर मोटर रहा था । आपका लड़का मोटर की झपट में आगया । उसे सख्त चोट आई । लड़ा और बहुत से लोग इकट्ठे हो गये । तब ड्रायवर और सेठ की आँखें खुलीं । सेठ ने कि लड़का घायल हो चुका है अतः यदि मेरे सिर पर भार लूंगा तो सजा हुए बिना न र सेठ कहने लगा कैसे कैसे नालायक लोग हैं जो अपने बच्चों को भी नहीं सभालते । सड़क आवारा छोड़ देते हैं । हमारे मोटर चलने के मार्ग में आड़े आजाते हैं यह भी मालूम कि यह हम लोगों को मोटर निकलने का है । यह लड़का किसका है? हम उस पर मु

भगा देंगे। इस प्रकार वह चिल्लाया और जोर की आवाज से नौकर से कहा कि अमुक वकील के पास जाकर कहो कि मुकदमा चलाना है अतः कानून देखकर दफा निकाल रखें। सेठ मोटर में बैठा हुआ चला गया। लड़का वहीं बेहोश अवस्था में पड़ा रहा। इकट्ठी भीड़ में एक गरीब आदमी भी था। वह बहुत गरीब था। वह तुरन्त उस बच्चे को उठाकर अस्पताल में ले गया और डाक्टर से कहा कि न मालूम यह लड़का किसका है, इसे मोटर एक्सीडेन्ट से चोट आई है। यह बड़ा दुःखी है। आप इस केस को जल्दी ही करने की मेहरबानी करियेगा।

लड़के के घायल हो जाने की बात आपने भी सुनी। साथ में यह भी सुन लिया कि मोटर मालिक श्रीमान् अनेक उपाधिधारी मुकदमा चलाने की धमकी देकर भाग निकले और एक गरीब आदमी बच्चे को उठाकर हॉस्पिटल ले गया है। आप अस्पताल पहुंचे। बच्चे को वहां तक पहुंचाने वाले गरीब को भी देख लिया। आप अपना हृदय पर हाथ रख कर कहिये कि आप किसे पुण्यवान् और पापी समझते हैं। बेहोश नादान बच्चे को छोड़ कर चले जाने वाले को या उसकी दया करके अस्पताल पहुंचाने वाले को पुण्यवान् कहेंगे। मैं तो बच्चे की दया करने वाले को पुण्यवान् कहेंगे और मोटर सेठ को पापी कहेंगे। यद्यपि चालू व्याख्या के अनुसार वह सेठ बड़ा धनवान् और साधन सम्पन्न था और वह गरीब जो कि बच्चे को अस्पताल ले गया कतई गरीब और साधन हीन था हमारा दिल यही कहता है कि वह धनवान् सेठ पापी था और वह गरीब आदमी पुण्यवान् था। आत्मा जिस बात की साक्षी दे वह बात ठीक होती है। सेठ और गरीब में क्या अन्तर है जिससे एक को पापी और दूसरे को पुण्यात्मा कहेंगे। अन्तर है हार्दिक दया भाव का। एक अपने धन के मद में तड़पते बच्चे को छोड़ कर चला गया और दूसरा "आत्मवत् सर्व भूतेषु" के अनुसार बच्चे की वेदना सहन न कर सका और सेवा करने लगा। एक में दया का अभाव था और दूसरे का हृदय दया लबालब भरा था।

यदि वह सेठ धनवान् होते हुए भी मोटर-एक्सीडेन्ट के बाद तुरत नीचे उतर कर बच्चे को संभालता और अस्पताल पहुंचाता तथा अपनी भूल की माफी मांग लेता तो वह भी पुण्यवान् कहलाता। पुण्य और पाप की व्याख्या केवल बाह्य ऋद्धि के होने न होने पर निर्भर नहीं है किन्तु इसके साथ साथ दया भाव भी अपेक्षित है।

सब कुछ कहने का मतलब यह है कि ऊपरी आडम्बर होने से ही किसी को

पुण्यवान् नहीं माना जा सकता। यदि हृदय में दया हो और ऊपरी आडम्बर न हो, तो भी वह पुण्यवान माना जायगा और महापुरुष उसकी सराहना करेंगे।

वह मुनीम कह सकता था कि ऐ लड़के! तू अपने किये का फल भोग! तू अपने पापों का फल भोग रहा है, इसमें मैं क्यों दखल दूं। किन्तु बुद्धिमान और बड़े लोग ऐसी निर्दयता की बात नहीं कहते। वे सोचते हैं कि यदि किसी ने एक वक्त कहना न माना और कुमार्ग में लग गया तो भी भविष्य में उसका सुधार हो सकता है। कौन कह सकता है कि कब किसकी दशा सुधर सकती है और कब नहीं। हमारा तो सदा आशावाद पूर्ण प्रयत्न करने का है। किसी के पूर्व के पाप या अवगुणों पर ध्यान न देकर वर्तमान में यदि वह सुधरना चाहता है तो सुधारने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

कोटि महा अघ पातक लागा, शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा।

ज्ञानीजन शरण में आये हुए के पापों पर ख्याल नहीं करते क्यों कि वे जानते हैं कि जब वह शरण में आगया है तो पाप भावना को भी छोड़ चुका होगा। वे तो उनके जीवन सुधारने का प्रयत्न करते हैं, ज्ञानीजन कीड़े मकोड़े आदि पर भी दया करते हैं तब मनुष्य पर क्यों न करेंगे।

चातुर्मास की [illegible] की दया के सम्बन्ध में मुझे व्याख्यान में कुछ कहना था किन्तु अन्य अन्य बातों में यह बात कहना रह गई थी। संक्षेप में अब कहता हूँ। कई लोग विचार करते होंगे कि इन्होंने [illegible] की गिनती की है इस लिए महाराज ने चातुर्मास किया है। किन्तु यदि चातुर्मास में एक स्थान पर रहने का हमारा नियम न होता तो [illegible] गिनती होने पर भी हम यहाँ ठहर सकते थे? हमारा नियम है अतः यहाँ नहीं तो अन्य [illegible] होने पर भी नहीं रह सकते। चौमासे में वर्षा के कारण बहुत से जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उनकी रक्षा करने के लिए चार मास हम लोग एक स्थान पर ठहरे रहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि जिन जीवों की रक्षा करने के लिए हम यहाँ रहे हैं, उनकी आप भी दया करें। चौमासे में [illegible] बहुत [illegible]

यह दृष्टान्त है । सेठ मुनीम और लड़केके समान ईश्वर महात्मा और संसारी [illegible] बहुतसे साधारणलोग कहते हैं कि हम साधुओंके यहां क्यों जांय और क्यों वहां मुख बांधकर बैठें । मैं पूछता हूँ मुख बांधनेमें उनको शरम क्यों लगती है । वेश्या के यहां जाने में तथा अन्य बुरे काम करने में तो शरम नहीं लगती । केवल मुह बांधने में ही शरम क्यों लगती है कहतेहैं यह तो बूढ़ोंका काम है । इसप्रकार इस आत्मा रूप सेठके लड़केने विषय वासना और संसार के संग से काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद, मत्सरादि दुर्गुणों से प्रेमकर रखा है । ऐसे समय अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा का क्या कर्तव्य है ? उनका कर्तव्य समझाने का है वे बार बार समझाते हैं लेकिन वह नहीं मानता । अंत में आत्मा की स्थिति उस लड़के के समान हो जाती है, जो भीखारी की तरह भीख मांगता है । फिर भी महात्मा लोग उस द्वेष नहीं करते । वे यह नहीं सोचते कि इस ने हमारी सिखामन का अथवा उपदेश का पालन नहीं किया है अतः फल भोग रहा है । महात्मा उसे अपने पास बुलाते हैं कि जैसे उस भिखारी को मुनीम के पास जाने में संकोच हुआ था उसी प्रकार दुर्व्यसनों में फंसे हुए लोगों को साधु-संतों के समीप जाने में सकोच होता है । लज्जा आती है । [illegible] व्यसनों के कारण लज्जित होकर वे दूर भागते हैं । किन्तु महात्मा लोग यह सोचकर कि यद्यपि इसकी आदतें खराब हो गई हैं फिर भी इसका आत्मा हमारे समान ही है । [illegible] की गुंइआरा मानकर पास बुलाते हैं ।

जो लोग यह कहते हैं कि हम साधुओं के पास क्यों जाय और क्यों मुख बांधकर उनके पास बैठें, उनको भी साधु लोग यही उपदेश देते हैं कि भाई सत्सग करो । महा लोग उनके कथन से घबड़ाते नहीं हैं । वे यह सोचकर उन्हें माफ कर देते है कि अज्ञान कारण ये लोग भूले हुए हैं । इनकी आत्मा हमारी आत्मा के समान है । अतः जीवात्मा की बातों पर ध्यान न देकर बार २ सत्सग का उपदेश देते हैं ।

स्त्रियाँ भी कहती है, जो बूढ़ी हैं वे जाकर साधुओं के पास बैठें । हम से ऐसा न होगा, हम नौजवान हैं । उनको खाना पीना मौजमजा करना अच्छा लगता है । साधुओं के पास ऐश आराम का सामान नहीं है अत उनके पास जाना अच्छा नहीं लगता । ज्ञानी कहते हैं, यह इनका दोष नहीं है । ये आत्मा की शक्ति को नहीं जानती अतः दुर्गुण नहीं [illegible] है ।

कई लोग [illegible] धर्मस्थान [illegible] में भी [illegible] करते हैं । आत्मा नहीं है ऐसी दलीलें देते हैं [illegible] नहीं जाते हैं । यदि

वे साधुओं के समागम में आने लगें तो उनका यह संदेह मिट जाय ।

मदिरा न पीना और मांस न खाना यह जैनों का कुल रिवाज है । इस वंश परम्परा-गत रिवाज का पालन तभी तक हो सकता है जब तक लोग हमारे पास आते रहें । हमारे पास न आवें किन्तु आजकल के सुधरे हुए कहे जाने वाले लोगों की सोबत में रहें तो इस रिवाज का पालन नहीं हो सकता । आधुनिक सुधरे कहे जाने वाले लोग तो कहते हैं कि जैन धर्म में मांस मदिरा निषेध निष्कारण ही है । यदि भोजन हजम न होता हो तो थोड़ी शराब पीली जाय तथा शक्ति वृद्धि के लिए मांस भक्षण किया जाय तो क्या हर्ज है । ऐसी शिक्षा पाने वाले लोग कब तक बचे रह सकते हैं । माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि हमारा लड़का बुरी सोहबत में न पड़ जाय । अपने लड़कों को धार्मिक शिक्षा दिलाने का प्रयत्न किया जाय और सदा इस बात का खयाल रखें कि जैन कुल में जन्म लेकर कहीं बुरी स्थिति में न पड़ जाय । प्रयत्न करने और सावधानी रखने पर भी यदि कोई लड़का न सुधरे तो लाचारी होगी । प्रयत्न करने के पश्चात् भी न सुधरने वाले को तो श्रीकृष्ण भी न सुधार सके थे ।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से कह दिया था कि तुम लोग यह मत खयाल करना कि हम कृष्ण के कुल में जन्मे हैं अतः बुरे काम करें तो कोई हर्ज नहीं है । यदि तुम बुरे काम करोगे तो उस के परिणाम से मैं तुम्हारा बचाव नहीं कर सकूंगा । तुम्हारी रक्षा और तुम्हारा उद्धार तुम्हीं स्वयं कर सकते हो । दूसरा कोई नहीं कर सकता ।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

अर्थः—आत्मा से आत्मा का उद्धार स्वयं करो । आत्मा को अवसाद में मत डालो । आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है ।

अतः अपना उद्धार स्वयं करो । दूसरों के भरोसे मत रहो । यदि [illegible] न कर सको तो [illegible] हो जायेगी । जुआ, मदिरा और [illegible] ।

[illegible] जुआ, [illegible] है [illegible] है और जुआ [illegible] है [illegible] है ।

बिजली, ट्राम आदि न थे फिर भी उस समय की स्थिति बहुत सुधरी हुई थी। आज रहे रेल्तार बिजली आदि के बिना कैसे सुधार और कैसा सुख। परन्तु इन के कारण अब जो स्थिति हो रही है उस पर दृष्टिपात किया जाय तो मालूम होगा कि पहिले की अपेक्षा भयंकर दुःख है। ये बाहर के भरके मूल को खराब कर रहे हैं। एक जहाज में बाग नाचरंग, खेलकूद, आदि के सब साधन हैं किन्तु समुद्र के ऐन बीच में उसके छेद होगया अथवा एंजिन खराब होगया, उस समय उस जहाज में बैठने वालों की क्या हालत होगी। नाचरंग आदि उन्हें कैसे लगेंगे। मौज मजा भूलकर वे लोग हाय तोबा करने लगेंगे। दूसरा जहाज ऐसा है जिसमें ऐश अशरत का साजो सामान तो नहीं है मगर न उसमें छेद ही हुआ है और न उसका एंजिन ही बिगड़ा है। दोनों जहाजों में से आप किसे पसन्द करेंगे? दूसरे को पसद करेंगे।

आज के सुधारों के विषय में भी यही बात है। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को लोग आनन्द का कारण मानते हैं। किन्तु इसका एंजिन कितना बिगड़ा हुआ है यह नहीं देखते। हमारे देश के लोगों का दिमाग वहां की सभ्यता के कारण बिगड़ रहा है। वे उस सभ्यता को आनन्ददायिनी मानते हैं। किन्तु मानव जीवन को इस सभ्यता ने कितना खोखला कर दिया है इस बात को नहीं देखते। जिस देश की सभ्यता को आदर्श मान कर पसन्द किया जाता है वहां व्यभिचार को पाप नहीं माना जाता। पेरिस बड़ा सुन्दर शहर है सुना है वहां किसी स्त्री के पास कोई परपुरुष आ जाय तो उसके पति को बाहर चला जाना पड़ता है। यह वहां का रिवाज है, सभ्यता है। अमरिका देश जो सब से समृद्ध और सुधरा हुआ गिना जाता है वहां के लिए भी सुनने में आया है कि सौ में से निन्यानवे लग्न सम्बन्ध वापस टूट जाते हैं। यह है वहां की सभ्यता मैं यह नहीं कहता कि बाह्य ठाट बाट न हो किन्तु आन्तरिक सुधार होना आवश्यक है।

चम्पा जैसी बाहर से सुन्दर थी वैसी भीतर से भी सुसंस्कृत थी। जिस प्रकार खान में से एक हीरा निकलने पर भी वह हीरे की खान कही जाती है जब कि मिट्टी पत्थर उसमें बहुत होते हैं। इसी प्रकार किसी नगर में एक भी महापुरुष हो तो वह उस सारे नगर को प्रसिद्ध कर देता है। अवतार ज्यादा नहीं होते। मगर एक अवतार ही सारे संसार को प्रकाशित कर देता है।

चम्पा आर्य क्षेत्र में गिनी गई है। वहां जिनदास नामक सेठ रहता था। चम्पा में भगवान् महावीर कई बार पधारे थे। कोणिक भी चम्पा में ही हुआ है। यह नहीं क

जा सकता कि चम्पा एक थी या दो। हम इतिहास नहीं सुना रहे हैं किन्तु धर्म कथा सुना रहे हैं। धर्म से अनेक इतिहास निकलते हैं। अतः धर्म कथा से इतिहास को मत तोलो। यह धर्म कथा है। इस में बताये हुए तत्त्व की तरफ ख्याल करो। भगवान् महावीर के समय में ही चम्पा के कोणिक और दधिवाहन दो राजा शास्त्रों में वर्णित हैं अतः कोणिक और दधिवाहन दोनों की चंपा एक ही थी अथवा अलग अलग कहा नहीं जा सकता।

जिनदास चम्पा नगरी में रहता था। वह आनन्द श्रावक के समान श्रावक था। उसकी स्त्री का नाम अर्हदासी था जो श्राविका थी। ये दोनों नाम वास्तविक है या काल्पनिक सो नहीं कहा जा सकता। लेकिन दोनों ही नाम सार्थक और आनन्द दायक हैं। पहले के लोग '**यथा नाम तथा गुण**' होते थे। यही कारण है कि उन के यहां सुदर्शन जैसा लड़का उत्पन्न हुआ था। जैसों का फल तैसा होता है यह प्रसिद्ध बात है। आप भी यदि सुदर्शन जैसा पुत्र चाहते हो तो जिनदास और अर्हदासी जैसे बनो। ऐसा करोगे तो कल्याण है।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

अरिष्टनेमि की दया

"श्री जिन मोहन गारो छे जीवन प्राण हमारो छे।"

यह भगवान् बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमी की प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना एक प्रकार से परमात्मा की भक्ति है। ज्ञानियों ने अनेक अंग बताये हैं। इन में प्रार्थना भी भक्ति का एक मुख्य अंग है। दार्शनिकों ने अपने तत्त्व का पोषण करने के लिए अनेक रीति से प्रार्थना की है। जैन एकान्तवादी नहीं हैं। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु का अनेक दृष्टि से विचार करता है। वह वस्तु को एक दृष्टिसे देखता है और अनेक दृष्टि से भी। अतः जैन की प्रार्थना कुछ और ही है।

भक्ति के साकार और निराकार के भेद से दो भेद हैं। प्रार्थना को साकार भेद से देखना या निराकार भेद से यह एक प्रश्न है। ज्ञानी कहते हैं दोनों का समन्वय किया जाय। दोनों भेदों को मिलाकर प्रार्थना की जाय। प्रार्थना पर अनेक बार बोल चुका हूँ, आज भी कुछ कहूँगा।

ज्ञानी जन कहते हैं कि साकार प्रार्थना के लिए तीर्थंकर और निराकार प्रार्थना के लिए सिद्ध भगवान् हैं। इन दोनों को मिलाकर प्रार्थना करना चाहिए। प्रार्थना करते समय यह भावना रखनी चाहिए कि मैं सब प्रकार से परमात्मा की शरण जाता हूँ। यदि यह भावना न रखी गई, परमात्मा को सर्वस्व समर्पित न किया गया, अपने बल और बुद्धि को अपने में ही रख कर प्रार्थना की गई, उसकी शरण में पूरी तौर से न गये, तो वह प्रार्थना न होगी, प्रार्थना का ढोंग होगा। सच्ची प्रार्थना तब है जब परमात्मा को सर्वस्व अर्पण कर दिया जावे। परमात्मा को अपना सर्वस्व कैसे समर्पित करना चाहिए तथा किस प्रकार सच्ची भक्ति करनी चाहिए यह समझाने के लिए हमारे सामने भगवान् नेमिनाथ और राजीमती का चरित्र मौजूद है। साकार निराकार प्रार्थना का स्वरूप भी इस चरित्र से ध्यान में आ जाएगा।

राजीमती ने भगवान् नेमिनाथ को सिर्फ दृष्टि से देखा ही था और वह भी उनको पति रूप से स्वीकार करने के लिए। उस समय भगवान् दूल्हा बने हुए हाथी पर विराजमान थे। भगवान् राजकुमार थे। उनके साथ श्रीकृष्ण [illegible] थी। उन पर चँवर ढुल रहे थे। राजीमती के मन [illegible] दिव्य [illegible] देखकर कैसे [illegible] हुए थे। पर यह समझ रही थी कि भगवान् [illegible] है। [illegible] देख ही समझते थे कि भगवान् [illegible] यह शृंगार कर रहे थे परन्तु [illegible] रहे थे। [illegible] बड़े ही [illegible] थे [illegible] हुए थे। [illegible] करने के [illegible] थे

छोड़ दें तो संसार को सुधरने में क्या देर लगे। जब मैं जंगल गया था तब रास्ते में एक बोर्ड पर यह लिखा हुआ देखा कि 'आलस्य, मनुष्य के लिए जीवित कबर है।' यदि विचार किया जाय तो यह वाक्य कितना अच्छा और ठीक है। आलस्य ही मनुष्य को जीवित कबर में डालता है। आलस्य के कारण ही मनुष्य अपने कर्त्तव्य की ओर निगाह नहीं करता और दूसरों पर दोष थोपता है।

भगवान् अरिष्टनेमि अपना कर्त्तव्य देखते थे अतः आलस्य त्यागकर रचनात्मक काम किया। यदि वे शक्ति से काम लेना चाहते तो भी ले सकते थे। क्यों कि उन में श्री कृष्ण को पराजित करने जितनी शक्ति थी। हाथ में चक्र लेकर उसका डर दिखा कर भी लोगों से कह सकते थे कि हिंसा बंद करते हो या नहीं। और लोग भी उनके डर के मारे हिंसा बंद कर सकते थे। किन्तु भगवान् जोर जुल्म पूर्वक धर्म प्रचार करने के विरोधी थे। वे जानते थे कि सख्ती के द्वारा यद्यपि लोग ऊपरी हिंसा करना छोड़ देंगे किन्तु उन की भावना में जो हिंसा होगी वह ज्यों की त्यों कायम रहेगी बल्कि जोर जुल्म का शिकार बना हुआ व्यक्ति भाव हिंसा अधिक ही करता है। भगवान् ने शक्ति प्रयोग नहीं किया। हिंसा बंद कराने का काम बड़ा गंभीर है। हिंसा को बंद कराने के लिए हिंसा की सहायता लेना ठीक नहीं है। इस प्रकार हिंसा बंद भी नहीं हो सकती। खून का भरा कपड़ा खून में धोने से कैसे साफ हो सकता है। अहिंसा के गंभीर तत्त्व की रक्षा करने के लिए भगवान् अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। जब उन्होंने उपयुक्त अवसर जान लिया तब भी लोगों से यह न कहा कि मैं अमुक प्रयोजन से बरात सजा रहा हूं। अतः लोगों को सच्ची हकीकत मालूम न थी। भगवान् नेमिनाथ को बरात सजाकर विवाह करने के लिए जाते देख कर इन्द्र भी आश्चर्य में पड़ गये और विचार करने लगे कि इक्कीस तीर्थंकरों से हमने ऐसा सुना है कि बाईसवें तीर्थंकर नेमीनाथ बाल ब्रह्मचारी रहेंगे। फिर भगवान् ऐसा क्यों कर रहे हैं महापुरुषों के कामों में दखल करना ठीक नहीं है सोचकर इन्द्र ने यह नाटक देखने का ही निश्चय किया।

फलानुमेया खलु प्रारंभाः

महापुरुषों ने किस मतलब से कौनसा काम आरम्भ किया है यह साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकते। उस काम के परिणाम से ही जान सकते हैं कि क्या मतलब से वह काम किया गया था।

कि ये जीव सुख के अभिलाषी हैं फिर इनको दुःखी का दुःख भी दूर हो जाता है क्या आप लोगों में दुःख है इसी कारण अन्य लोग भी दुःखी हैं। आप लोग अपने में के दुःख दूर करने के लिये भगवान से प्रार्थना करिये।

भगवान का प्रश्न सुन कर सारथी कहने लगा कि आप यह क्या पूछ रहे हैं क्या आपको यह मालुम नहीं है कि ये पशु यहां क्यों लाये गये हैं।

तुज्झं विवाह कज्जंमि भोयावेउं बहुं जणं।
सोऊण तस्स वयणं बहुपाणि विणासणं॥

हे भगवान्! आपके विवाह में बहुत लोगों को खिलाने के लिए ये प्राणी [illegible] करके रखे गये हैं। इन प्राणियों को मारकर इन के मांस से बहुत लोगों को भो[illegible] दिया जायगा।

यह उत्तर सुन कर भगवान् विचार सागर में डूब गये कि अहो! मेरे विवाह निमित्त ये बेचारे मुक प्राणी इकट्ठे किए गये हैं। ये कुछ देर बाद मार डाले जायेंगे। इन्हें मारा जायगा तब इनका शब्द कैसा करुण होगा। ये कैसे दुःखी होंगे। भगवान बहुत प्राणियों का विनाश वाला उसका वचन सुनकर सारथी से कहा—

जइ मज्झ कारणं एए हम्मन्ति सुबहू जीवा।
न मे एयं तु निस्सेसं परलोए भविस्सइ॥

दूसरों को उपदेश देने की क्या पद्धति है यह भगवान् नेमीनाथ के चरित्र [illegible] समझिये। भगवान् तीन ज्ञान के स्वामी थे फिर भी संसार के लोगों को उपदेश देने के लिए उन जीवों की हिंसा का कारण अपने आपको माना है। भगवान् यह कह सकते थे कि मैं मांस नहीं खाता हूं अतः इन जीवों की हिंसा का दोष मुझपर नहीं आ सकता। ऐसा न कहकर सारथी के कहने पर उन जीवों की हिंसा का कारण अपने आपको मान कर [illegible] दिखाया जाता है। अपने आपको निर्दोष [illegible] [illegible] दिया जाता है। यह बड़ी भारी कमजोरी है।

[illegible] यह प्रश्न हो सकता है कि वे [illegible]
[illegible] कर रहे हैं वे पशु [illegible]

की हिंसा अपने सिर लेकर कह रहे हैं कि यह हिंसा परलोक में निश्रेयस् साधक नहीं हो सकती। अफसोस है कि आज के बहुत से लोगों को तो पाप क्या है इसका भी पता नहीं है। जो पाप ही को नहीं जानता उसे पाप का भय कब हो सकता है। लोक लाज के भय से पाप न करना और दया धर्म से प्रेरित होकर पाप न करने में बड़ा अन्तर है। यदि धर्म बुद्धि से अनुप्राणित होकर पाप न किया जाय तो संसार सुखी हो जाय।

पाप का स्वरूप समझने की आपकी उत्सुकता बढ़ रही होगी। मान लीजिये आप किसी बैल गाड़ी में बैठे हैं चलते चलते गाड़ी रुक जाय तो आप खयाल करेंगे कि गाड़ी में कुछ वस्तु अटक गई है जिससे गाड़ी रुकी है इसी प्रकार हमारी व दूसरे की जीवन नौका चलते चलते जहां रुक जाय वहां समझ लेना चाहिए कि पाप है। आत्मोन्नति की गाड़ी जब भी रुक जाय तब समझ जाना चाहिए कि यह पाप है।

क्या वे पशु–पक्षी भगवान् का विवाह रोक रहे थे जिससे कि भगवान् को इतना गहरा विचार करना पड़ा ? नहीं। वे जीव विवाह में बाधक न थे किन्तु भगवान् नेमिनाथ के हृदय में भगवती दया माता निवास कर रही थी, जो उनको मूक पशुओंकी करुण पुकार सुनने में असमर्थ बना रही थी। आप लोगों को अपनी गाड़ी की रुकावट तो समझ में आ सकती है मगर यह बात समझ में नहीं आती। भगवान् इन बातों को समझते थे। उन्होंने सोचा कि मेरा विवाह शान्तिकारी तथा सुखकारी नहीं है। यदि विवाह शान्तिकारी या सुखकारी होता तो ये मूक पशु पीड़ा न पाते। जिस काम में दीन हीन गरीब लोक या पशु पक्षी सताये जाय वह काम किसी के लिए भी अच्छा या शुभकारी नहीं हो सकता।

भगवान् कितने परदुःख भंजनहार थे। दूसरे प्राणियों की रक्षा के लिए भगवान् तो अपना विवाह तक रोकने के लिए तय्यार हो गये और आज कल के लोग दूसरे के दुःख की रत्तीभर भी परवाह नहीं करते। दूसरे के लिए अपनी जरासी मौजमजा छोड़ने को भी तय्यार नहीं होते। भगवान् कहते हैं कि विवाह सुखमूलक है या दुःखमूलक। यह बात बाड़ों और पिंजड़ों में बंद किए हुए इन मूक प्राणियों से पूछिये। यदि पशु–पक्षीयों के हमारे समान जबान होती और हमारी भाषा में बोल सकते होते तो वे क्या जवाब देते इस बात का खयाल करिये। हम हमारे ऊपर से विचार कर सकते हैं कि आप हम ऐसी स्थिति में पहुंच जाय तो हम क्या करेंगे। कोई जीव दुःख नहीं पसन्द करता। सब सुख चाहते हैं। आप लोगों का रहन सहन पहले की अपेक्षा बदल कर हिंसा पूर्ण होता जा रहा

है। मैं नहीं कहता कि आप लोग सब कुछ छोड़ कर साधु बन जाएं। और बन जाएं तो मुझे खुशी ही होगी। मैं साधु बनने के लिए जोर नहीं दे रहा हूं। मेरा तो यह कहना है कि आज आप जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं उससे बेहतर जीवन व्यतीत कर सकते हैं। आप इस प्रकार जीवन निर्वाह करने का प्रयत्न कीजिये कि जिससे दूसरों को तकलीफ न पहुँचे या कम से कम पहुँचे।

आप लोग तपस्या करते हैं। खासकर स्त्रियां बहुत तपस्या करती हैं। मैं पूछना चाहता हूँ आप पारणा किस दूध से करते हैं। मोल लिए हुए दूध से अथवा घर पर रखी गाय भैंस के दूध से। यदि भगवान् आकर आप से जवाब तलब करें तो आप क्या उत्तर दे सकते हैं। आप कहेंगे कि यदि हम दूध का उपयोग करने में लम्बा विचार करने लगें तो जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। तो क्या आपके पूर्वज इस बात को नहीं समझते थे। पहले के लोग जिस का घी दूध खाते थे उसकी रक्षा करते थे। किन्तु आज के लोग खाना तो जानते हैं मगर रक्षा करना नहीं जानते। जैसे आज यह कह दिया जाता है कि हम क्या करें हम तो पैसे देकर दूध मोल लाते हैं, गायें वाले गायों की क्या हालत करते हैं इस से हमें क्या मतलब। इसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमी भी कह सकते थे कि बाड़े में बंधे हुए पशुओं से मुझे क्या मतलब। मैंने कहा पशुओं को बँधवाया है। मेरी भावना भी बँधवाने की न थी। किन्तु भगवान् ने ऐसा नहीं कहा। उस विवाह यज्ञ के पाप के बोझ को भगवान् ने अपने सिर पर स्वीकार किया। उनके निमित्त से होने वाली हिंसा को उन्होंने अपना पाप माना और उसमें अपना श्रेय नहीं देखा। आप लोग जो मोल का दूध पीते हो उसमें होने वाली हिंसा को आप अपनी हिंसा मानते हो या नहीं। यह हिंसा किसके निमित्त से हुई है, जरा विचार कीजिये।

सुना है कि मेहसाणा और हरियाणा की बड़ी २ भैंसे बम्बई में दूध के लिए आई हैं। घोसी लोग एक भैंस दो दो सो तीन तीन सौ रुपये देकर खरीदते हैं। जब तक वह भैंस दूध देती है और दूध से खर्च आदि की पड़त ठीक बैठती है तबतक रखी जाती है, बाद में कसाई के हाथ बेच दी जाती है। कसाई खानों में भैंसे किस बुरी तरह कत्ल कर दी जाती हैं इसका विचार करें तब पता लगे कि मोल का दूध खाना कितना हराम है। जब भैंस दूध देती है तब [illegible] उन्हें तबेले में [illegible] रखते हैं। बड़ा तंग जगह में वह [illegible]। बम्बई के यहां [illegible] खुली हवा का अनुभव करके भैंसे बड़ी

करना। श्रावकों के लिए शास्त्र में यह विधान है। किन्तु आज के लोग पशु पालन का त्याग कर के इस झंझट से बच रहे हैं और साथमें यह भी समझते हैं कि पाप से भी बच रहे हैं। वास्तव में इस पाप से नहीं बचा जा सकता। पाप से बचाव तब हो सकता है जब मोल का दूध दही मावा आदि खाना छोड़ दिया जाय।

भगवान् नेमीनाथ जैसे समर्थ व्यक्ति धर्म के लिए पशु पक्षियों की हिंसा करने सिर लेकर विवाह करना तक छोड़ देते हैं तो क्या आप दूध दही के लिए मारे जाने वाले पशुओं की रक्षा के लिए मोल का दूध दही खाना नहीं छोड़ सकते। घी दूध खाना है तो पशु रक्षा करनी ही चाहिए। आज तो घर में गाय रखने तक की जगह नहीं होती। मोटर तांगे आदि रखने के लिए जगह हो सकती है मगर गाय के लिए जगह नहीं हो सकती।

श्रावक निरारम्भी निष्परिग्रही नहीं हो सकता किन्तु महारम्भी महापरिग्रही भी नहीं हो सकता। वह अल्पारम्भी अल्प परिग्रही होता है। श्रावक अपना जीवन इस प्रकार की चीजों से चलाता है जिनके निर्माण में कम से कम पाप हो। जिन चीजों में अधिक पाप होता है उनका उपयोग श्रावक नहीं करता। मोलके घी दूध में अल्प पाप है या रक्षा करके घर की पाली हुई गायों के घी दूध में। घरकी रखी हुई गायों के घी दूध में अल्प पाप है।

भगवान अरिष्टनेमी ने यह भी विचार किया कि जिस वंश में मैं जन्मा हूं उस में इस प्रकार के पाप हों यह कैसे सहा जाय। यदि पाप के भार को कम न किया गया तो मेरा जन्म [illegible] जायगा। मेरे विवाह के निमित्त इन दीन हीन प्राणियों के गले पर छुरी चलाई जायगी। अहो! विवाह कितना दुःखदायी है! सारथी से कहा—इन सब जीवों को छोड़ दो। भगवान् की यह आज्ञा सुनकर सारथी कुछ सकुचाया। पुनः भगवान् ने कहा—हे सारथी! डरते क्या हो। मैं आज्ञा देता हूं कि इन जीवों को छोड़ दो।

सारथी ने इन जीवों को छोड़ दिया। [illegible] आसमान में उड़ते हुए [illegible] इसका अनुकर[illegible] [illegible] सामने दूर पर उसे विवाह [illegible] [illegible] से बने थे। उनके [illegible] व्यवहार करने को

पहिली रानी राजा के पास गई। जाकर कहा मैं आप से एक वरदान मांगती हूं वह आज पूरा करना चाहती हूं। राजा ने कहा मांगलो वरदान और मेरा बोझ हल्का कर दो। रानी ने एकदिन के लिए उस शूलीकी सजा पाये हुए व्यक्तिको मांग लिया। उसे खूब खिलाया पिलाया और एक हजार मोहरें भेंट में दी। रात को वह सो गया मगर शूली की याद से उसे नींद नहीं आ रही थी। इन मोहरों का क्या उपयोग है जब कि मैं खुद ही न रहूंगा। दूसरे दिन दूसरी रानी ने भी उसे एक दिन अपने यहां रखकर दस हजार मोहरें भेंट दी। तीसरी ने एकलाख मोहरें दीं, इसप्रकार उसकेपास तीसरेदिन एक लाख ग्यारह हजार दीनारें थी किन्तु उसका दिल शूली की सजा के स्मरण मात्र से बड़ा दुःखी था। चौथी रानी ने विचार किया कि मुझे भी इस बेचारे के दुःख में कुछ हिस्सा बटाना चाहिए।

मृत्यु घण्ट बज रहा हो उस समय यदि कोई मुझे कितना भी धन दौलत दे तो वह मेरे लिए किस काम का हो सकता है यह सोचकर रानी ने उसकी शूली माफ करने का निर्णय किया। राजा की इजाजत लेकर रानी ने उस सजायाफ्ता व्यक्ति को अपने यहां बुलाया। बुलाकर उसे पूछा कि जैसे अन्य रानियों ने तुझे एक एक दिन रखकर मोहरें भेंट दी हैं वैसे मैं भी एक दिन रखकर तुझे दस लाख मोहरें दे दूं अथवा तेरी यह सजा माफ करा दूं। हाथ जोड़कर चोर कहने लगा भगवति ? मोहरें लेकर मैं क्या करूँ। यदि आप मेरी सजा माफ करा दें तो ये एक लाख ग्यारह हजार मोहरें भी आपको देने के लिए तय्यार हूँ। मुझे जीवन दान चाहिए। धन नहीं चाहिए। उसकी बातें सुनकर रानी ने निश्चय कर लिया कि यह आदमी मोहरों की अपेक्षा जीवन को बहुमूल्य समझता है।

आज आप लोग दमड़ी के लिए जीवन नष्ट कर रहे हो। एक का ही जीवन नहीं किन्तु अनेक जीवों के जीवन को बिगाड़ रहे हो। आप अपने कामों की तरफ निरीक्षण करिये। क्या ऐसे कामों के चिकने मसालों से अनेक जीव नष्ट नहीं होते। अतः प्रथम अपनी आत्मा को अभय दान दीजिये। [illegible]

[illegible] बड़ा प्रसन्न हुआ [illegible] अपने दर बार [illegible]

किया । एक एक दिन रखकर मोहरें भेंट देने वाली तीनों रानियां एक तरफ हो गई और कहने लगीं चौथी रानी ने चोर को कुछ भी दिए बिना यों ही टरका दिया । चौथी रानी बोली कि इस प्रकार आपस में वाद विवाद करने से बात का निर्णय नहीं आयगा अतः किसी तीसरे व्यक्ति को मध्यस्थ बना लिया जाय । यह बात सबने स्वीकार करली । राजा को मध्यस्थ बनाकर सब अपना अपना पक्ष उसके सामने रखने लगीं ।

पहली रानी ने कहा कि मैंने एक दिन के लिए चोर को सजा से बचा कर उसके जीवन के बचाने की शुरूआत की है । दूसरी ने कहा मैंने दस हजार मोहरें दी हैं । तीसरी ने कहा मैंने एक लाख मोहरें दी हैं । हम तीनों ने अपनी शक्ति अनुसार देकर इसका कुछ उपकार किया है । मगर यह चौथी रानी तो कुछ दिए बगैर कोरी बातें करके साफ निकल गई है फिर भी अपने काम को हमारी अपेक्षा श्रेष्ट मानती है । आप फैसला कीजिये कि किसका काम अधिक उत्तम है । राजा ने सोचा कि यदि मैं किसी के पक्ष में न्याय दे दूंगा तो मेरा पक्ष-पात समझेगी और इनके आपस में भी झगड़ा हो जायगा । वह चोर जीवित ही है । उसे बुलाकर पूछ लिया जाय । राजाने रानियों से कहा कि मेरी अपेक्षा इस विषय में वह चोर अच्छा न्याय दे सकेगा क्योंकि वह भुक्त भोगी है और उसकी आत्मा जानती है कि किसने उस पर अधिक उपकार किया है । राजा ने चोर को बुलवा लिया और चारों रानीयों का पक्ष समर्थन उसके सामने रख दिया । हे चोर ! ईमानदारी से कहना कि इन चारों रानीयों ने तेरे पर जो २ उपकार किये हैं उनमें सब से अधिक उपकार किसका और कौनसा है । झूठ मत बोलना । चोर ने कहा राजन् ! उपकार तो इन तीनों रानीयों ने भी किया है जिसे मैं जीवन भर नहीं भूल सकता किन्तु चौथी रानी के द्वारा किया गया उपकार सब से महान् है । इसने मुझे जीवन दान दिया है । इसके उपकार का बदला मैं अनेक जन्मों में भी नहीं चुका सकता । यह तो साक्षात् भगवती है । दया की अवतार है । ने कहा तू पक्षपात से तो नहीं कह रहा है ? इसने कुछ भी नहीं दिया फिर भी इसका सब से अधिक उपकार बता रहा है । चोर ने कहा महाराज मैं ठीक कह रहा हूं । मेरे कथन में पक्षपात नहीं है किन्तु नीरी सचाई है । इस चौथी रानी ने मुझे कुछ नहीं दिया है मगर फिर भी सब कुछ दे डाला है । इसने जो दिया है वह मिले बिना जो कुछ इन तीनों ने दिया है वह कैसे सार्थक हो सकता था । दूसरी बात इनकी दी हुई मोहरें पास होने पर भी मुझे यह महान् भय सताता रहा कि प्रातःकाल शूली पर चढ़ना पड़ेगा और जीवन से हाथ धोने होंगे । इस चतुर्थ महारानी ने मेरा सारा भय मिटा दिया और मुझे निर्भय बना दिया

है। सब कुछ आत्मा के पीछे प्रिय लगता है। आत्मा शरीर से अलग हो जाय तो सम्पत्ति किस काम की रहे।

चोर का निर्णय सुनकर पहली तीनों रानियों का पहले मुँह उतर गया किन्तु वे कुलवती थी अतः समझगई और इसबात को मान लिया कि जीवनदान सब दानोंमें श्रेष्ठ है अमुल्य है। राजा ने कहा यदि यह बात ठीक है तो तुम सब में यह चौथी रानी अधिक बुद्धिमती सिद्ध हुई और इस नाते यदि इसे मैं पटरानी बनाऊ और घरकी नायिका करार कर दूँ तो यह मेरी भूल न होगी। सबने उसे बुद्धि मती और पटरानी स्वीकार कर लिया।

चौथी रानी ने कहा मेरे पटरानी बनने से यदि किसी को भय हो तो मैं इसकी सेविका बन कर ही रहना चाहती हूं। किसी प्रकार का कलह पैदा करके अथवा आप लोगों को दुःख देकर मैं पटरानी होना पसन्द नहीं करती। तीनों ने कहा हमें तुम्हारी तरफ न तो भय है और न दुःख। आपकी अक्ल के सामने हम तुच्छ है। आप पटरानी होने लायक है।

मतलब यह है, कि अभयदान सब दानो में श्रेष्ट दान है अभय दान कब दिया जाता है इस पर विचार करिये। आप पांच रुपये में बकरा खरीद कर उसे अभयदान दो अथवा किसी अन्य जीव को मरण से बचा कर उसे अभयदान दो, यह ठीक है। किन्तु पहले आप अपने खुद के लिए विचार करिये कि आप स्वयं अभय अर्थात् निर्भय हैं या नहीं। भगवान् नेमिनाथ के समान आपने अपनी आत्मा को निर्भय बनाया है या नहीं। भगवान् उन मूक पशुओं को बाड़े से छुड़ाकर शादी कर सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा न करके **'तोरण से रथ फेर लिया'** सो सदा के लिए फिरा ही लिया। अपनी आत्मा को अभयदान देने के लिए भगवान् का यह दूसरा कदम था। पहला कदम जीवों को छुड़ाना था। जब कि विवाह दुःख का मूल है विवाह करके आत्म को भय में डालना भगवान् ने उचित नहीं समझा। मुकुट के सिवा सब आभूषण सारथी को दे दिये और स्वयं वापस लौट गये। कहावत है—

वणिकतुष्टं देत हस्ततालो।

बनिये प्रसन्न हो जाय तो एक दो और अमादें मगर कुछ देने में बहुत मंद होता है। भगवान् बनिये नहीं थे जो ऐसा करते। उन्होंने मुकुट के सिवा सब कुछ सारथी को दे डाला। श्रीकृष्ण के भण्डार के ये भूषण। कितने बहु मूल्य होंगे जरा खयाल करिये

राजेमती इनके साथ विवाह करने की इच्छा रखती थी। अतः इनके लौट आने से उसकी क्या दशा हुई होगी। उसने सोचा कि भगवान् मुझे परमार्थ का मार्ग दिखाने आये थे। वे मेरे मोहनगारो हैं। आप लोग केवल गीत गाकर मोहनगारो कहते हैं मगर राजेमती ने उन्हें मोहनगारा बनाया था। कोरे गीत गाने में कुछ नहीं होता। गीत दो तरह से गाये जाते हैं। विवाह आदि प्रसंग पर घर की माता भी गीत गाती है और पड़ोसी स्त्रियां भी इन दोनों गीत गाने वालियों में कोई अन्तर है या नहीं? पड़ोसी स्त्रियां गीत गाकर लेती हैं। माता गीत गाकर देती है। यदि मां भी गीत गाकर लेने लगे तो वह माता न रहेगी पड़ोसिन बन जायगी। उसका माता का अधिकार न रहेगा। आप भी परमात्मा के गीत गायें तो अधिकारी बनकर गाइये। लेने की भावना मत रखिये। अन्यथा अधिकार चला जायगा।

विचार करने से मालूम होता है कि भगवान् नेमीनाथ से राजेमती एक कदम आगे थी। नेमीनाथ तोरण से वापस लौट गये थे। अतः राजेमती चाहती तो उनके हजार अवगुण निकाल सकती थी। वह कह सकती थी कि वरराजा बन कर आये और वापस लौट गये। मुझ से पूछा तक नहीं। यदि विवाह न करना था तो वींद बन कर आये ही क्यों थे। दीक्षा ही लेनी थी तो यह ढोंग क्यों रचा। मैं उनकी अर्धांगिनी बन चुकी थी तो दीक्षा के लिए मेरी सम्मति लेनी आवश्यक थी आदि।

आज के आलोचक विद्वान कह सकते हैं कि नेमिनाथ तीर्थंकर थे फिर भी उनके काम कैसे हैं कि तोरण पर आकर वापस लौट गये। एक स्त्री का जीवन बरबाद कर दिया। विद्वानों की आलोचना पर विचार करने से पहले राजेमती क्या कहती है। एक सखी ने कहा अच्छा हुआ जो नेमजी चले गये। वास्तव में उनकी और तुम्हारी जोड़ी भी ठीक न थी। वे काले हैं तुम गोरी हो। मुझे यह सम्बन्ध पहले से ही नापसन्द था। मगर मैं कुछ बोल नहीं सकती थी। वे जैसे ऊपर से काले हैं वैसे हृदय से भी काले हैं। वींद बन कर आना, [illegible] फिर भी वापस लौट जाना यह हृदय का कालापन है। अच्छा हुआ कि विवाह करने से पूर्व ही चले गये। [illegible] इन दोनों [illegible] अच्छा हुआ। राजेमती! तुम [illegible] [illegible]

दूसरी सखी ने कहा—यह मूर्खा है जो भगवान् की निन्दा करती है। निन्दा करने से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है। लेकिन मैं तुम से यह पूछना चाहती हूं कि थोड़ी देर पहले तुम्हारा क्या विचार था। राजेमती ने उत्तर दिया कि भगवान् की पत्नी बनने का सखी ने कहा—तब इतनी सी देर में वैराग्य कहाँ से आ गया। क्षणिक आवेश में आकर वैराग्य की बातें करती हो किन्तु भविष्य का भी जरा खयाल करो। अभी तो बाजी हाथ में है। अभी तुम्हें विवाह का दाग भी नहीं लगा है। माता पिता से कहने पर दूसरे वर के साथ इसी मुहूर्त में विवाह करा देंगे। आप जैसी कुलवन्ती के लिए वर की क्या कमी है।

राजेमती ने उत्तर दिया कि यह बात ठीक है कि मैं भगवान् की पत्नी बनना चाहती थी। जो सच्ची बात थी तुझ से कही थी। मैं झूठ बोलना अच्छा नहीं समझती। सत्य से विष भी अमृत हो जाता है और झूठ से अमृत भी विष। मैं दिल से उनकी पत्नी बन चुकी हूं गो ऊपर से विवाह संस्कार नहीं हुआ है। मैं समीप से सायुज्य में पहुँच चुकी हूं। अतः अब उनका काम उनका धर्म और उनका मार्ग मेरा काम, मेरा धर्म और मेरा मार्ग होगा। जिस प्रकार लवण की पुतली समुद्र में स्नान करने जाती है और उसी में समाजाती है उसी प्रकार मैं भी भगवान् में समा चुकी हूँ। पहले मैं पति शब्द का अर्थ कुछ और समझती थी किन्तु अब जान गई हूँ कि **'पुनातीतिपतिः'** अर्थात् जो पवित्र बनाये वह पति है। भगवान् ने मुझे पावन बना दिया है। विवाह करने पर एक को सम्मान देना पड़ता है और अन्यों की उपेक्षा करनी पड़ती है। ऐसा न होतो वह विवाह ही नहीं है। मैं भी भगवान् को सन्मान देती हूँ जिन्होंने जगत् की सब स्त्रियों को माता और बहिन बना लिया है। मेरी भगवान् से जो लगन लगी है वह लगी ही रहेगी। वह लगन अब नहीं टूट सकती। चाहे मेरे माता पिता मुझे पहाड़ से गिरादें, विषपान करादें अथवा अन्य कुछ करदें किन्तु भगवान् के साथ जो लगन लगी है वह नहीं बदल सकती।

विवाह आप लोगों का भी हुआ है। जिनके साथ विवाह हुआ है उसके साथ ऐसी लगन लगी है या नहीं। विवाह करके स्त्री किसी पर पुरुष पर नजर न डाले और पुरुष स्त्री पर, यही सबक भगवान् नेमीनाथ और राजेमती के चरित्र

सर्प अन्धेरे रासड़ी रे, सूने घर बेताल ।
त्यों मूरख आतम विषे, मान्यो जग भ्रम जाल ॥

अंधेरे में पड़े हुए रस्से के टुकड़े को देखकर सांप का भान होजाता है। इस काल्पनिक साप को देखकर लोग डर भी जाते हैं । यद्यपि वह साप नहीं है, रस्सी है, फिरभी मनुष्य अपनी कल्पना मे उसे साप मान कर कल्पना से ही भयभीत भी होता है। किसी के भ्रमवश किसी वस्तु को अन्यथा रूप से मान लेने से वह वस्तु बदल नहीं जाती। वस्तु तो जैसी होगी वैसी ही रहेगी । किसी ने कल्पना से रस्सी को सांप मान लिया जिससे रस्सी सांप नहीं बन जाती और न सांप ही रस्सी बन जाता है । केवल कल्पना से मनुष्य अन्यथा मानता है और कल्पना से ही भय भी पाता है । कल्पना भ्रम से पैदा होती है । जब बुद्धि में फितूर होता है तब वास्तविक पदार्थ उल्टा मालूम होने लगता है । यह भ्रम ज्ञानरूपी प्रकाश से मिट सकता है । ज्ञान, प्रकाश है, अज्ञान अंधकार है ।

कल्पना से भय किस प्रकार पैदा कर लिया जाता है और वापस किस प्रकार दूर किया जाता है इस बात का मुझे खुद को भी अनुभव है । एकदा दक्षिण देश में घोडनदी नामक ग्राम में रात के समय बैठा हुआ था । अन्य लोग भी बैठे थे । मैं छाया में बैठा हुआ था । कुछ लोग खुले में भी बैठे थे । हम सब ज्ञान की बातें कर रहे थे । छत पर चाँदनी से कुछ छाया पड़ रही थी । उस छत में एक दराड़ पड़ी हुई थी । उस छाया में वह ऐसी मालूम हुई मानों साप हो । उपस्थित लोगों ने विचार किया कि यदि यह साप रात को यहीं पर पड़ा रह गया तो संभव है किसी को हानि पहुँचावे । यह सोच कर सब लोग उस सांप को पकड़ने का प्रबन्ध करने लगे । कोई साप पकडने का लकड़ी का चिमटा ले आया तो कोई प्रकाश के लिए दीपक । जब दीपक लेकर उसके पास आये तो सब लोग खिल खिलाकर हँसने लगे और एक दूसरे को कहने लगे किसने इसे सांप बताया, यह तो छत में पडी हुई दराड है ।

इस प्रकार उस दराड़ (लम्बा छेद) के विषय में जो भ्रम पैदा हुआ था वह प्रकाश के लाने से दूर हो गया । यदि प्रकाश न लाया जाता तो वह भ्रम दूर नहीं होता। जिस प्रकार साप के विषय में झूठा ज्ञान हो गया था, भ्रम हो गया था । इसी प्रकार संसार के विषय [illegible] हो रहा है । इस भ्रम से न तो आत्मा नष्ट हो सकता है और न मह

पदार्थ चैतन्य। लेकिन आत्मा भ्रम से गड़बड़ में पड़ा हुआ है और इसी कारण जन्म मरण के चक्कर में फंसा हुआ है।

मैंने श्रीशंकराचार्य कृत वेदान्त भाष्य देखा है। उसमें मुझे जैन तत्त्व का ही प्रतिपादन मालूम पड़ा। मैं यह देख कर इस निर्णय पर पहुँचा हूं कि बिना जैन दर्शन के गहरे अध्ययन की सहायता के वस्तु का ठीक प्रतिपादन हो ही नहीं सकता यदि कोई शांति से मेरे पास बैठ कर यह बात समझना चाहे कि किस प्रकार वेदान्त भाष्य में जैन दर्शन का समावेश है, तो मैं बड़ी खुशी से समझा सकता हूं।

वेदान्ती कहते हैं कि— **एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'** अर्थात् एक ब्रह्म ही है दूसरा कुछ भी नहीं है। किन्तु भाष्य में कहा है कि—

युष्मदस्मत्प्रत्यय गोचरयोः विषय विषयिणोः।
तमः प्रकाश विरुद्धस्वभावयोः॥ शांकर भाष्य।

अर्थात् युष्मद् और अस्मद् प्रत्यय के विषयीभूत विषय और विषयी में अन्धकार और प्रकाश के समान परस्पर विरोध है। पदार्थ और पदार्थ को जानने वाले में परस्पर विरुद्ध स्वभाव है। संसार के सब पदार्थ विषय हैं और इन को जानने वाला आत्मा विषयी है। इन दोनों में परस्पर विरोध है। भाष्यकार का कथन है कि न तो युष्मद् अस्मद् हो सकता है और न अस्मद् युष्मद्। दोनों को अंधकार और प्रकाशवत् भिन्न माना है। दोनों एक नहीं हो सकते। जैन धर्म भी ठीक यही बात कहता है कि जड़ और चैतन्य का स्वभाव और धर्म जुदा जुदा है। न तो जड़ चैतन्य हो सकता है और न चैतन्य जड़। इस प्रकार भाष्य का कथन जैन शास्त्र और जैन दर्शन के प्रतिकूल नहीं है किन्तु अनुकूल है—समर्थक है। इसके विपरीत वेदान्त-प्रतिपादित '**एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**' के सिद्धान्त के प्रतिकूल पड़ता है। यदि ब्रह्म के सिवा अन्य कुछ नहीं है तो युष्मद् और अस्मद् अंधकार और प्रकाश, पदार्थ और पदार्थ को जानने वाला, एक हो जायंगे। ब्रह्म चैतन्य स्वरूप माना गया है। यदि दोनों पदार्थ चैतन्य रूप हों तब तो एक में मिल सकते हैं। किन्तु यदि दोनों तमः प्रकाशवत् भिन्न गुण वाले हों तब एक में कैसे मिल सकते हैं। अगर दोनों अलग अलग रहते हैं तो "**एको ब्रह्माद्वितीयोनास्ति**" सिद्धान्त कहां रहा। इस प्रकार विचार करने से सभी जगह जैन तत्त्व और जैन दर्शन की स्याद्वाद शैली मिलेगी। स्याद्वाद शैली बिना वस्तु तत्त्व विवेचन ठीक नहीं हो सकता।

मतलब यह है कि आत्मा ने अपने भ्रम से ही जगत् पैदा कर रखा है। जिस तरह रस्सी में सांप की कल्पना हुई उसी प्रकार मैं दुबला हूं, मैं लंगड़ा लूला हूं, आदि अनेक कल्पनाएं की जाती हैं। विचार करने पर मालूम होगा कि आत्मा न दुबला है और न लंगड़ा लूला। दुबला और लंगड़ा लूला शरीर है मगर भ्रमवश शरीर के धर्म आत्मा में मानकर मनुष्य भयभीत या दुःखी होता है। आत्मा और शरीर के गुण स्वभाव भिन्न भिन्न हैं। अज्ञानवश जीव दोनों को एक मानता है और अनेक प्रकार का जाल रचता है। इस भ्रम को मिटाने के लिए तथा काल्पनिक जगत् बनाने से बचने के लिए प्रार्थना में कहा गया है 'जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वंद'। भगवद् भक्ति से सब प्रकार के भ्रम मिट जाते हैं भ्रम मिटने पर दुःख कभी नहीं हो सकता।

इसी बात को जैन सिद्धान्त के अनुसार देखें कि आया यह संसार भ्रम-कल्पना से ही बना हुआ है अथवा वास्तविक है। शास्त्र कहते हैं व्यवहार दृष्टि से जगत् वास्तविक है और निश्चय दृष्टि से काल्पनिक। इस विषय का विशेष खुलासा उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में किया गया है।

महानिर्ग्रंथ अध्ययन में नाथ अनाथ की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि जीव भ्रमवश अपने को अनाथ मानता है और अभिमान से नाथ समझता है। वस्तुतः में वह न नाथ है और न अनाथ है। नाथ अनाथ का सच्चा स्वरूप बताकर राजा श्रेणिक का भ्रम मिटाया गया है। इसी बात को समझ कर किसी बात का त्याग न करने पर भी केवल सच्ची समझ पैदा हो जाने के कारण राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर गोत्र बांध लिया था। महानिर्ग्रन्थ और श्रेणिक का संवाद ध्यान पूर्वक सुनने से उसका रहस्य ध्यान में आयगा। मैं अनाथी मुनि के चरण रज के समान भी नहीं हूं और आप भी श्रेणिक राजा के समान नहीं हैं। फिर भी उन मुनि की बातचीत कहने के लिए मुझे जैसे अपने आत्मा को तैयार करना होगा वैसे आपको भी कुछ तय्यारी करनी होगी। जैसे उस चोर ने मुर्दे का पार्ट अदा किया था वैसे आपको भी श्रेणिक का पार्ट अदा करना चाहिए। ऐसा करने पर इस कथा का रहस्य समझ में आयगा।

राजा श्रेणिक के परिचय के लिए इस कथा में कहा गया है—

पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवो।
विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिसि चेइए ॥ २ ॥

पहले पात्र का परिचय कराना आवश्यक होता है। श्रेणिक इस कथा में प्रधान पात्र है। वह अनेक रत्नों का स्वामी था। श्रेणिक साधारण राजा नहीं था किन्तु मगध देश का अधिपति था।

शास्त्र में श्रेणिक को बिम्बिसार भी कहा गया है। श्रेणिक की बुद्धिमत्ता के लिये कथा प्रसिद्ध है। श्रेणिक के पिता प्रसन्नचन्द्र के सौ पुत्र थे। पिता यह जानना चाहता था कि उसके पुत्रों में सबसे अधिक बुद्धिमान कौन है। परीक्षा करने के लिये प्रसन्नचन्द्र ने एक दिन कृत्रिम आग लगा दी और अपने पुत्रों से कहा कि आग लगी है अतः महलों में से जो सार भूत चीजें हों उन्हे बाहर निकाल डालो। पिता की आज्ञा पाते ही सब लड़के अपनी २ रुचि के अनुसार जिसे जो वस्तु अच्छी लगी वह निकालने लगा श्रेणिक ने घर में से दुन्दभी निकाली। दुन्दभी को निकालते देख कर उसके सब भाई हंसने लगे और कहने लगे कि यह कैसा आदमी है जो ऐसे अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है। नगारा के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर में नहीं दिखाई दी जो इसे निकालना पसन्द किया है। यह अब नगारा बजाया करेगा। मालूम होता है, यह ढोंगी है। खजाने में से रत्नादि न निकाल कर यह दुन्दुभी निकाली है।

ऊपर की नज़र से श्रेणिक का यह काम बड़ा हल्का मालूम पड़ता था मगर इसके मर्म को कौन जाने। राजा प्रसन्न चन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए भी उस समय प्रसन्न चन्द्र ने श्रेणिक की प्रशंसा करना उचित नहीं समझा। कारण निन्यानवे भाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। क्लेश हो जाने की सम्भावना थी। प्रसन्न चन्द्र ने पुत्रों से पूछा कि क्या बात है। सबने कहा कि हमने अमुक अमुक चीज़ निकाली है पर पिताजी हम सब बड़े हैरान हैं कि आग के बुझते समय हुए श्रेणिक ने नगारा निकाला है। इससे बढ़कर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने में इसे नहीं मिली। आप की क्या कमी है। इस [illegible] रत्नों में [illegible] है। यह [illegible] मालूम पड़ता है। प्रसन्न चन्द्र ने श्रेणिक की ओर नज़र कर के कहा [illegible] तुम [illegible] क्या [illegible] हो। श्रेणिक ने उत्तर दिया [illegible] क्या कमी है। यह नगारा राज्य चिह्न है। यदि यह [illegible] राज्य चिह्न [illegible] है और यदि यह बच जाय तो सब कुछ बच गया समझना चाहिये। [illegible] से अनेक रत्न [illegible] किए जा सकते हैं

कामदेव गृहस्थ नहीं थे। वे नहीं डरते थे तो आप क्यों डरते हो। यह कहो कि हमें अभी आत्मा और शरीर के तलवार–म्यान के समान पृथक् २ होने में पूरा विश्वास नहीं है। कुछ संदेह है।

यह पिशाच मेरे शरीर के टुकड़े करना चाहता है किन्तु अनन्त इन्द्र भी मेरे टुकड़े नहीं कर सकते। मैं जानता हूं और मानता हूं कि टुकड़े शरीर के हो सकते हैं आत्मा के नहीं। शरीर के टुकड़े होने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता। शरीर तो पहले से ही टुकड़ों से जुड़ा हुआ है।

मैं सब सन्त और सतियों से यह बात कहना चाहता हूं कि यदि हमारे अन्दर भी भूत पिशाच आदि का भय रहा तो यह हमारी कमजोरी होगी। विद्यार्थी के परीक्षा में फेल होने पर जैसे अध्यापक को शर्मिन्दा होना पड़ता है वैसे ही श्रावक श्राविकाओं के भय होने पर साधुओं को शर्मिन्दा होना चाहिए। भगवान् महावीर का धर्म प्राप्त करने के बाद भय करने की बात ही नहीं रहती।

कामदेव ने हँसते हुए कहा—ले शरीर के टुकड़े कर डाल। कामदेव यही विचार करता है कि इस पिशाच ने धर्म नहीं पाया है अतः यह ऐसा काम करता है। मैंने धर्म प्राप्त किया है अतः इस अग्नि परीक्षा में उतरकर अपने धर्म को शुद्ध साबित करूं। जैसे इसने मुझ पर निष्कारण वैर भाव लाना अपना धर्म मान रखा है वैसे मैंने भी निष्कारण वैरियों पर क्रोध न करना अपना धर्म मान रखा है। अधर्म वैर करना सिखाता है और धर्म प्रेम करना। यदि मैं शान्त–स्वभाव छोड़ कर अशान्त बन जाऊं तो इस में और मुझ में क्या अन्तर रहेगा।

दैवी और आसुरी दो प्रकार की प्रकृतियाँ होती हैं। यहाँ इन दोनों की [illegible] है। गीता में इन दोनों प्रकृतियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ ! संपदमासुरीम् ॥

[illegible] आसुरी प्रकृति के [illegible]
[illegible] स्पष्ट किया गया है।

कामदेव श्रावक भी शरीर के टुकड़े होते समय हँसता ही रहा। आखिर देव हार गया और अपना पिशाच रूप छोड़कर दैवी रूप प्रगट किया। कामदेव ने अपने कठोर धर्म के जरिये पिशाच को देव बना लिया। भगवान् महावीर देवाधिदेव हैं। अनन्त इन्द्र मिलकर भी उनका एक रोम नहीं डिगा सकते। आप ऐसे भगवान् के शिष्य हैं अतः कुछ तो दृढ़ता रखिये। जो बात सागर में होती है थोड़े बहुत रूप में वह गागर में भी होनी चाहिए। भगवान् का किंचित् गुण भी हम में आये तो हम निर्भय बन सकते हैं।

देवता कामदेव से कहने लगा कि इन्द्र ने आप के विषय में जो कुछ कहा था वह ठीक निकला। मैंने आपके शरीर के टुकड़े क्या किये मेरे पाप के ही टुकड़े कर डाले। जिस प्रकार लोहे की छुरी पारस के टुकड़े करते हुए स्वयं सोने की बन जाती है उसी प्रकार आप की धर्म दृढ़ता देखकर मेरे पाप विनष्ट हो गये हैं। मैं अब ऐसे काम कभी न करूंगा।

कहने का सारांश यह है कि श्रेणिक राजा अनेक रत्नों का स्वामी था मगर एक धर्म रूप रत्न की उसमें कमी थी। वह जल तारिणी, उपद्रवादि नाशिनी विद्याएं जानता था किन्तु धर्म रूप रत्न उसके पास न था। और इसीसे वह अनाथ था।

आम अनाथ उसे कहा जाता है जिसका कोई रक्षक न हो। जिसे कोई खाने पीने की वस्तुएं देने वाला न हो। और जिसका रक्षक हो तथा खाने-पीने की वस्तुएं देने वाला हो वह सनाथ गिना जाता है। किन्तु महा निर्ग्रन्थअध्ययन नाथ अनाथ की व्याख्या कुछ और प्रकार से करता है, यह बात अवसर होने पर बताई जायगी।

सुदर्शन चरित्र—

> जिनपुर सेठ श्रावक दृढ़ धर्मी, यथा नाम जिनदास।
> अर्हदासी नारी खासी रूप शील गुणवान रे ॥ धन० ॥ ५ ॥
> दास सुभग बालक अति सुन्दर गौएं चरावन हार।
> सेठ प्रेम से रखे नेममे करे साल संभाल रे ॥ धन० ॥ ६ ॥

कथा में सुदर्शन का जो पूर्व भव का चरित्र बताया गया है उसमें अपने चरित्र को सुधारने की शिक्षा लेना चाहिए। सुदर्शन के परिचय के साथ उसके मां बाप का भी

नेक प्रयत्न किए मगर सब व्यर्थ गये। अंत में सेठ ने सोचा कि दर्द कुछ और है और
जाम कुछ और हो रहा है। सेठानी से चिन्ता का कारण पूछा।
ठानी से अब रहा न गया। विचार करने लगी कि मेरे पति मेरे सुख दुःख के साथी हैं
त: इनके सामने अपनी चिन्ता प्रकट करना चाहिए। सेठानी ने कहा मुझे कपड़े लत्ते
ौर गहने आभूषण की चिन्ता नहीं है। जो स्त्रियां ऐसी चिन्ता करती हैं वे जीवन का
र्थ नहीं समझतीं। मुझे तो यह चिन्ता है कि आपके जैसे योग्य पति के होते हुए भी
मारे घर में हमारा उत्तराधिकारी घर का रख वाला नहीं है। मैं अपना कर्तव्य पूरा न कर
की। कुल दीपक के बिना सर्वत्र अंधेरा है।

सेठानी का कथन सुनकर सेठ विचार करने लगे कि मैं जिन भक्त हूँ। संतान
ाप्ति के लिए नहीं करने योग्य काम मैं नहीं कर सकता। योग्य उपाय करना बुद्धिमानों
ा काम है। सेठानी से कहा—प्रिये! हम लोग जिनेश्वर देव के भक्त हैं। पुत्र होना न
ाना हमारे हाथ की बात नहीं है। यह बात भाग्य के अधीन है। ऐसी चिन्ता करना
पने नाम को लजाना है। अतः चिन्ता छोड़ कर अपनी संपत्ति दान आदि कामों में
गाओ जिससे संतान विषयक अन्तराय टूटनी होगी तो टूट जायेगी। हमारा धन किसी
योग्य हाथ में न चला जाय अतः अपने हाथों से ही पात्र कुपात्र का ख्याल रखकर
ान दें। सेठ ने सेठानी की चिन्ता मिटादी और दोनों पहले की अपेक्षा अधिक धर्म
रणी करने लगे। इनके घर में रहने वाला सुभगदास ही भावी सुदर्शन है। दास क्या
रके सुदर्शन बनता है इसका विचार आगे है।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान

करले तो उसका दिवाला निकल जायगा। चतुरव्यक्ति घाटकी तरफ गौणरूप से देखेगा। उसकी नजर सोने की तरफ होगी कि यह सोना कितना शुद्ध है। आप लोग भी दागीने खरीदते वक्त केवल डिजाइन (घाट) की तरफ नहीं देखेंगे किन्तु सोनेके टच देखोगे। द्रव्य की तरफ नजर रखोगे। वस्तु का मूल्य द्रव्य के आधार पर होता है। बनावट मुख्य आधार नहीं होती। जबकि बनावट भी रखनी पड़ती है। बनावट का खयाल न रखने से घर की श्रीमती जी के नापसन्द करने पर वापस बाजार का चक्कर लगाना पड़ता है।

ज्यों कन्चन तिहुं काल कहिजे, भूषण नाम अनेक ।
त्यों जग जीव चराचर योनि, है चेतन गुण एक ॥

ज्ञानी कहते हैं केवल पर्याय की तरफ ही मत खयाल रखो मगर द्रव्य को भी देखो। कहा है।

जिस प्रकार सुवर्ण हर समय सुवर्ण ही कहा जाता है चाहे उसके बने आभूषणों के कितने ही नाम क्यों न रख लिए गये हों। उसी प्रकार चाहे जिस योनि का जीव हो किन्तु आत्मा सब में समान है। जीव की पर्याय कोई भी हो, चाहे देव हो, मनुष्य हो तिर्यञ्च हो, नारक हो, सब में आत्मा समान है। आपने देव और नारक जीवों को आँखों से नहीं देखा है। शास्त्र में सुने हैं। किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च जीवों को प्रत्यक्ष देख रहे हो। ये सब पर्याय हैं। आत्मा की यही भूल है कि वह इन पर्यायों को देखता है मगर इन में जो चेतन द्रव्य रहा हुआ है उसकी तरफ लक्ष्य नहीं देता। घाट पर मोहने वाली स्त्री जैसे पीतल के दागिने खरीद कर अपनी भूल पर पछताती है उसी प्रकार पर्याय का खयाल करने वाला द्रव्य की कद्र नहीं करके पछताता है।

आत्मा इस प्रकार की भूल न करे अतः ज्ञानियों ने अहिंसा व्रत बतलाया है। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रत इसी के लिए हैं। अहिंसा व्रत में यही बात है कि अपनी आत्मा के समान सब जीवों को मानो। 'अप्पसमं मनिज्ज छप्पि काये' छहों काया के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानो। पर्याय के कारण भेद मत करो। जब तक अपनी आत्मा के समान सब जीवों को नहीं माना जाता तब तक अहिंसा व्रत का पालन नहीं हो सकता। जिसे पूर्ण अहिंसा का पालन करना होगा उसे पर्याय की तरफ

को देखते हैं । पुट्ठा बदल लेने से पुस्तक नहीं बदलती । 'एगे आया' के सिद्धान्तानुसार सब आत्माएं समान हैं । अन्तर केवल पर्यायों और शरीरों का है । हमारी भूल का मूल कारण यही है कि शरीरों के अनित्य होने से हम आत्मा को भी अनित्य मानने लग जाते हैं । आत्मा नित्य है । शरीर अनित्य है । आत्मा को नित्य मानने पर पर्यायें अपने आप जुदा मालूम होंगी और अनित्य भी मालूम होंगी ।

उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में यही बात बताई गई है । कल कहा था कि राजा श्रेणिक मगध देश का अधिपति था और प्रभूत रत्नों का स्वामी था । आगे कहा है कि:—

> पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवा ।
> विहार जत्त निज्जाओ मंडिकुच्छिसि चेइये ॥ २ ॥
> नाणा दुम लयाइण्णं नाणा पक्खि निसेवियं ।
> नाणा कुसुम संच्छिन्नं उज्जाणं नंदणोवमं ॥ ३ ॥

महाराजा श्रेणिक को सब रत्न मिले हैं मगर एक समकित रूप रत्न नहीं मिला है । रत्न प्राप्त नहीं हुआ है । वे इसकी खोज में हैं ।

आप लोग समकित रत्न को बड़ा मानते हो या मिट्टी के बने रत्न को ? [illegible] जितने [illegible] होते हैं उतनी क्या समकित रत्न के लिये [illegible] होते हैं । [illegible] लिये [illegible] धर्म करते हैं । यह बात प्रत्यक्ष मानते हुए कि अमुक स्थान पर मिलेंगे, [illegible] धन या कीर्ति मान की कामना से चले जाते हैं । क्या कामदेव श्रावक दुःखी नहीं था ? वह भी दुःखी ही था किन्तु उसके मन में समकित की कीमत इन रत्नों की अपेक्षा अधिक थी । आपके एक हाथ में रत्न हो और एक में कौड़ी । आप किस [illegible] को अधिक [illegible] ? यदि कोई कौड़ी वाले हाथ को अधिक संभाल रखे तो क्या उसे [illegible] बुद्धिमान् कहेंगे ? [illegible] यदि वह [illegible] कि समकित के [illegible] है [illegible] इसका [illegible] बेकार है, तो [illegible] किसी एक के करने का [illegible] देना चाहिये । [illegible] बात का है कि [illegible]

चेलना के धर्म की परीक्षा करते करते एक बार श्रेणिक जिद पर चढ़ गया। एक महात्मा को देखकर चेलना से कहने लगा। देखो तुम्हारे गुरु कैसे हैं जो नीची नज़र रखकर चलते हैं। कोई मार पीट दे तो भी कुछ नहीं बोलते। मेरे राज्य में यह कानून है कि कोई किसी को मार पीट दे तो उसे सजा दी जाती है किन्तु ये तुम्हारे धर्म गुरु तो फरियाद ही नहीं करते। गुरु के कायर होने से उसके अनुयायी में भी कायरता आती है। हमारे गुरु तो वीर होने चाहिए। ढाल तलवार बांधकर घोड़े पर सवार होने वाले बहादुर व्यक्ति हमारे गुरु होने चाहिए।

चेलना ने उत्तर दिया कि मेरे गुरु कायर नहीं है किन्तु महान् वीर हैं। मैं कायर की चेली नहीं हूं। वीर की चेली हूं। मेरे गुरु की वीरता के सामने आप जैसे भी वीर भी नहीं टिक सकते। आपके बड़े २ सेनाधिपतियों को भी काम देव जीत लेता है किन्तु हमारे गुरु ने इस काम देव को भी अपने काबू में कर रखा है। जो लाखों को जीतने वाला है उसको जीतने में कितनी वीरता की आवश्यकता होती है, इसका आप विचार कीजिये। इनके सामने अप्सरा भी आजाय तो ये विचलित नहीं होते। यह बात तो एक बच्चा भी समझ सकता है कि जो लाखों को जीतने वाले को भी जीत लेता है वह कितना बहादुर होगा।

श्रेणिक राजा ने सोचा कि यह ऐसे मानने वाली नहीं है। इसके गुरु के पास एक वैश्या को भेजूं और वह उन्हें भ्रष्ट कर दे तब यह मानेगी। चेलना यह बात समझ गई कि इस वक्त धर्म की कठिन परीक्षा होने वाली है। वह परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो ! मेरी लाज तेरे हाथ में है। प्रार्थना कर के वह ध्यान में बैठ गई।

राजा ने वैश्या को बुलाकर हुक्म दिया कि उस साधु के स्थान पर जाकर उसे [illegible] भ्रष्ट कर [illegible] [illegible] उनके साथ में [illegible] के ध्यान [illegible] स्थान पर [illegible] नहीं आ सकता। इतना भी नहीं [illegible]

[illegible] है जो आपकी मन[illegible] [illegible] आनन्द देने आई है। यह

कर कर वेश्या साधु के स्थान में घुस गई । साधु समझ गये कि यह मुझे भ्रष्ट करने आई है। यद्यपि मैं अपने शील धर्म पर दृढ़ हूँ तथापि लोकोपवाद का खयाल रखना जरूरी है। बाहर जाकर कहीं यह यों न कह दे कि मैं साधु को भ्रष्ट कर आई हूँ । कथा में यह भी कहा है कि चेलना रानी ने इस बात की परीक्षा कर ली थी कि वह साधु लब्धिधारी हैं। उसने सब से कह रखा था कि कोई सच्चा साधु यहां न आवे। ये साधु यहां आये थे अतः उसे विश्वास था कि वह लब्धि धारी हैं।

महात्मा ने अपने प्रभाव से विकराल रूप धारण कर लिया । यह देख कर वेश्या घबड़ाई। कहने लगी, महाराज क्षमा करो। मैं अपनी इच्छा से नहीं आई हूँ। मुझे तो श्रेणिक राजा ने भेजा है । मैं अभी यहां से भग जाती मगर बाहर ताला लगा है अतः विवशता है आप तो चींटी पर भी दया करने वाले हो। मुझ पर दया करो।

उन महात्मा ने अपना वेष दूसरा ही बना लिया था। शास्त्र में कारण वश वेष बदलने का लिखा है। साधु लिंग को बदलना अपवाद मार्ग में है। चारित्र की रक्षा तो उस समय भी की जाती है।

इधर यह कांड हुआ, उधर श्रेणिक ने चेलना से कहा कि जिन गुरु की प्रशंसा में तुम फूल बरस रही थी जरा मेरे साथ चलकर उनके हाल तो देखो। वे एक वेश्या को लिये बैठे हैं। रानी ने कहा बिना आंखों से देखे मैं इस बात को नहीं मान सकती। अगर सचमुच मेरे गुरु वेश्या को लिये बैठे मिलेंगे तो मैं उन्हें गुरु नहीं मानूंगी। मैं सत्य की उपासिका हूं। राजा चेलना को लेकर साधु के स्थान पर आया और किवाड़ खोले। किवाड़ खुलते ही वह वेश्या इस प्रकार भगी जैसे पिंजड़े का द्वार खुलने पर पक्षी भगता है। भागते हुए वह वेश्या कह गई कि महाराज! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते हैं मगर ऐसे [illegible] भारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा। मैं इन [illegible] के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हूं।

रानी ने यह [illegible] की [illegible]
[illegible] नहीं
कर सकते। [illegible] दूसरा
वेष पहिने हुए [illegible]। रानी ने कहा [illegible] होता है उसे

जिनदास, सुभग के साथ इसी प्रकार का बर्ताव करता था। वह उसे पुत्र के समान प्यार करता था। सुभग भी उसे अपने पिता के समान मानता था और कभी कभी जिनदास को धर्म क्रियाएँ करते हुए देखा करता था। वह अभी धर्म के समीप नहीं आया है। एक दिन वह जंगल में गायें चरा रहा था कि वहाँ एक महात्मा को वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठे हुए देखा। महात्मा और सुभग का संगम किस प्रकार हुआ यह बात अवसर आने पर बताई जायगी। अभी तो यह ध्यान में रखा जाय कि महात्माओं के दर्शन से कैसा चमत्कारिक असर होता है। मनुष्य का कुछ का कुछ बन जाता है।

राजकोट
१४—७—३६ का
व्याख्यान

वृक्षों की उपयोगिता

"श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिरनामी तुम भणी.........."

यह प्रार्थना [illegible]

मिटाकर निरीह-इच्छा रहित शुद्ध इच्छा वाले बनने की कोशीश करना चाहिए । अशुभ से शुभ में और शुभ से शुद्ध में प्रवेश करना चाहिए । शुद्ध इच्छा से प्रार्थना करने वाला व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुँचता है ।

भगवान् आदिनाथ की प्रार्थना अनेक काल से की गई है । पानी का किसी भी प्रकार सुधार किया जाय । वह अनादि कालीन ही रहेगा । इसी प्रकार प्रार्थना, किसी भी काल से की जाय वह नई नहीं कही जा सकती । यह बात अलग है कि प्रार्थना करने वालों कि रुचि भिन्न हो और इससे प्रार्थना की भाषा में भी भिन्नता हो । पहले मागधी में प्रार्थना की जाती थी । मागधी से फिर संस्कृत में प्रार्थना होने लगी और अब हिन्दी भाषा में प्रार्थना हो रही है । रुचि के अनुसार भावों और भाषा में परिवर्तन अवश्य हुआ है मगर प्रार्थना पुरातन ही है प्रार्थना में कहा गया है ।

मो पर मेहर करिजे हो, मेटीजे चिन्ता मन तणी ।
मारा काटो पुराकृत पाप ।।

हे प्रभो ! मैं अनेक लोगों की शरण में गया मगर मेरे मन की चिन्ता नहीं मिटी । तथा मेरी आशा भी पूरी नहीं हुई । मेरे मन की चिन्ता कायम है अतः मैं तेरी शरण आया हूं । तू मेरी आशा पूर और चिन्ता चूर । भगवान् से आशा पूरी करने की प्रार्थना की जा रही है किन्तु क्या आशा पूरी कराना है यह भी समझलें । आप लोग साधुओं के पास जाते हैं । कौन-सी आशा पूरी कराने के लिए जाते हैं ? क्या धन दौलत, स्त्री, पुत्र कीर्ति आदि की आशा लेकर जाते हैं । ऐसी आशा तो साधुओं के यहां पूरी नहीं होती अतः ऐसी आशा से उनके पास जाना वृथा है ।

परमात्मा संसार के वातावरण से परे है अतः उससे सांसारिक कामना पूरी कराने की प्रार्थना करना व्यर्थ है । परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभो ! हमें आशा रहित बनादे । हमारी कामना मात्र खतम हो जाय । हमें संकल्प विकल्प करते अनन्त काल हो गया है अतः अब संकल्प विकल्प मिटादे । भगवन् ! तू मेरी यह आशा पूरी कर कि मुझ में आशा ही न रहे ।

कोई मनुष्य जब पानी में डूब रहा हो तब वह शरण लेना पसन्द करेगा अथवा नौका । जो संसार समुद्र को पार करना चाहेगा वह तो परमात्मा का चरण शरण रूप नौका

लेना ही पसंद करेगा। उसे राज्य से क्या मतलब। आप भी भगवतशरण शरण की प्रार्थना करिये।

मनुष्य सच्ची प्रार्थना कब कर सकता है यह बात शास्त्र द्वारा बताता हूँ। सिद्धान्त में कहा है कि किस तत्व को जान लेने के बाद सच्ची प्रार्थना होती है। अपवरत रूप तत्व का बोध होने पर सच्ची प्रार्थना होती है। श्रेणिक राजा को किसी बात की कमी न थी। वह जिसकी तरफ निगाह डाल लेता था सामने वाला अपने को धन्य मानता था। ऐसे श्रेणिक राजा से भी महामुनि अनाथी ने अनाथ होना स्वीकार करा लिया। आप नाथ होने का अभिमान मत करो।

राजा श्रेणिक विहार यात्रा के लिए नगर से बाहर निकला। प्रकृति के नियमों का पालन और रक्षण करना आवश्यक है। ऐसा करने से आगे उन्नति होती है। श्रेणिक ७२ कलाओं में निपुण था। तदुपरान्त शरीर शास्त्र, नीति शास्त्र, अर्थ शास्त्र और भौतिक शास्त्र विशारद अनेक लोग उसके दरबार में रहते थे। फिर भी वह विहार यात्रा के लिए मंडी कुक्ष बाग में गया। वह बाग अनेक वृक्षों से परिपूर्ण था। जिसमें अनेक वृक्ष हों, शास्त्रकार उसे बाग कहते हैं। वृक्ष और लता में यह अन्तर है कि वृक्ष अपने आधार पर खड़ा रहता है जब कि लता दूसरे के आधार से ऊपर की ओर फैलती है। दोनों फूल-फल देते हैं। वृक्ष और लता से जो युक्त हो वह बाग कहा जाता है। वृक्षों के साथ लता होना आवश्यक है।

कोई भाई यह प्रश्न कर सकता है कि मोक्ष मार्ग बताने वाले इस प्रकरण में शास्त्रकार ने बाग का क्यों वर्णन किया। शास्त्रकार जीवनोपयोगी वस्तुओं को नहीं भूले थे। हम कर्तव्य च्युत हो रहे हैं। बौद्ध साहित्य में यह बात पाई जाती है कि बुद्ध ने एक बार जब कि वे गया के जंगल में गये थे कहा था हम योगियों के भाग्य से ही जंगल हरा भरा खड़ा है। यदि जंगल न होता तो हम योगियों को आत्म साधना में बड़ी कठिनाई होती। योग लेने पर भी योगी जंगल का महत्त्व नहीं भूलते। बड़े २ जंगलों में ही बड़े २ सिंह पैदा होते हैं। वृक्षों से सिंह नहीं जन्मते मगर वृक्षों में उनका भरण पोषण होता है। रेत के पहाड़ों में सिंह नहीं उत्पन्न होते। मतलब यह है कि जीवन के लिए आवश्यक बातें न बताकर केवल मोक्ष की बातें ही बताना आकाश के फूल बताने के समान है। वृक्ष और लताएं हमारे जीवन के लिए भाई बन्धुओं के समान उपयोगी हैं। वैज्ञानिकों का तो यहां तक कहना है कि भाई बन्धु और मित्रों से भी वृक्षों की आवश्यकता अधिक है। वृक्षों की

सहायता से हमारा जीवन टिक रहा है। मनुष्य के शरीर में से कारबन हवा निकलती है जिस में बहुत जहर होता है। यदि यह जहरीली हवा बनी रहे, वृक्ष उसे न खींचें तो मनुष्य मर जायें। इस कारबन हवा को वृक्ष खींच लेते हैं। उनके लिए यह अनुकूल है। प्रकृति की कुछ विचित्र रचना है कि जो चीज मनुष्य के लिए जहर है वही चीज वृक्ष के लिए अमृत होती है। वृक्ष उस कारबन हवा को पचा कर आक्सीजन हवा छोड़ते हैं। मनुष्य जीवन आक्सीजन हवा के आधार पर टिका हुआ है।

वृक्ष की इतनी उपयोगिता होते हुए भी कुछ भाई कहते हैं कि वृक्षों की क्या जरूरत है, बेकार खर्च होता है। पहले के लोग वृक्ष की आत्मीयजन के समान रक्षा करते थे। किसी बड़े वृक्ष को काटना महान् पाप समझा जाता था। यदि वृक्ष कट जाता तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। जो जहर लेकर बदले में अमृत प्रदान करता हो उसकी दया न करना महान् कृतघ्नता है।

महाभारत में वृक्ष को अजात शत्रु कहा है। यानी वृक्ष का कोई शत्रु नहीं है। वृक्ष किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। जो उसे पत्थर मारता है उसे भी वह फल देता है और जो कुल्हाड़ा मारता है उसे भी अपना सर्वस्व तक दे देता है। बदले में कोई वस्तु नहीं मांगता। अहा! वृक्ष के समान उपकारी कौन होगा, फिर भी उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता।

दिल्ली के लोग कहते थे कि पहले पुरानी दिल्ली में बहुत वृक्ष थे, किन्तु जब से हार्डिंग पर बम फेंका गया तब से सब वृक्ष काट डाले गये हैं। यह विचारणीय बात है कि बम किसने फेंका और दण्ड किसको मिला। वृक्षों ने क्या अपराध किया था! निरपराध हजारों वृक्षों को काटकर भी लोग अपने को सुखी हुए समझते हैं। अब मकान बहुत ऊंचे बना दिए गये हैं जिनमें गर्मी में भी सर्दी हो रही है। अब बड़े बड़े बाग और [illegible] होने से सब वेस्टिंग्हेड के समान वायु [illegible] नहीं [illegible] करते हैं। किन्तु [illegible] है कि [illegible] है। यदि [illegible]
[illegible]

वृक्षों के वर्णन के बाद शास्त्र में कहा है कि उस बाग में अनेक पक्षी रहते थे। इस कथन से जाहिर है कि उस समय आज के समान पक्षियों की हत्या नहीं हुआ करती थी। आज पंखों के लिए पक्षियों की हत्या की जाती है। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है कि यूरप और अमेरिका के लोगों की शिकार प्रियता के कारण अनेक पक्षी-कुल-नष्ट कर दिए गये हैं। आधुनिक सुधार और फैशन ने क्या २ नहीं किया। क्या आप यह प्रतिज्ञा कर सकते हैं कि जिन चीजों में पक्षियों के पंखों का उपयोग हो वे काम में न लायेंगे। अनेक बुद्धिमान लोगों ने उन वस्त्रों को त्याग दिया है जिनकी बनावट में हिंसा होती है। जैसे रेशमी और चर्बी लगे वस्त्र। क्या आप इतना भी न कर सकेंगे।

उस बाग में नाना प्रकार के पक्षी स्वतंत्रता और आनन्द पूर्वक निर्भय हो कर बैठते, खेलते, कूदते और नाचते थे। जहां पक्षी भी निर्भय होकर बैठ सकते हैं वहां समझना चाहिये कि दया है। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि जब मैं टोंक राज्य छोड़ कर जयपुर राज्य में आया तब मेरा मन प्रसन्न हुआ। वहां मुझे पक्षियों की चीं-चूं सुनाई दी। टोंक राज्य में शिकार करने का प्रचार अधिक होने से पक्षियों का दर्शन दुर्लभ था। पक्षियों से भी मानव जीवन को लाभ पहुँचता है यह बात आप क्या जानो। आप को क्या मालूम कि हीरा कैसे पैदा होता है। यह कहावत है कि जिस देश में बड़े रत्न पैदा होते हैं उसी देश में महापुरुष भी पैदा होते हैं। गंगा नदी और हिमालय जैसे पर्वत भारत देश में ही हैं। यही कारण है कि यह देश महा पुरुषों की खान है। प्रकृति की जैसी रक्षा की जाती है वैसा ही वह फल भी देती है।

यह मंडीकुक्ष बाग फूलों से छाया हुआ था। अनेक प्रकार के सुगन्धित फूलों की महक चारों ओर उड़ रही थी। आजकल लोग महक के लिए सेंट लगाते हैं। उन्हें भारतीय इत्र भी पसन्द नहीं है। उनको यह पता नहीं है कि सेंट में मिली हुई चर्बी दिमाग में जाकर कितना नुकसान करती है। भारतीय होकर भारत की वस्तुओं पसन्द न करना और विदेशी वस्तुओं के पीछे पड़े रहना कितना घातक है। आप लोग अनेक प्रकार के तेलों का इस्तेमाल करते हो किन्तु कभी यह नहीं [illegible]। जिन चीजों से तेल बना है वे हमारी प्रकृति के अनुकूल हैं [illegible]। फूल का पोशाक ही ऐसा है कि जिसके [illegible] करना पड़ता है। फूलों की गरदन मरोड़ कर उनमें से इत्र निकलना प्रकृति से द्रोह करना है। प्रकृति के साथ ऐसा बर्ताव करने के कारण ही आजकल नये नये रोग पैदा हुए हैं। और डाक्टर [illegible]

बढ़े हैं। डाक्टरों की वृद्धि होना अच्छा चिह्न नहीं है। वास्तविक चीजें नष्ट की जा रही हैं और भ्रष्ट वस्तुएं उन का स्थान ले रही है।

इत्र और सेंट के लिए बड़े २ पाप होते हैं। उनके उपयोग से मन और बुद्धि में विकृतियाँ पैदा होती हैं। किन्तु जंगल या बगीचे की प्राकृतिक खुशबू में दोष नहीं है। यदि मैं अपने कान में इत्र का फुम्बा (रुई में लगा द्रव) रखलूं तो आप लोग क्या कहेंगे। साधु मानने से भी इन्कार कर देंगे। किन्तु प्राकृतिक सुगन्ध हवा के द्वारा हमारे नाक में प्रवेश करे उसमें किसे क्या एतराज हो सकता है ? इत्र लगाना यानी कुदरत से लड़ाई करना है। फूलों से अपने आप जो सुगन्ध निकलती है वह प्राकृतिक है। अनाथी मुनि बाग में बैठे हैं। उनके लिए कोई यह नहीं कह सकता कि वे मौजमजा लेने के लिए बैठे हैं। वह बाग इतना सुन्दर था कि नन्दन बन के लिए भी उस की उपमा दी जाती थी। आध्यात्मिक साधना में प्रकृति बड़ी साधक है।

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी कहा करते थे कि बुद्धि का घर आराम है। जब आराम हो तभी बुद्धि पैदा होती है। आराम का स्थान शहर ही नहीं है। शहर के बाहर एकान्त स्थान में जाकर देखने से पता लगेगा कि वहां कितना आराम और कैसी बुद्धि खिलती है। आप लोग केवल नगरवासी मत बन जाओ। आप लोग केवल नगर में रहते हो अतः हम साधुओं को भी नगर में आना पड़ता है। ग्रामों की अपेक्षा नगर में विकार ज्यादा पैदा हो गये हैं। उनके सुधार के लिये हमें भी शहरों की खाक छाननी पड़ती है। मेरा मतलब यह नहीं है कि आज ही आप लोग शहर छोड़दें। किन्तु वास्तविक जीवन स्रोत कहां है यह बात ध्यान में रखिये। मुझे दया, पौषध और सामायिक आदि धर्म कार्य बहुत प्रिय हैं फिर भी मैं उनके विषय में अधिक भार न देकर शरीर और आत्मा के कल्याण के लिये भार इसलिये देता हूं कि बिना शरीर स्वस्थता के धर्म कार्य ठीक तरह से नहीं हो सकते। धर्म को पवित्र रखने के लिये ही मैं शरीर धर्म पर भार देता हूं।

सुदर्शन चरित्र।

जीवन का सुधार कैसे होता है यह बात सुदर्शन के चरित्र से बताता हूं।—

एक दिन जंगल में मुनि देखी तन मन उपज्यो प्यार।
खड़ा सामने ध्यान मुनि में निमर गया संसार रे। धन० ॥ ७ ॥

प्राकृतिक दृश्य देख कर आनन्द मानता था। बादलों के उतार चढ़ाव से जीवन के उतार चढ़ाव की कल्पना करता था। वह प्रकृति से प्यार करता था अतः प्रकृति भी उसकी सहायता करती थी। प्रकृति मनुष्य की क्या सहायता करती है यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। मनुष्य को अच्छी समझदार स्त्री अथवा पुत्रादि मिलते हैं यह प्रकृति की ही कृपा है। पूर्व पुण्य के प्रभाव से ही ऐसा होता है।

प्रकृति सुभग के लिए क्या करती थी यह नहीं कहा जा सकता मगर जो कुछ आगे हुआ है उसे देख कर यह कहा जा सकता है कि उसने पुण्यानुबन्धी पुन्य बांधा था जिससे जंगल में एक महात्मा से उसकी भेंट हो गई। आप लोग वेश्या को पैसों के बल पर घर बुला सकते हो मगर कोयल को नहीं बुला सकते। उसकी मधुर तान सुनने के लिए वन में ही जाना पड़ेगा। अन्य लोगों को कहीं भी बुलाया जा सकता है मगर महात्माओं को हर कहीं नहीं बुला सकते। वे स्वेच्छा से ही जहाँ चाहें जाते हैं।

एक तपोधनी महात्मा उस वन में वृक्ष के नीचे आगये और ईश्वर ध्यान में लीन हो गये। वे महात्मा कैसे थे। कहा है—

ज्ञान के उजागर सहज सुख सागर सुगुन रतनागर विराग रस भर्यो है।
शरण की रीति हरे मरण को न भय करे करन सों पीठि दे चरन अनुसर्यो है॥
धर्म को मंडन मर्म को विहंडन है परम नरम हो के कर्म से लर्यो है।
ऐसे मुनिराज भुवलोक में विराजमान निरखी बनारसी नमस्कार कर्यो है॥

महात्माओं को ज्ञान उजागर नहीं करता मगर वे ज्ञान को उजागर करते हैं। वे शास्त्र को सुशास्त्र बनाते हैं, जगत् को तीर्थ बनाते हैं। वे सहज सुखी हैं। किसी का सुख हरण करके वे सुखी नहीं होते। न कोई उनका सुख हरण ही कर सकता है। इन्द्र में भी यह ताकत नहीं है कि वह महात्माओं का सुख छीन सके। आप पूछेंगे कि सहज सुख कैसा है। आप सहज सुख को जानते हो मगर अभी उसे भूले हुए हो। मान लो एक आदमी के पास खाने पीने और ऐश आराम की सब सामग्री मौजूद है किन्तु किसी ने कह दिया कि एक सप्ताह बाद तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। खान पान और भोग विलास है मिलने वाला उसका सुख उसी क्षण काफूर हो जायगा। यदि इन वस्तुओं में सुख होता तो इनके होते हुए भी सुख कैसे हवा हो गया। अतः मानना पड़ेगा कि सहज

जन्य सुख वास्तविक सुख नहीं है। वास्तविक सुख सदा एक समान रहता है। महात्माओं को यदि कोई कह दे कि आपका मृत्यु संनिकट है तो उन्हें बड़ा आनन्द होता है।

> मरने से जग डरत है मो मन बड़ो अनन्द।
>
> कब मरिहौं कब भेटिहौं पूरण परमानन्द ॥

महात्मा सहज सुखी है। उन का आनन्द उनके भीतर होता है। बाह्य वस्तु पर उनका आनन्द अवलम्बित नहीं होता। इन्द्रिय-विषय विकास में सुख नहीं है, सुखाभास है, भ्रम है।

महात्मा लोग गुण के भंडार और वैराग्य के सागर होते है। जो वैरागी है, वह न किसी की शरण में जाता है और न किसी से भय खाता है इन्द्रियों के व्यवहार को जीत कर चारित्र का पालन करता है। महात्मा जहां जाते है वहां धर्म का मंडन ही होता है भले वे मौन ही क्यों न रहते हो। उनका जीता जागता चेहरा ही धर्म का मण्डन करता है। वे मिथ्यातम का नाश करते है। चुप नहीं बैठे रहते किन्तु सदा दुष्कर्मों से लड़ाई करते रहते है जिस प्रकार कुत्ता घर से परिचित होजाने के कारण बार बार घर आया करता है उसी प्रकार काम क्रोध लोभ-आदि विकार परिचित होने के कारण बारम्बार मन में आया करते है मगर महात्मा सदा जागरूक रहते है उनको मन में स्थान ग्रहण नहीं करने देते। उनके मन में सद् भाव जागृत हो गया है अतः आनवत् विकारी [illegible] का अब गुजारा वहां नहीं हो सकता। साथ ही वह उन का कर्मनाश करते है। कर्म नाश [illegible] हुए बिना नहीं होता।

ऐसे आध्यात्मिक गुरु के एक सुभग श्रावक रहा है। उसका [illegible] और अर्हन्नी जिनकी कि पुत्र कामना भी अपने धर्म पर अवलंबित थी। पुत्र प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का धर्म विरुद्ध काम नहीं किया 'धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है धर्म भी उसकी रक्षा करता है। [illegible] पूर्ण करने के लिए ही आते हैं। [illegible] हुए। [illegible] विचार किया कि ये कैसे गुरु हैं। [illegible] कहते हैं कि ऐसे गुरु हैं [illegible] नहीं [illegible] हुए। [illegible] गुरु हैं। उनके [illegible]।

आजकल लोग मुनियों को नमस्कार करते हुए ऐसे खड़े रहते हैं मानो उनकी कमर ही अकड़ गई हो। यह भी कहते हैं कि नमन करने में क्या रखा है। उन अकड़बाज भाइयों से मैं पूछना चाहता हूँ कि किसी साहबबहादुर के द्वार पर जाकर उन्हें नमन न करो तो वे नाराज हो जायेंगे। उनकी नाराजी आप सहन नहीं कर सकते। दूसरी बात उनको नमन करने में सभ्यता मानते हो। पैसे की गुलामी के लिए नमन करने में शर्म नहीं करो और गुणवान् महात्माओं को नमन करने में शरम लगे यह कितनी आश्चर्य की बात है।

मुनि को वन्दन करके सुभग सामने खड़ा है। मुनि की दृष्टि में अपनी दृष्टि मिला रहा है। मुनि की तरह वह भी ध्यान में डूब गया। वह इस बात को भूल गया कि मैं कहाँ हूँ और मेरी गायें कहाँ हैं। ध्यान के प्रताप से क्या होता है यह बात यथावसर बताई जायगी।

राजकोट
१८—७—३६ का
व्याख्यान
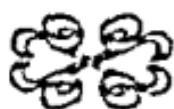
जन्म भूमि की महत्ता
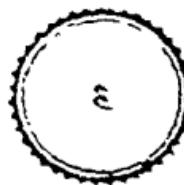
"श्रीजिन अजित नमो जयकारी, तू देवन को देवजी········।"

भक्त परमात्मा को किस रूप में देखता है ? वह परमात्मा की अनन्य भाव से भक्ति करता है। जिसकी प्रार्थना की जाय उसे सर्वोत्कृष्ट मानना, उसके गुणों पर मुग्ध हो जाना जो उसकी निन्दा करे उसके प्रति उदासीनता रखना अनन्य भक्ति का लक्षण है। जो आराध्य की निन्दा करता है उसके साथ किसी प्रकार का द्वेष भाव न रखे न उस पर क्रोध करे। इस प्रार्थना में अनन्य भक्ति बताने के लिए ही कहा गया है—

दूजा देव अनेरा जग में, ते मुज दाय न आवे जी।
तहमने तहवचने हमने तू ही अधिक सुहावेजी ॥ श्री० ॥

इस कथन पर पूरी तरह विचार करने से आपको अनन्य भक्ति की बात समझ में आ जायगी और प्रार्थना का मर्म भी ज्ञात हो जायगा। यह सब विस्तार पूर्वक समझाने

जितना समय नहीं है। थोड़ा कहता हूँ—

प्रार्थना करने वाला भक्त कहता है कि मुझे तू (अजितनाथ) ही पसन्द है। दूसरा कोई देव मुझे पसन्द नहीं है। इस पर से यह प्रश्न उठता है कि क्या अन्य देवों में शक्ति या सामर्थ्य नहीं है जिससे वे पसन्द नहीं पड़ते। अन्य देवों से सांसारिक कार्यों में जैसी सहायता मिलती है वैसी श्रीअजितनाथ तीर्थङ्कर से नहीं मिलती। वे वीतराग हैं अतः संसार व्यवहार की बातों में हमारे मददगार नहीं हो सकते। इस प्रश्न का विशेष विवरण एक प्रकार का चमत्कार मालूम होगा किन्तु अभी समय नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर किसी पतिव्रता स्त्री से पूछा जाय। उसे अपना पति ही क्यों पसन्द है।

रावण के यहां किसी सांसारिक सुख की कमी न थी। उसकी लंका सोने की थी। दूसरी ओर राम वन में रहते थे। वल्कल वस्त्र धारण करते थे, वन्य फल फूल पर अपना गुजारा चलाते थे और जमीन पर सोते थे। सीता ने राम को क्यों पसन्द किया? रावण को पसन्द क्यों नहीं किया? आधुनिकलोगोंका साजोसामान की वस्तुओंके प्रति आकर्षण अधिक है अतः ऐसा प्रश्न उठता है कि ऐश्वर्य को छोड़कर सादगी को क्यों पसंद किया गया था। सांसारिक पदार्थों के प्रति राग भाव न हो तो ऐसा प्रश्न ही खड़ा न हो। सीता का रावण के साथ कोई द्वेष भाव न था। रावण, राम से स्नेह तुड़वाकर अपने प्रति जुड़वाना चाहता था। इसी कारण वह उससे नाराज थी।

भक्त कहते हैं, जो दूसरे देव परमात्मा से हमारा नेह तुड़वाते हैं वे हमें पसन्द नहीं हैं। सीता भी यही कहती थी कि जो राम से मेरा नाता तुड़ाना चाहता है वह मुझे प्रिय नहीं है। जो राम के साथ स्नेह जुड़ाता है वह मुझे अति प्रिय है जैसे जटायु पक्षी और त्रिजटा राक्षसी।

भक्त लोग माया के ठाट बाट की तरफ नहीं देखते अत: सांसारिक पदार्थों का आकर्षण होते हुए भी अन्य देवों से प्रेम नहीं करते। शंका कांक्षा आदि पांच दोष इसी लिए बताये गये हैं कि कहीं भक्त संसार की माया में फसकर दूसरे देवों को न मानने लग जाय। पहले के श्रावकों के जीवन चारित्र की तरफ ध्यान देंगे तो आप अनन्य भक्ति का

एक राजमहल है जिसमें संगमरमर की फरसी लगी हुई है। दीवालों पर चित्र चित्रित हैं। सब सजावट से सुसज्जित है। दूसरी ओर एक खेत है जिसमें काली मिट्टी है। राजमहल और खेत दोनों में से आप किसे पसन्द करेंगे। दोनों में से कौनसी वस्तु आपके लिए अधिक उपयोगी है। यदि आपको कुछ दिन के लिए राजमहल में रख दिया जाय तो अच्छा लगेगा किन्तु साथ में यह शर्त लगादी जाय कि जब तक राजमहल में रहोगे खेत से निपजने वाली कोई वस्तु वहां न दी जायगी। शायद आप ऐसी अवस्था में एक दिन भी रहना पसन्द न करोगे। इसके विपरीत यदि आपसे कहा जाय कि आपको खेत से उत्पन्न सब वस्तुएं दी जायंगी मगर रहना झोंपड़े में पड़ेगा। आप झोंपड़े में रहना पसन्द कर लेंगे क्योंकि खेत के बिना निर्वाह नहीं हो सकता है। राजमहल का त्याग दुःख देने वाला है।

नंदन वन और मन्डीकुक्ष के विषय में यही बात लागू है। नंदन वन देवों के मन बहलाव के लिए है। वहां मनुष्यों के जीवन के लिए उपयोगी सामग्री नहीं है। मंडीकुक्ष बाग में फलफूल आदि हैं जिनसे हमारे शरीर को पुष्टि मिल सकती है। पशु भी फलादि खाकर आनन्दित होते थे तो मनुष्य अवश्य उससे लाभ प्राप्त करते थे। पशु पक्षी के पहले परीक्षक हैं। आक का फल बंदर और पक्षी नहीं खाते। अतः मनुष्य भी उसे नहीं खाते। एक बात और है। जो पशु पक्षी फल खाते हैं अर्थात् फलाहारी हैं वे मांस नहीं खाते। मनुष्य कैसा प्राणी है जो फल भी खाता है और मांस भी खा जाता है। बंदर फलाहारी है अतः मांस नहीं खाता। पर मनुष्य ने फलाहार की मर्यादा का उल्लंघन कर दिया है। क्या अधिक बुद्धि मिलने का यह दुरुपयोग नहीं है?

मंडीकुक्ष बाग में सब को पोषण मिलता था लेकिन नंदन वन के लिए यह बात नहीं है। यही कारण है कि मंडीकुक्ष बाग में तपोधनी मुनि बैठे हैं और भगवान् भी पधारे तो दूर हैं मगर नंदन वन में क्या कोई साधु मिल सकता है। अतः नंदन वन की अपेक्षा मन्डीकुक्ष बड़ा उत्तम है। आप लोग स्वर्ग का सुन्दर वर्णन सुन पढ़ कर ललचा जाइये। आपका राजकोट बड़ा है या स्वर्ग? राजकोट में धर्म की जो प्रवृत्ति चलती है वह स्वर्ग में नहीं हो सकती। स्वर्ग में मुनि नहीं मिल सकते मगर यहां मुनियों का ठाट लग रहा है।

कहा जाता है कि [illegible] की भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग [illegible] के लिए विमान भेजा। [illegible] ने यह [illegible] दिया कि मुनियों—

व्रजवालो म्हारे वैकुण्ठ नथी आवो।
त्यां नन्द नो लाल क्यां थी लावो ॥ व्रज ॥

गोपियों ने कहा स्वर्ग में नन्दलाल श्री कृष्ण नहीं हैं अतः हमें वहां आना पसंद नहीं है। विमान लाने वालों ने कहा कि अरी तुम क्या पागल हो गई हो जो स्वर्ग में आने से मना कर रही हो। वहां रत्नों के महल हैं और इच्छा करने मात्र से ही पेट भर जाता है। तुम्हारे व्रज में दुष्काल का भय रहता है और अनेक प्रकार के दुःख भी मौजूद हैं। गोपियों ने कहा कि पहले यह बताओ कि तुम विमान लेकर हमें लेने के लिए किस कारण से आये हो। हमारे किस शुभ कार्य से प्रेरित होकर यहां आये हो। नन्दलाल की भक्ति से प्रेरित होकर ही यहां आये हो। तुम्हीं बताओ कि नन्दलाल की भक्ति बड़ी चीज़ है या स्वर्ग। स्वर्ग में नन्दलाल की भक्ति नहीं हो सकती अतः हम वहां आना नहीं चाहतीं। हम भक्ति का विक्रय करना नहीं चाहतीं। तुम्हारा स्वर्ग हमारे व्रज से बड़ा होता तो वहां नन्दलाल ने जन्म क्यों नहीं लिया। गोपियों के उत्तर से देव चुप हो गये और उनकी भक्ति और श्रद्धा की प्रशंसा करते हुए आकाश में चले गये।

आप लोग भी यदि स्वर्ग को बड़ा मानों तो क्या वहां साधु श्रावक मिल सकते हैं। क्या वहां तीर्थंकर जन्म धारण कर सकते हैं। यहां रहकर धर्म की जैसी साधना की जा सकती है वैसी वहां नहीं हो सकती।

मुसल्मानों की हदीसों में कहा है कि अल्लाने दुनिया बनाकर फरिश्तों से कहा कि तुम लोग इन्सानों की इनायत करो। उनकी बन्दगी करो। इस हुक्म के अनुसार सब फरिश्ते इन्सानों की बन्दगी करने लग गये मगर एक फरिश्ते ने इस हुक्म का पालन नहीं किया। उसने अल्ला से कहा कि आप ऐसी क्या आज्ञा देते हैं। कहां हम फरिश्ते और कहाँ इन्सान। इन्सान खाक का बना है अतः नापाक है हम पाक हैं। अल्लामियां ने उसको फटकार दी और बन्दगी के लिए हुक्म दिया। इन्सान की बन्दगी फरिश्ते भी करते हैं अतः इन्सान बड़ा है।

आप लोगों के लिए रामकोट बड़ा है। राजगृही नगरी भी नहीं है राशि की दृष्टि से दोनों एक है। कमी इस बात की है कि यहां अनाथी मुनि जैसे मुनि नहीं हैं। मगर श्रेणिक जैसे श्रोता भी तो नहीं हैं। साधु और श्रावक दोनों साधारण कोटि के हैं फिर भी स्वर्ग से आपका रामकोट बढ़कर के है क्योंकि स्वर्ग में साधारण कोटि के साधु

श्रावक भी नहीं होते। आप लोग इस सुअवसर से लाभ उठाइये। स्वर्ग के लिए अपनी धर्म करणी को बेच मत डालिये। निष्काम होकर धर्म कर्म करिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि निष्काम कर्म हजार गुना फल देता है।

आपका विवाह हो चुका है। आपकी श्रीमती यदि कहे कि मैं रोटी बनाती हूं अतः बदले में कुछ दीजिये तो आप अपनी स्त्री से क्या कहेंगे। आप यही कहेंगे कि क्या तुम मेरे यहां किराये पर आई हो। जब स्त्री को आप यह उत्तर देते हैं तब भगवान् से किसी प्रकार की मांग करना कितना बेहूदापन है।

मीराबाई से किसी ने पूछा कि तुम्हें राणा प्रिय क्यों नहीं लगते उसने उत्तर दिया कि—

> संसारी नो सुख एवो, झांझवानो नीर जेवो।
> तेने तुच्छ करी फरीये रे मोहन प्यारा॥

संसार का सुख तुच्छ है। मुझे भगवान् अति प्रिय हैं। राणा एक बार [illegible] सकते हैं। मैं ऐसे साथी की खोज में हूं जो कभी साथ न छोड़े।

मैंने [illegible] शास्त्र देखा तो उसमें भी यही बात देखने को मिली। संसार के [illegible] मृगजल के समान भुलावे में पड़े हुए हैं। सूर्य की किरणें रेत पर गिर कर ऐसा भ्रम पैदा करती हैं मानो पानी भरा पड़ा हो। बेचारा मृग पानी की कल्पना से दौड़ता जाता है [illegible] वहाँ पानी नहीं मिलता। और आगे दौड़ जाता है मगर उसकी इच्छा पूरी नहीं होती। यही हाल संसार के लोगों का है। उनकी इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। मीराबाई इस [illegible] को समझ गई थी अतः सांसारिक सुखों के भ्रम जाल में न फंसी। एक म्यान में दो तलवारें [illegible] नहीं हुआ करतीं [illegible] परमात्मा की भक्ति और विषयवासना दोनों साथ नहीं चल सकते। विषय वासनाओं का त्याग किये बिना ईश्वर भक्ति असम्भव है।

कहने का आशय यह है कि न तो [illegible] से यह भूमि बनी है और न [illegible] बना है। फिर आप [illegible] की [illegible] और इच्छा क्यों कर रहे हैं।

[illegible] थे [illegible] एक दिन [illegible]
[illegible]

किया है। उसके प्रभाव से भी आदमी इतना कठोर बना दिया जा सकता है कि कोई के घन की मार भी वह सह सकता है। मेस्मेरेजम का प्रभाव स्त्री और बालक पर अधिक पड़ता है। भोले सुभग पर भी मुनि के योग का प्रभाव पड़ा और वह सब कुछ भूल गया वह समाधि में लीन हो गया। शाम होने का भी उसे खयाल न रहा।

गगन गये मुनिराज मंत्र पढ़, बालक घर को आया।
सेठ पूछते मुनि दर्शन का, सभी हाल सुनाया रे धन ॥ ८ ॥

ध्यान पूरा होते ही वह महात्मा नवकार मंत्र पढ़कर आकाश में उड़ गये। भगवती सूत्र में जंगाचारण विद्याचारण मुनियों का जिक्र है। मुनि को आकाश में उड़ते हुए देखकर सुभग चिल्लाने लगा ओ महात्मा ओ महात्मा। मगर वे निस्पृह महात्मा कब रुकने वाले थे। जिस प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल बन्द हुए बिना नहीं रहता उसी प्रकार समय हो जाने से वे महात्मा उड़कर चले गये। महात्मा चले गये मगर उनका उच्चारण किया हुआ नमो अरिहन्ताणं मंत्र उसे याद रह गया। वह सोचने लगा कि इस अरिहन्ताणं मंत्र के प्रभाव से ही वे आकाश में उड़ सके हैं जिनके प्रभाव से आकाश में उड़ा जा सकता है वह मंत्र कैसा होगा। अवश्य बहुत शक्ति शाली होगा।

इस प्रकार विचार करते हुए संध्या होजाने का उसे भान आया। वह गायों को खोजने लगा। संध्या समय घर जाने का रोजमर्रा का अभ्यास था अतः गायें घर पहुंच गईं। किन्तु सुभग को आया हुआ न देख कर सेठ जिनदास को चिन्ता हुई। आज क्या बात हुई जो जिनदास नहीं आया है। उस पर कोई विपत्ति तो नहीं गुजरी अथवा कोई ठग उसे लकचा कर कहीं ले तो नहीं गया है। सेठ बड़ा व्याकुल हुआ और इधर उधर घूमता हुआ उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

जो आदमी केवल अपने स्वार्थ का ही खयाल करता है वह अपने स्वार्थ का भी नाश करता है और जो दूसरों पर उपकार करता है वह अपना भी भला करता है। सेठ सुभग के लिए चिन्ता क्या कर रहा था, अपने यहां पुत्र का आह्वान कर रहा था।

इतने में सुभग घर पर आया। सेठ ने उसे गले लगा लिया और पूछने लगा कि आज इतनी देरी से कैसे आये। सुभग भी दौड़ता और घबड़ाया हुआ आया था कि पिताजी मेरी चिन्ता करते होंगे। सेठ को देखकर वह भी बहुत प्रसन्न हुआ। कहने लगा पिताजी

आज जंगल में बड़ा आनन्द आया। आज मैंने जंगल में एक महात्मा को देखा। उनका मैं क्या वर्णन करूं। मेरे में इतनी शक्ति नहीं है। वे मुझे इतने प्यारे लगे जितना बछड़े को गाय लगती है। मैं उन्हें देखकर अपने आप को भूल गया। उनके चेहरे से अनन्त शान्ति झलकती थी। मैं उनपर मुग्ध बन गया। सेठ कहने लगा तुझे धन्य है जो ऐसे महात्मा के दर्शन हुए। यदि अभी वहीं पर हों तो मैं भी चलूं और दर्शन करूं। लड़के ने कहा अब वे यहां कहां हैं वे तो अरिहन्ताणं कह कर आकाश में उड़ गये।

लड़के की बातें सुनकर सेठ उसकी सराहना करने लगे और धन्यवाद देने लगे। कोई काम खुद से न बन सके तो कम से कम उसके करने वाले की प्रशंसा तो करनी ही चाहिए। पौषध में बैठे हुए सुबाहु कुमार ने कहा था 'वे लोग धन्य हैं जो भगवान् की वाणी सुनते हैं'। वे धन्य हैं जो संयम लेते हैं। आप से यदि अच्छा काम न बन पड़े तो उसके करने वाले की प्रशंसा तो जरूर कीजिये। इससे लाभ है।

सुभग सुदर्शन का ही बीज है। उसको धन्य कहना सुदर्शन के शील को धन्य कहना है। अथवा यों कहिये कि आत्मा को ही धन्य बनाना है। दूसरों के गुणों को देख कर प्रसन्न होना यह हृदय की विशालता प्रकट करता है। बहुत से लोग इतने ईर्षालु प्रकृति के होते हैं कि वे दूसरों के द्वारा किए हुए अच्छे कामोंको सहन नहीं कर सकते और भीतर ही भीतर जलते रहते हैं। इससे उनको खुद को ही नुकसान है।

सुभग और जिनदास की बातें आगे यथावसर बताई जायंगी। आज इतना ही बस कहा। जो भलाई को ग्रहण करेगा उसका भला है।

राजकोट
१६—७—३६ का
व्याख्यान

पर प्रश्न होता है कि सूर्य किरणें सब फूलों पर समान रूप से पड़ती हैं फिर विभिन्नता का क्या कारण है। वैज्ञानिक उत्तर देते हैं कि किरणों को ग्रहण करने में विभिन्नता है अतः रंगों में भी विभिन्नता है। जो फूल सूर्य किरणें ग्रहण कर के स्वयं में से अधिक से अधिक त्याग करता है वह सफेद बनता है जो कुछ कम त्याग करता है वह गुलाबी होता है। जो उससे भी कम त्याग करता है वह पीला होता है। इसके बाद लाल रंग होता है। जो केवल लेता है और त्यागता कम है वह हरा होता है। जो फूल सूर्य की किरणों को खा जाता है त्यागता कुछ भी नहीं वह काला होता है। जो अधिक से अधिक त्याग करता है वह सफेद और जो कुछ भी त्याग नहीं करता वह काला होता है। काला रंग किरणों को खा जाता है, यह बात फोटो के कैमरे पर काला कपड़ा डाला जाता है, इससे भी सिद्ध होती है। काला कपड़ा किरणों को भीतर नहीं पहुंचने देता जिससे फोटो अच्छा आता है।

यह पुष्प वाग में फूलों का वर्णन करके शास्त्रकार ने यह बतलाया है कि किसे का ग्रहण करना और त्याग ने का लक्षण क्या है। जैन शास्त्रों को किसी अनुभवी गुरु से समझा जाय तो मालूम होगा कि इनमें क्या क्या सामग्री भरी पड़ी है। आज के कई पंडित बन जाते हैं और कहने लगते हैं कि जैन शास्त्रों में कुछ नहीं है। वास्तव में ऐसे लोगों ने शास्त्र समझने का प्रयत्न ही कब किया है। केवल पोथियां पढ़ने से ही ज्ञान नहीं होता। ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी योग्य गुरु की शरण लेना चाहिए। एक कवि कहता है —

पढ़े के न बैठे पास अक्षर बांच सके,
बिना ही पढ़े कहां कैसे आवे फारसी।
जौहरी के मिले बिन हाथ नग लिए,
फिरे, बिना जौहरी वाको संशय न टारसी।
वैद हू के मिले बिन बूटी को बतावे कौन,
मद बिन पावे नाहीं चीन्ह है पारसी।
सुन्दर कहत मुख रूप हू न देख्यो जाय,
गुरु बिन ज्ञान जैसे अन्धेरे में आरसी॥

पुस्तक में अक्षर लिखे हैं मगर गुरु के बताये बिना फारसी भाषा कैसे आ सकती है। हाथ में नग है मगर बिना जौहरी की सहायता के उस की कीमत कैसे आंकी जा सकती है। बूंटियां तो अनेक हैं मगर किसी अनुभवी वैद्य की सहायता के बिना उनका तत्त्व कैसे समझा जा सकता है। बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करना वैसा ही है जैसा अंधेरे में कांच लेकर मुँह देखना। आज कल लोग पुस्तकों से ही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। पुस्तकों के नाम से बहुत सारा गंदा और घासलेटी साहित्य भी प्रचलित हो गया है। प्रत्येक बात गुरु मुख से समझी जाय तो भ्रम में पड़ने का कोई कारण नहीं है।

जैन शास्त्रों में अनेक स्थान पर लेश्याओं का जिक्र है। लेश्या दो प्रकार की है —१ द्रव्य लेश्या २ भावलेश्या। लेश्यताति लेश्या। जैसे गोंद दो कागजों को चिपकाता है वैसे आत्मा और कर्मों को जो चिपकाती है वह लेश्या है किसी आचार्य के मत से योग प्रवृत्ति भी लेश्या है। अर्थात् मन वचन और काया की प्रवृत्ति लेश्या है। किसी के मत से "कृष्णादि द्रव्य साचिव्यादात्मनः परिणाम विशेषः लेश्या" कृष्णादि द्रव्यों के संयोग से आत्मा में जो परिणाम विशेष होताहै वह लेश्या है। द्रव्य भाव दोनों लेश्याएं छः२ प्रकार की हैं।

१ शुक्ल लेश्या २ पीत लेश्या ३ तेजो लेश्या ४ कापोत लेश्या ५ नील लेश्या ६ कृष्ण लेश्या। शुक्ल का रंग सफेद होता है। पीत का पीला, तेजो का लाल, कापोत का बैंगनी, नील का नीला और कृष्ण का काला होता है।

अब हमें फूल और लेश्या का तात्पर्य समझना है। यह आत्मा प्रकृति से कुछ न कुछ ग्रहण करता ही है। हवा, पानी, गरमी आदि प्राकृतिक पदार्थों की सहायता के बिना आत्माका निर्वाह नहीं हो सकता। जैसे फूल किरणें लेताहै वैसे आत्मा भी प्राकृतिकसहायता लेता है। जो आत्मा जितनी सहायता लेता है उसकी अपेक्षा अधिक त्याग करता है वह शुक्ल लेश्या वाला है। कई आत्मा स्वार्थ में इतनी रची पची रहती है कि अपने स्वार्थ के सामने वे दूसरों का खयाल ही नहीं कर सकती। किन्तु कई आत्मा परमार्थ में इतनी मशगूल रहती है कि उन्हें अपने प्राणों का भी ध्यान नहीं रहता। सब से अधिक परमार्थ करने वाला शुक्ल लेश्या धारी होता है और जो केवल लेना ही जानता है देना कुछ नहीं जानता

वर्ण के समान लेश्या में गन्ध, रस और स्पर्श भी है कोई कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति को सूंघकर यह पता नहीं लगा सकता कि इसमें अमुक लेश्या है। इसका पता लगाने का साधन जुदा है। मन का फोटो लिया जाता है मगर साधारण कैमेरे से नहीं। उसके साधन जुदा हैं। द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या का परस्पर सम्बन्ध है अतः द्रव्य लेश्या के समान भाव लेश्या को भी समझना चाहिए।

• जैसे फूलों में सुधार किया जाता है वैसे लेश्या में भी सुधार होसकता है। आप भी अपनी लेश्या को सुधारने का प्रयत्न कीजिये। वस्त्र और खानपान के साथ भी लेश्या का सम्बन्ध है। भगवान महावीर ने साधुओं के लिए सफेद वस्त्रों का विधान किया है। यह बात रहस्य पूर्ण है। आधुनिक राष्ट्रीय पोषाक भी सफेद ही पसंद किया गया है। रंग के साथ भावों का सम्बन्ध है स्वाभाविक रंग से स्वाभाविक भाव पैदा होते हैं। भगवान ने खानपान के विषय में भी विधि बतलाई है। कौनसी वस्तुएं खाने योग्य है और कौनसी नहीं खाने योग्य है इसका विस्तृत विवेचन है। बहुत से भाई कहते हैं कि जीव रहित पदार्थ खाने योग्य हैं। किन्तु केवल जीव रहित होना ही भोजन की उपयुक्तता नहीं है। किस भोजन से कैसी प्रकृति बनती है यह मुख्य बात है। गीता में तामसी राजसी और सात्विक भोजन का विस्तृत वर्णन है। विकारी निर्विकारी आहार का वर्णन जैनागमों में भी है। तमोगुणी पदार्थों को जैनागमों में विगय अर्थात् विकृति कहा गया है। जो साधु आचार्य उपाध्याय के दिये बिना ऐसा आहार करता है उसे दण्ड आता है। दूध दही घी शक्कर आदि में जीव नहीं है मगर ये विगय हैं। खाने पर नियन्त्रण रख कर अपनी प्रकृति सतोगुणी बनाने से लेश्या में भी सुधार होता है।

• आजकल बहुत से लोग लाल शरबत पीते हैं जो शराब का ही रूपान्तर है। कुरान हदीसों में भी कहा है कि जो वस्तु बुद्धि में विकार पैदा करती हो वह न खानी पीनी चाहिए। वह हराम है। देशकाल के अनुसार खाने पीने की वस्तुओं में थोड़ा परिवर्तन हो सकता है। मैंने कुरान में पढ़ा है कि अल्ला ने जमीन और आसमान बनाकर इन्सान के खाने के लिए फल और वृक्ष बनाये। इससे मालूम पड़ता है कि इन्सान का आहार फलादि है। मांस आदि नहीं। मत समझदार लोगों ने मांस खाने का निषेध किया है और कहा कि [illegible] किसी की कबर मत बनाओ।

सुनाई हुई बातें सुनाया करें तो हमारा काम कितना हल्का हो जाय। तथा उपदेशक ही उपदेशक हो जाय।

सुभग ने सेठ से कहा कि आकाश में उड़ते समय वे मुनि कुछ मंत्र बोल रहे थे। अब मुझे वह मंत्र सिखा दीजिये ताकि मैं भी आसमान में उड़ा करूं। सेठ ने पूछा वह कौनसा मंत्र था जरा बताओ। 'अरिहंताणं, नमो अरिहंताणं' ऐसा वे बोलते थे। सेठ समझ गया और उसे सिखाने लगा--

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व साहुणं
ऐसो पंच नमोकारो, सव्व पाव पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्॥

कहो यही वह मंत्र है न! जो साधु महात्मा बोले थे। जी हां, यही मंत्र था सुभग ने उत्तर दिया। सेठ ने कहा तू ने अच्छी बात याद रखी।

मित्रो! एक दिन मैं जंगल गया था। रास्ते में एक फकीर बोल रहा था 'याद से आबाद, भूल से बरबाद'। वह किसकी याद के लिए कह रहा था। धन पुत्र स्त्री आदि को तो लोग खूब याद रखते हैं। वह परमात्मा की याद के लिए कह रहा था। जो परमात्मा को नहीं भूलता उसके हाथ से कभी पाप नहीं हो सकता। वह बरबाद नहीं होता।

बिस्मिल्लाहि रहमाने रहीम

अर्थात् अल्ला के नाम के साथ शुरू करता हूं। जो भगवान् का नाम याद रखता है उससे बुराई नहीं हो सकती। क्या वह किसी के गले पर छुरी चला सकता है। क्या कोई ठाकुर साहिब राजकोट का नाम लेकर किसी के गले पर छुरी चला सकता है। या चोरी कर सकता है।

कई लोग कहते हैं नाम से क्या होता है। मैं कहता हूं नाम के बिना काम नहीं होता। अदालत में जाकर कोई जज महोदय से कहे कि मुझे दस हजार रुपये लेने हैं सो दिलवावें। बिना नाम के जज किससे रुपये दिलावें। अतः नाम याद रखना बहुत जरूरी है।

नाम लेने में भी अन्तर है। एक तो सम्बन्ध जोड़ कर नाम लिया जाय और दूसरा बिना सम्बन्ध के नाम लिया जाय। उदाहरणार्थ समझिये कि एक तो वर या कन्या एक दूसरे का नाम सगाई होने के पहले लेते हैं और एक सगाई होने के बाद। दोनों समय के नाम लेने में कितना अन्तर हो जाता है। साधारण रीति से ईश्वर का बार बार नाम लेने में और उसके साथ सम्बन्ध जोड़कर नाम लेने में बड़ा फर्क है। परमात्मा से तादात्म्य सम्बन्ध जोड़कर नाम लीजिये, बड़ा आनन्द आयगा।

नवकार मंत्र सिखाकर सेठ जिनदास सुभग से कहने लगे कि इस मंत्र का बड़ा प्रभाव है। भगवान् पार्श्वनाथ ने जहरीले सांप को यह मंत्र सुनाया था। इसके प्रभाव से वह धरणेन्द्र देव हुआ।

एक चोर को शूली की सजा दी गई थी। वह शूली पर लगे हुए था कि उसे प्यास लगी। राजा के डर से कोई उसके पास न जाता था। एक दयालु सेठ उधर से निकला। चोर ने कहा सेठजी मैं प्यास के मारे मर रहा हूं। शूली से जितनी वेदना नहीं हो रही है उतनी प्यास के मारे हो रही है। सेठने कहा मैं पानी लेने के लिए जाता हूं। मगर न मालूम मेरे पहुँचने के पूर्व ही तेरी मृत्यु हो जाय। अतः तब तक तू नमो अरिहन्ताणं आदि मंत्र बोलते रहना ताकि मर जाय तो तेरी सद्गति हो जाय। वह चोर नमो अरिहन्ताणं आदि मंत्र भूल गया मगर बोलने लगा—

आणु टाणु कछु न जानूं सेठ वचन परमाण।

जो कुछ सेठने कहा वह प्रमाण है। सेठ पानी लेकर आया तब तक वह मर चुका था। नवकार मंत्र के प्रभाव से वह देव हुआ। उधर चोर को पानी पिलाने की कोशिश करने के कारण राजा के आदमियों ने सेठ को पकड़ लिया और राजा के सामने उपस्थित किया। राजा ने राजाज्ञा भंग करने के कारण उसे शूली की सजा दी किन्तु देव बने हुए चोर के जीव ने अपना आसन कम्पायमान होने से आकर उसकी रक्षा की। शूली का सिंहासन बन गया।

के जाने के पहले माता को बता दिया था कि घड़े में क्या है। माता घड़े में सांप देख क
डर गई थी। मगर श्रीमती तुरत गई और घड़े में हाथ डालकर माला लाई। नवक
मंत्र के प्रभाव से जब श्रीमती सांप को हाथ लगाती थी तब वह माला हो जाता
और जब मा बेटे देखते तब सांप ही दिखाई देता था। लड़के ने माता
समझाया कि माता नवकार मंत्र के प्रभाव से ही यह साँप माला बन जाया करता है। जि
नवकार मंत्र को छुड़ाने के लिए आप जिद पकड़े हुए हो उसका यह प्रभाव है। हम सबको
किया करते हैं मगर श्रीमती कभी किसी के प्रति क्रोध नहीं करती है यह भी इस मंत्र का ही प्रभ
है। श्रीमती के घर का क्लेश उसदिन से शान्त हो गया। सब आराम से रहने लगे।

सुभग नवकार मंत्र के प्रभाव की कथाएँ सुनकर बहुत खुश हुआ। उसे नवक
मंत्र याद होगया था अतः अपने को निर्भय अनुभव करने लगा। आगे क्या होता है
अवसर होने पर कहा जायगा।

राजकोट
१७—७—३६ का
व्याख्यान

दुःख मिटाने के लिए डाक्टर मौजूद हैं। मानसिक दुःख मिटाने के लिए आमोद प्रमोद की सामग्री है मानापमान का दुःख होतो वकील बैरिस्टर की शरण में जानेसे दुःख दूर हो सकता है। स्त्री पुत्र की आवश्यकता हो तो विवाह किया जा सकता है। मतलब यह कि दुःख मिटाने के प्रत्यक्ष साधन मौजूद हैं फिर अप्रत्यक्ष परमात्मा से प्रार्थना करने से क्या लाभ है। परमात्मा से ऐसी प्रार्थनादि करना वृथा है।

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वन्दन पूजन योग जी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो आपो सुख आरोग जी॥

इस दलील के उत्तर में ज्ञानियों ने बहुत विचार किया है। जिन साधनों या वैद डाक्टर और वकीलों को दुःख मिटाने का कारण माना जाता है वे दुःख मिटाने के वास्तविक कारण नहीं है। ऐसा निश्चित नहीं है कि इन उपायों को काम में लेने पर दुःख मिट ही जाते हों। दुःख मिट जाने पर वापस भी हो सकते हैं। डाक्टरों के द्वारा रोग घटने के बजाय बढ़ भी सकता है। वकीलों से पोजिशन की रक्षा होने के स्थान पर पोजिशन बिगड़ भी सकती है। स्त्री और पुत्र सुख देने के बजाय दुःख भी देते हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्त मौजूद है। ये सब साधन दुःख मिटाने के लिए पूर्ण कारगर कारण नहीं है। एक मात्र परमात्मा की शरण ही अचूक साधन है जिससे दुःख मिट जाते हैं वापस कभी नहीं होते।

बहुत से भाई मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए पुस्तकों का वाचन करते है। मेरा कहना है कि केवल पुस्तकों के भरोसे पर भी नहीं रहना चाहिए बहुत सी पुस्तकें अच्छी होती है जिनसे आत्म शान्ति का उपाय मालूम पड़सकता है और बहुत सी खराब भी होती है जिनसे अशान्ति और दुःखके कारण बढ़ जाते हैं। अतः ज्ञानियों के वचन पर विश्वास करिये। वे कहते हैं जो सुखदुःख कर्म के निमित्त से होते हैं वे अस्थाईक्षणिक होते हैं। स्वर्ग और नरक भी अस्थायी है। स्वर्ग सुख की आशा भी छोड़ देना चाहिए। परमात्मा की शरण लेने से ही स्थायी शान्ति मिलती है और हमेशा के लिए दुःख नाश हो जाता है।

आप कहेंगे महाराज! यह तो आध्यात्मिक सुख की बात हुई। हम तो सांसारिक जीव हैं। हमें भौतिक सुख की आवश्यकता है। उसकी कुछ बात बताईये। मेरा कहना है भौतिक सुख, आध्यात्मिक सुख का दास है। आप आध्यात्मिक सुख के लिए ही यत्न कीजिये। धान्य के साथ जैसे भूसा पैदा होता है वैसे आध्यात्मिक सुख के साथ भौतिक

सुख निश्चित है। आप भूसे के लिए यत्न मत कीजिये। धान्य के लिए यत्न कीजिये तो भूसा तो मिलेगा ही। भूसे का यत्न करने पर मिले और न भी मिले। परमात्मा की शरण में आने से आप में एक आकर्षण शक्ति पैदा होगी जिससे समस्त भौतिक चीजें आपके पास खिंचकर चली आवेंगी किन्तु तब आप उनको तुच्छ मानने लगेंगे। किसी आदमी को एक रत्न मिला। उस रत्न में प्रत्यक्ष रूप से खाने पीने आदि की वस्तुएं न दिखाई देती थी मगर उसके प्रभाव से सब कुछ मिल जाता था। आध्यात्मिक सुख मिलने पर भौतिक सब सुख मिल जाते हैं। आध्यात्मिक सुख प्रभु शरण से ही मिल सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में आत्म कल्याण का स्पष्ट मार्ग बताया हुआ है। इस मार्ग पर चलने की कोशिश की जाय तो सांसारिक सुख के लिए किये जाने वाले संकल्प विकल्प मिट जायं और आध्यात्मिक सुख प्राप्त हो जाय। आत्मा भ्रम जाल में फंसकर कई बार भौतिक वस्तुओं के कारण अपने को नाथ मानने लगता है। होता यह है कि वह वस्तुओं में बुरी तरह फंस जाता है और उल्टा उनका दास बन जाता है। जो वस्तु नाथ बनाने वाली है उसे वह भूल जाता है राजा श्रेणिक भी इस विषय मे भूला हुआ था। उसने कहा मुनि अनाथी के उपदेश से अपनी भूल को किस प्रकार दूर किया यह बात आप इस अध्ययन से समझिये।

बाग का वर्णन कर चुकने के बाद आगे शास्त्रकार कहते हैं:--

> तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
> निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइअं ॥ ४ ॥

राजा श्रेणिक उस बाग में विहार यात्रा के लिए आया था। वह किस ठाट बाट के साथ आया होगा इस बात का शास्त्रकार ने वर्णन नहीं किया है। मगर हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह राजसी ठाट के साथ आया होगा। वह बगीचे में इधर उधर घूमता हुआ फूलों की खुशबू ले रहा था। इतने में उसे एक संयत, सुसमाहित, सुकुमार, सुशोभित और वृक्ष के मूल में निषण्ण साधु दिखाई दिए। उनका चेहरा इस बात की गवाही दे रहा था कि वे सयम धारी और समाधिवन्त थे उनकी सुकुमारता और शरीर शोभा भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मुनि के बाग में विराजमान होने से बाग में भी विशेषता आ गई थी। शास्त्र कहता है, महात्माओं के संयम का पता उनके आसपास का वातावरण दे देता है।

जहां वे विराजते हैं वहां वैर भाव नहीं रहता। आपस में वैर रखने वाले जीव भी निर्वैर होकर विचरने लगते हैं। शेर और बकरी तक साथ रहने लगजाते हैं। भयभीत होने वाले प्राणी निर्भय होजाते हैं। चैतन्य प्राणियों के अलावा जड़ जगत् पर भी महात्माओं का प्रभाव पड़ता है।

राजा श्रेणिक विचार करने लगा आज बगीचे का वातावरण क्यों बदला हुआ मालूम होता है। मैं नित्य यहां आया करता हूं मगर आज कुछ नवीनता अनुभव हो रही है। क्या मेरा मन बदल गया है। अथवा बगीचे के सब प्राणी और वृक्षादि बदल गये हैं। वृक्ष के नीचे एक मुनिराज को देखकर वह विचार में डूब गया। साधु का और वृक्ष का क्या सम्बन्ध है जिससे शास्त्रकार ने दोनों को जोड़ दिया है। यदि परस्पर तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि साधु और वृक्ष में बहुत साम्य है। वृक्ष पर शीत और ताप गिरते हैं। वह शांति पूर्वक अडिग खड़ा रहकर उन्हें सहता है। किसी से इस बात की फरियाद नहीं करता। आप कहेंगे 'वह क्या फरियाद करें, वह जड़ है। क्या हम भी उसके समान जड़ बन जाय'। आप वृक्ष के समान जड़ मत बनिये मगर आपको शक्ति मिली है उसका कुछ तो उपयोग करिये। वृक्ष शीत ताप को सहन करता है। आप भी कुछ सहन करिये। आपको वह बहू पसन्द है या नहीं जो सासू के वचनों का आघात सह लेती है और सामने नहीं बोलती। यदि आघात सहने वाली बहू पसन्द है तो इसका अर्थ स्पष्ट होगया कि आघात सहन करना अच्छी बात है। जो सासुएं अच्छी बहूएं चाहती हैं उन्हें स्वयं 'अच्छा' बनने की कोशिश करना चाहिये। वृक्ष जैसे पवन का आघात सहन करता है वैसे ही जो पुरुष संसार व्यवहार के अनेक आघात सहन करता है वह महान् बन जाता है। संसार में कैसे भी कष्ट हों सब अवस्थाओं में सहन शील रहना, कल्याण का मार्ग है।

महाभारत में कहा है कि युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह का अन्तिम समय जानकर एक बात पूछी थी। धर्म और राजनीति की अनेक बातें जानने के बाद आखिरी शिक्षा लेने के लिए यह बात पूछी गई थी। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा तुम जो कुछ पूछना चाहो पूछ सकते हो। मैं तुम्हारी जिज्ञासा में जितनी भी शिक्षा की बातें हों रखना चाहता हूं। युधिष्ठिर ने पूछा किसी बलवान् शत्रु के आक्रमण करने पर धर्म का अनुसरण करते हुए क्या करना चाहिए। भीष्म ने [illegible] कि यह [illegible] के लिए मैं तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाना चाहता हूं।

नदियों का स्वामी समुद्र सब नदियों पर बड़ा प्रसन्न था मगर वेत्रवती नदी पर अप्रसन्न था। समुद्र ने वेत्रवती नदी से कहा तू बड़ी कपटिन है। अन्य नदियां अनेक प्रकार का सामान लाकर मुझे भेंट करती हैं मगर तूने एक टुकड़ा भी मुझे नहीं दिया। तेरे में बेंत की लकड़ियां बहुत होती हैं मगर कभी एक लकड़ी भी मेरे लिए नहीं लाई। जिसके पास जो वस्तु हो वह यदि अपने पति को न दे तो उसका व्यवहार अच्छा नहीं गिना जा सकता।

समुद्र का कथन सुन कर वेत्रवती ने उत्तर दिया कि इस में मेरा कोई कसूर नहीं है। जब मैं बड़े जोर से पूर के साथ बहती हूं तब बेंत की लकड़ियां नीचे झुक जाती हैं जिससे मेरा पानी उनके ऊपर होकर निकल जाता है। पूर निकल जाने के बाद वे लकड़ियां पुनः जैसी की तैसी खड़ी हो जाती हैं। जो मेरे सामने झुक जाते हैं उनको मैं कुछ भी बिगाड़ने में असमर्थ हूं। हे समुद्र! अब आपही बताइये कि इस में मेरा क्या कसूर है।

समुद्र और वेत्रवती का यह संवाद सुनाकर भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा, जब प्रबल शत्रु चढ़कर आवे तब वही करना चाहिये जो बेंतों ने किया। बेंत पानी का पूर आने पर, झुक जाती है मगर अपनी जड़ नहीं उखड़ने देती। इसी प्रकार शत्रु के आने पर नम्र हो जाना चाहिए और जब उसका जोश ठण्डा हो जाय तब अपनी मूल स्थिति में आ जाना चाहिए। युधिष्ठिर! तुम अजातशत्रु हो अतः तुम्हारे लिए ऐसा प्रसंग न आयेगा फिर यह शिक्षा दूसरों के लिए हितकारी होगी। युधिष्ठिर अजातशत्रु थे। इसी प्रकार मुनि भी अजातशत्रु हैं। युधिष्ठिर की अजातशत्रुता के विषय में सन्देह हो सकता है मगर मुनि की अजातशत्रुता के विषय में सन्देह को कोई स्थान नहीं है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसैं घट में प्रकट सदा, अन्तर की लच्छी सो अजाची लच्छपति है।
दास भगवान के उदास रहें जगत सों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं॥

श्रावक सोचता है कि मैं गृहस्थ नहीं हू और साधु भी नहीं हूं। श्रावक अपना स्वार्थ साधता है मगर सत्य के साथ। दूसरों को पीड़ा पहुचाये बिना। यदि सत्य का घात होता हो तो श्रावक लाखों की सम्पत्ति की भी परवाह नहीं करता। कई लोग किसी भी प्रकार से विषय भोग की सामग्री इकट्ठा करने में ही मुक्ति मानते हैं। मगर मुक्ति भोग में नहीं है, त्याग में है।

श्रावक सत्य का उपासक होता है। कोई कहे कि उपाश्रय में रहे तब तक सत्य का उपासक रहे और दुकान पर जाये तब सत्य का आश्रय कैसे लिया जाय। किन्तु शास्त्र कहता है सत्य की खरी कसौटी तो लोक व्यवहार ही है। उपाश्रय में धर्म या सत्य का पाठ पढ़ाया जाता है। उस पाठका असली आचरण तो व्यवहारमें ही होना चाहिये। मदरसे में छात्र पाच और पाच दस सीखे और दुकान पर आकर पाच और पाच ग्यारह बताने लगे तो कैसे काम चले। क्या वह शिक्षा सच्ची गिनी जा सकती है? कदापि नहीं। धर्म स्थानक में सत्य अहिंसा की शिक्षा ली जाय और बाहर जाकर बाजार में सफेद झूठ का व्यवहार किया जाय तो धर्म की हंसी कराना है।

श्रावक लोग बारह व्रत ग्रहण करके व्यवहार में उसका पालन करते हैं। कई लोग दलील करते हैं कि 'कन्नालीए' अर्थात् कन्या सम्बन्धी गोवालीए–गाय सम्बन्धी और भोमालीए–भूमि सम्बन्धी झूठ न बोलना इतना अर्थ ठीक है। व्यवहार में यह निभ भी सकता है। मगर कन्या, गाय और भूमि को उप लक्षण बनाकर मनुष्यमात्र, पशुमात्र और भूमि से उत्पन्न सम्पूर्ण पदार्थों के विषय में झूठ न बोलना, कैसे निभ सकता है। दलील करने वालों की मंशा है कि व्रतों में कुछ छूट होनी चाहिए। मगर ज्ञानी कहते हैं यदि कन्या के विषय में झूठ बोलना पाप है तो वर या अन्य किसी के विषय में झूठ बोलना कैसे धर्म होजायगा। झूठ मात्र पाप है। श्रावक को इसके लिए अपने आप पर काबू करना ही चाहिए। यदि यह कहा जाय कि बिना झूठ बोले व्यापार करना सम्भव नहीं है तो यह [illegible] है पुणिया [illegible] सत्य के साथ अपना व्यापार चला सकते हैं तो आप क्यों नहीं चला सकते। बल्कि जो सत्य पूर्वक–व्यापार करता है उसका व्यापार अच्छा चलता है। [illegible] के बिना [illegible] सकते हैं किन्तु सत्य के बिना काम नहीं चल सकता।

सुभग नवकार मंत्र सीखकर खाते, पीते, उठते, बैठते हर वक्त उस की रट लगाने लगा। भोले लोगों में विश्वास अधिक होता है। सुभग एक भोला और सीधा सादा लड़का था। दुनिया के गुढ़ माया जाल से एकदम अपरिचित था। सुभग नवकार मंत्र के कारण अपने आपको निर्भय अनुभव करने लगा। 'अब मैं कहीं भी जाऊं, मुझे भूत प्रेत डाकिन शाकिन आदि किसी का भी कोई भय नहीं है मैं निर्भय और अमर हूँ'।

गांधीजी की अन्य बातों में चाहे किसी का मतभेद हो मगर उनके सत्य के विषय में किसी को भी संदेह नहीं है। उन्होंने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि 'मुझे मेरी धाय माताने यह बात सिखाई थी कि राम का नाम लेने से किसी तरह का भय न रहेगा। मेरे कोमल दिमाग में उसके उस कथन पर विश्वास जम गया था अतः इस प्रकार का भय नहीं होता था।

आप लोग भी नवकार मंत्र जानते हैं। आपके हृदय में भूत प्रेत आदि का भय तो नहीं है। यदि आपसे कोई स्मशान में रहने के लिए कहे तो आप इन्कार तो नहीं करेंगे? आपकी कल्पना का भूत और शास्त्र कथित देवयोनि का भूत जुदा जुदा है। आपका कल्पित भूत तो एक थप्पड़ में भग जाता है। एक ताविज या गंडा बांध लेने से भी भग जाता है। शास्त्र वर्णित देव के लिए तो कहा गया है 'क्रोड चक्री एक सुर कह्यो।

अमेरिका में भूतों की लीला का ढोंग चला। दो मित्रों ने इसकी जांच करने का मक्की किया। भूत लाने वाले के पास जाकर एक ने कहा कि मेरी बहिन का भूत ला दो। बहिन जीवित थी। भूत लाने वाले ने जरा ऊँचा करके कहा लो भूत आ गया है। वह बड़े आश्चर्य में पड़ गया कि जीवित व्यक्ति का भूत कैसे आ गया। खामोश होकर बैठा रहा। दूसरे ने कहा, नेपोलियन का भूत ला दो। झट नेपोलियन का भूत आ गया। वह मित्र तलवार लेकर उसके सामने दौड़ा भूत नौ दो ग्यारह हो गया। वह सोचने लगा कि जिस नेपोलियन ने अपनी वीरता से सारे यूरप को कम्पा दिया था उसका भूत क्या एक तलवार से डर सकता है। फिर शंकराचार्य के भूत को बुलवाकर उनसे वेदान्त के प्रश्न पूछे गये मगर उत्तर नहीं दिये जा सके। उन दोनों मित्रों ने भूत लाने वाले ढोंगियों का भण्डाफोड़ कर दिया।

आप लोग नवकार मंत्र पर विश्वास रखो तो ऐसे चक्र में कभी न फसो। पुरुषों के [illegible] होती है। वे बच्चों को डराया करती है। [illegible]

मन का वहम भूत रहता है। कोमल दिमाग के बच्चों में वह बात घर कर जाती है और कल्पना भूत उम्र तक साथ रहता है। इस प्रकार के वहम दिल में से निकाले बिना धर्म में स्थिर रहने में आप समर्थ नहीं हो सकते।

सेठ ने सुभग की रग रग में नवकार मंत्र के महत्त्व को उतार दिया जिससे वह मन्त्रनिष्ठ होकर रहने लगा। आप भी इस प्रकार परमात्मा के नाम पर विश्वास रखकर निर्भय बनो तो कल्याण है।

राजकोट
१८—८—३६ का
व्याख्यान

:—: चैत्य व्याख्या :—:

" सुमति ! सुमतिदातार महामहिमानिलो जी .... । "

परमात्मा की प्रार्थना करने के कुछ उदाहरण इस प्रार्थना में बताये गये हैं।
उदाहरण स्पष्ट हैं फिर भी मैं और स्पष्ट करता हू । यदि इन उदाहरणों को हृदय में रख
प्रार्थना की जाय तो प्रार्थना में पूर्ण सफलता मिल सकती है ।

भ्रमर की फूल से प्रीति होती है । सूर्य से कमल की और पपीहा की पानी से प्र
होती है । जैसी इन तीनों–भ्रमर कमल और पपीहा की अपनी इष्ट वस्तुओं के प्रति प्रीति
है वैसी यदि मनुष्य की प्रीती परमात्मा के साथ हो जाय तो बेड़ा पार है । भ्रमर एक ही दि
में गमन करता है । अर्थात् जिससे उसने प्रीति करली है उससे विपरीत दिशा में नहीं जा
उसकी प्रीति पुष्प से है । वह पुष्प की सुगन्ध का रसिक है । वह फूलों से सुगन्ध

करता है। यदि उससे कोई कहे कि हे भ्रमर ! तू विष्ठा की सुगन्ध ग्रहण कर तो वह कदापि ग्रहण न करेगा। पुष्पों की सुगन्ध छोड़ कर भला वह विष्ठा की दुर्गन्ध क्यों ग्रहण करने लगा। ऐसी कल्पना करने में भी उसे घृणा होगी।

परमात्मा की भक्ति पुष्प की सुगन्ध के समान है और विषयों की इच्छा विष्ठा की दुर्गन्ध के समान है। जिन लोगों की आदत प्रभु भक्ति करके भक्ति रस का पान करने की है वे विषय वासना जन्य निकृष्ट सुख की कभी भावना नहीं कर सकते। यह नहीं हो सकता कि कोई परमात्मा की भक्ति करके फिर विषय वासना की ओर दौड़े। यदि भक्ति करने के बाद भी मन विषय वासना की ओर दौड़ता होतो समझना चाहिए कि अभी भक्ति में कसर है। पुष्प की सुगन्ध के बाद विष्ठा की दुर्गन्ध लेने की इच्छा होना असंभव है। जिसने भक्ति रस का आस्वादन कर लिया है वह काम भोग जन्य सुख की वांछा नहीं कर सकता। यह बात ठीक है कि इस आत्मा को अनादि काल से विषय सुख की आदत पड़ी हुई है अतः भक्ति जन्य आनन्द की तरफ खिंचाव होने पर भी संस्कार वशात् विषयों की ओर मन दौड़ जाता है। मगर प्रयत्न यह होना चाहिए कि मन विषयों की तरफ जाय ही नहीं। जितना जितना प्रभु भक्ति का रंग गहरा चढ़ता जायगा उतना उतना विषयों पर का रंग फीका पड़ता जायगा। प्रभु भक्ति और विषय भक्ति में परस्पर विरोध है।

अभी युवक परिषद् के मंत्री ने आप लोगों को युवक परिषद् में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रण दिया है। युवक लोग परिषद् भर रहे हैं। युवकों से मुझे यह कहना है कि वे पहले अपना खुद का सुधार करलें बाद में अपने विचार दूसरों के सामने रखने चाहिए। अपने ही चरित्र का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है।

मतलब यह है कि सच्चरित्र बन कर परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। कोई कह सकता है कि यदि सच्चरित्र बन जायंगे तब परमात्मा की प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता रहेगी। प्रार्थना सच्चरित्र बनने के लिए ही की जाती है। उत्तर—प्रार्थना और चरित्रता का आपस में द्रव्य कर्म और भाव कर्म जैसा सम्बन्ध है। जैसे द्रव्य कर्म की वजह से भाव कर्मों की पुष्टि मिलती है और भाव कर्मों से द्रव्य कर्म की इसी प्रकार प्रार्थना करने से आत्मा में नम्रता आदि गुणों की प्राप्ति होती है और नम्र बनकर प्रार्थना करने से भगवान की तरफ विशेष खिंचन होता है। सदचरित्र अथवा सद्गुणी बनकर प्रार्थना करने से सदगुण बनने की हमारी मुराद जल्दी पूरी हो सकती है।

प्रार्थना भी करते जाना और दुराचरण भी सेवन करते जाना, ठीक नहीं है तो क्या हम सब लोग साधु बन जाएँ ? मैं सब को साधु बनने के लिए नहीं कहता। सब लोग साधु बन जाएँ तो रोटियाँ कहाँ से मिलेंगी। साधु होना तो अपनी अपनी मनः कामना और शक्ति पर निर्भर है। किन्तु जो व्यक्ति जिस स्टेज-दर्जे पर है उसे उसके अनुसार सच्चरित्र बनना ही चाहिये। आप गृहस्थ हैं अतः गृहस्थ के योग्य सच्चरित्रता बनना ही चाहिए। गृहस्थों की सच्चरित्रता के हालात आप लोग उपासक दशांग सूत्र में सुन ही रहे हो। बिना साधु हुए यदि धर्माचरण न किया जा सकता होता तो भगवान महावीर स्वामी यह न कहते कि—

दुविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा आगार धम्मे अणगार धम्मे।

धर्म दो प्रकार का है। एक साधु के लिए और दूसरा गृहस्थों के लिए। गृहस्थ अपने धर्म का पालन करें और साधु साधु धर्म का। यदि गृहस्थ अपने धर्म का समग्र प्रकार से पालन करने लगें तो साधु भी अपना साधुत्व अच्छी तरह निभा सकें। साधु धर्म और गृहस्थ धर्म एक दूसरे पर आधार रखते हैं। गृहस्थों को भी अपने पद के अनुसार प्रार्थना में वर्णित उदाहरणों के अनुसार भगवान् की भक्ति करनी चाहिए।

अब मैं शास्त्र की बात कहता हूँ। अनाथी मुनि की कथा सम्बन्धी गाथा की एक चर्चा रह गई है जिसे स्पष्ट करना उचित है।

विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिंसि चेइये।

श्रेणिक राजा मंडिकुक्ष नामक चैत्य में विहार यात्रा के लिए गया। यहाँ मंडिकुक्ष-उद्यान का प्रयोग न करके मंडिकुक्ष चैत्य शब्द का प्रयोग किया गया है। चैत्य शब्द का अर्थ [illegible]। इस उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार 'चैत्य इति उद्याने' अर्थात् 'चैत्य शब्द का अर्थ उद्यान है,' ऐसा लिखते हैं। श्रेणिक राजा उद्यान में गया।

चैत्य शब्द 'चिति चयने, चिति-संज्ञाने' धातु से बना है। जहाँ प्राकृतिक [illegible] बहुत सुन्दर हो, बहुत [illegible] हो उस स्थान को चैत्य कहते हैं। [illegible] को चैत्य कहते हैं। [illegible] को चैत्य कहते हैं। [illegible] सूत्र में [illegible]

गाथा में कहा है पहले राजाने साधु को देखा है। अतः हम भी पहले साधु का अर्थ समझलें।

साधयति स्व पर कार्याणीति साधुः

जो अपना और दूसरों का काम साधता है वह साधु है। जिस प्रकार नदी समुद्र की ओर जाती है मगर जाती हुई अपने आस पास के क्षेत्रों का सिंचन करती है। उसका मुख्य उद्देश्य अपने आपको समुद्र में मिला देना है। मगर उसकी चेष्टा और क्रियाएं ऐसी है कि अपना काम साधते हुए दूसरों का भला हो जाता है। उसके पास पड़ने वाले प्रदेश हरे भरे और फल फूलों से सयुक्त हो जाते है। ठीक यही बात साधुओं के विषय में लागू पड़ती है। साधुओं का लक्ष्य अपना आत्म कल्याण करना है। अर्थात् अपने आप को परमात्मा रूप समुद्र में मिलाना है। मगर समुद्र मिलन रूप मुख्य कार्य के साथ, उनके आचरण से उनके आसपास रहने वाले और उनकी सेवा में आने वालों का बड़ा भला हो जाता है। साधु अपना मुख्य ध्येय त्याग कर दूसरों की भलाई करने में नहीं पड़ते किन्तु अपने साध्य की सिद्धि के साथ २ दूसरों का भी उपकार करते हैं। जिस प्रकार वृक्ष अपनी प्रकृति से ही फलते फूलते हैं दूसरों पर उपकार करने के लिए नहीं फलते फूलते। यह बात दूसरी है कि दूसरे उन का लाभ लेते हैं। उसी प्रकार साधु भी अपना काम साधते हुए दूसरों के उपकारी बन जाते है। उनके मन में यह भावना नहीं होती कि हम दूसरों की भलाई के लिए अमुक काम कर रहे हैं। उनकी स्वाभाविक क्रियाएं ही दूसरों के उपकार करने में निमित्त भूत बन जाती है। पत्थर या कुल्हाड़ी मारने वाले के लिए भी जैसे वृक्ष फल प्रदान करने में परहेज नहीं करता वैसे सन्त जन भी गाली देने वाले या बुराई करने वाले का उपकार करने में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं रखते। ऐसा कभी नहीं कहते कि अमुक आदमी ने हमारी बुराई की है अतः उसे हमारे व्याख्यान सुनने का अधिकार नहीं है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' अपनी आत्मा के समान सब प्राणियों के साथ बर्ताव करते हैं।

अब प्रश्न यह है कि जब गाथा में साधु शब्द आ गया है तब सुयति शब्द के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी। टीकाकार इस बात का खुलासा करते है कि स्वपर हित साधन रूप साधुता गृहस्थावास में रहते हुए गृहस्थ में भी हो सकती है। वह अल्पारंभी अल्प परिग्रही रहता हुआ अपना और दूसरों का भला कर सकता है। साहित्य में, अपना स्वार्थ साधते हुए परमार्थ को नहीं भूलता उसके लिए भी साधु शब्द का प्रयोग किया जाता है। गृहस्थ अपने बालबच्चों और स्त्री का पालन पोषण करता हुआ दीन हीन की

पर इस बात का कोई चिह्न नहीं था। सुखो चित का यह भी अर्थ होता है कि उनका शरीर सुख के योग्य था। वे सुख भोगने के योग्य रूपवान् थे।

आजकल गुणों की अपेक्षा रूप की कद्र ज्यादा की जाती है। इसीलिए लोग बाल रखाते हैं और तेल साबुन का उपयोग करते हैं। रूपवान होने का दिखावा करके अपना महत्त्व बढ़ाना चाहते हैं। हिन्दुओं के सिर पर रहने वाली चोटी—शिखा बाल रखाने के रूप में आगे आगई है स्त्रियों में भी लेडी फेशन घुस गई है। जब स्त्रियाँ लेडी बनेंगी तो उनके पतियों को भी साहब बनना होगा। स्त्रियों ने रूप को अपना अस्त्र मान रखा है। इसी अस्त्र के द्वारा वे पुरुष को अनेक प्रति मुग्ध करना चाहती हैं। वास्तविक रूप कैसा होता है इसका उन्हें पता नहीं होता। वस्तुतः में रूप का सम्बन्ध शरीर से नहीं है मगर हृदय से है। जिसका हृदय कलुषित हो उसका शरीर सौन्दर्य कैसा भी क्यों न हो चेहरा विकृत ही होगा। चेहरे पर मनोभावों का असर रहता है।

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर आश्चर्य से कहा, अहो वर्ण और अहो रूप! यदि बाल सँवारने मात्र से ही रूप होता तो उन मुनि के न तो बाल सँवारे हुए थे और न अच्छे कपड़े ही थे। श्रेणिक जैसा व्यक्ति जो कि अनेक रत्नों का स्वामी और शृंगार का पारखी था रूप और वर्ण की प्रशंसा कर रहा है इस से मालूम होता है कि उन मुनि के वर्ण और रूप असाधारण थे। मुनि के शरीर पर किसी प्रकार की शृंगार सामग्री न थी फिर भी श्रेणिक ने इतनी प्रशंसा क्यों की इस बात पर विचार करिये। इस विषय में मैं अधिक न कह कर केवल इतना ही कहना चाहता हूं। आधुनिक सभ्यता और ऊपरी टीपटाप दिखाने पर अवलम्बित है जब कि पुरातन भारतीय लोग हृदय की शुद्धि अशुद्धि में सुरूपता कुरूपता मानते थे। मनोगत भावों का सुन्दरता पर गहरा असर पड़ता है। कसाई दलन करने वाले की आंखों की तरफ देखिये। उसका चेहरा कैसा दिखता और क्रूर होगा। अविकारी का सुन्दर रूप भी कुरूप मालूम पड़ता है। इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण सुदर्शन-चरित्र में होगा। अतः आप लोग ध्यान लगा कर सुनिये।

सुदर्शन चारित्र

निशा मंत्र नवकार का, मन में करता ध्यान।
इस पर चंदन धारन आसन, पल्ली चौर उद्यान॥

तो सुमिरन विन या कलिजुग में अवर नहीं आधारो।
मैं वारी जाउं तो सुमिरन पर दिन दिन प्रीति वधारो॥

आप लोग दिन ब दिन परमात्मा का नाम भूलते जा रहे हो सो कहीं इस कारण से तो नहीं भूल रहे हो कि परमात्मा का नाम लेने पर झूठ कपट का सेवन नहीं किया जा सकेगा और इस प्रकार हमारा धंधा रोजगार बन्द होजायगा। अगर इसी विचार से नाम भूल रहे हो तो इसमें आपकी भूल है। जो परमात्मा का स्मरण भजन करेगा वह झूठा केस हाथ में न लेगा फिर भी भूखों न मरेगा। यदि नाम लेने वाले भूखों मरते हों तो आपको प्रभु नाम लेने के लिए कभी नहीं कहा जाता। यह बात जुदी है कि कभी आपकी कमाई कमती हो। मगर भूखों नहीं मर सकते।

सुभग को नवकार मंत्र पर पूरी आस्था बैठ गई अतः वह उसीका जाप करता था। अब उसकी कसौटी का समय आता है। एक दिन सुभग जंगल में गायें लेकर गया। वह जंगल में ही था कि बहुत जोरों की वर्षा शुरू होगई। वर्षा साधारण न थी मगर घनघोर थी। बालक मन में विचार कर रहाथा कि इस प्रकार गरजना बरसना मेरी परीक्षा के लिए है। भक्त लोग कहते हैं—

गरजि तरजि पाषाण बरसि पवि प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमंग उर पर पर परमिति पहिचानै॥

ये बादल गरजते हैं, पानी बरसता है, बिजली चमकती है, कभी गिरती भी है, और ओले पड़ते हैं, यह सब परीक्षा के लिए है। हमने भजन किया है या नहीं और भजन पर विश्वास है अथवा नहीं इस बात की जांच भी तो होनी चाहिए। पपीहा स्वाती का ही पानी पीता है दूसरा नहीं। जब बादल गरजते हैं और बिजली चमकती है तब वह बड़ा प्रसन्न होता है कि इस परीक्षा के बाद मुझे पानी मिलेगा। इसी प्रकार भक्त लोग ऐसे प्रसंगों पर घबराते नहीं वरन हर्षित होकर सामना करते हैं।

सुभग यही सोच रहा है कि आज मेरी परीक्षा है। वह चाहता तो अब भी [illegible] रहने पर भी [illegible]

काम आगई। किन्तु नहीं। मगर भक्त इस प्रकार की ओछी कल्पनाएं नहीं किया करते। वे ऐसा सोचने और करते हैं। आपको जोर की प्यास लगी हो और कोई आदमी गाली सुनाता हुआ आपको पानी पिलाये, उस वक्त आप उसकी गाली की तरफ ध्यान दोगे या पानी पियेंगे। कोई छात्र परीक्षा देने के लिए परीक्षा हॉल में आये और उस समय यदि कोई उसको गाली गलौच दे तो वह गाली देने वाले से लड़ने बैठेगा या अपना प्रयोजन सिद्ध करेगा। बुद्धिमान् गाली गलौच का ख्याल न करके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। आप लोग भी बुराइयों पर ध्यान न देकर इस संसार की परीक्षा में उत्तीर्ण होइये।

सुभग इस अवसर को अपने लिए कसौटी का समय मानकर गायें लेकर घर की ओर चल दिया। मार्ग में नदी बहुत पूर से बह रही थी। नदी के दोनों किनारों से सटकर पानी बह रहा था। गायें तैर कर परली पार पहुंच गई मगर सुभग न जा सका। वह उस पार खड़ा खड़ा सोचने लगा कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए। अन्त में निश्चय किया कि जब मैं नवकार मंत्र जानता हूं तब डर किस बात का। नदी का पूर कैसा भी हो मेरा साहस उससे कम नहीं है। वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया। इस विषय में अनेक तर्क वितर्क किये जा सकते हैं और उनका निवारण करने के लिए सामग्री भी है मगर कहने का समय नहीं है। अभी तो इतना ही ध्यान में रखिये कि वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया है। अब क्या होता है इसका बयान यथावसर किया जायगा।

राजकोट
१९—७—३६ का
व्याख्यान

साधुता का आदर्श

"पदम प्रभु पावन नाम तिहारो..............।"
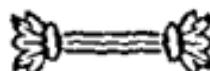
प्रार्थना अनेक तरीकों से की जा सकती है। इस प्रार्थना में यह तरीका अख्तियार किया गया है जो विद्वान और मूर्ख, बलवान् और निर्बल, धनवान् और गरीब, राजा और प्रजा, पुरुष और स्त्री, साधु और गृहस्थ सब के लिए समान रूप से उपयोगी है। इस में कहा गया है, परमात्मा का नाम स्मरण करना सब के लिए सुलभ है।

संसार में जितने भी आस्तिक दर्शन हैं उनमें अन्य बातों के विषय में मत भेद हो सकता है मगर परमात्मा के नाम स्मरण की उपयोगिता के विषय में कोई मत भेद नहीं हो सकता है। हर एक दर्शन ने किसी न किसी रूप में परमात्मा के नाम स्मरण का महत्त्व स्वीकार किया है। जो निष्काम होकर प्रभुनाम का स्मरण करते हैं उनके शरीर में बहुत अलौकिक

अहो वण्णो ! अहो रूवं ! अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खंति ! अहो मुत्ति ! अहो भोगे असंगया ॥६॥

श्रेणिक राजा बाग में राजसी ठाट से गया था और मुनि वहाँ सादगी से वृक्ष के नीचे बैठे हैं। वे मुनि संपति, सुसमाधिवन्त, सुकुमार और सुखोचित थे। 'सुहोइयं' का अर्थ शुभोचित भी होता है। सब शुभ गुणों से युक्त उन मुनि का शरीर था।

नाम की महिमा बहुत बताई गई है मगर नाम के साथ रूप का भी सम्बन्ध है। वैसे नाम के द्वारा किसी की पहिचान कराई जाती है किन्तु कभी रूप से भी नाम जाना जाता है और परिचय हो जाता है। राजा ने उन मुनि का रूप देखकर ही नक्की कर लिया था कि ये मुनि संपति और सुसमाधिवन्त हैं।

ठाणांग सूत्र में चार प्रकार का सत्य बताया गया है। १ नाम सत्य २ स्थापन सत्य ३ द्रव्य सत्य ४ भाव सत्य। नाम से सत्य होता है मगर इसमें समझने की जरूरत है किसी ने अपना नाम झूठा बता दिया। रूप सत्य भी होता है मगर किसीने झूठा रूप बना दिया। अतः नाम या रूप सत्य है या नहीं इसकी पहचान करने की जरूरत है। लोग झू[illegible] से भी काम लेते हैं अतः सावधानी की आवश्यकता है। एक आदमी ने अपना नाम कु[illegible] और था और बता कुछ और दिया। यह नाम सत्य कहां रहा। साधु नहीं है फिर अपने को साधु बतावें। यह झूठ है या नहीं? द्रव्य से है तो पीतल मगर उसे सो[illegible] बनावे। कल्चर मोती को असली बतावे। यह सब झूठ है। इसी प्रकार भाव में भी झू[illegible] होता है। शास्त्र में कहा है—

तवतेणे वयतेणे रूवतेणेय जे नरा।
आयारभाव तेणेय कुव्वइ देवकिव्विसं॥

[illegible], [illegible], वय, आचार विचार आदि में झूठ चलाना अथवा इनकी चोरी कर[illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] मानते नहीं है फिर भी उनके सम्बन्ध में [illegible] [illegible] हैं, [illegible] है। दूसरों के विचार अपने नाम से जाहिर कर[illegible] [illegible] है। [illegible] द्रव्य और [illegible] भी होते हैं और [illegible] भी [illegible] है।

कवि भी कहते हैं कि जब मनुष्य कामान्ध बन जाता है तब खराब वस्तु को भी अच्छी कहता है और मानता है। भर्तृहरि आगे कहते हैं कि स्त्रियों का मुख कदाचित थूक लार के घर के सिवाय अन्य क्या है ? फिरभी कवियों ने उसको चन्द्रमा की उपमा दी है। इतनाही नहीं किन्तु स्त्री के वदन के सामने चन्द्रमा को भी तुच्छ माना है। कवियों ने स्त्री को हंसगामिनी और गजगामिनी रूप से वर्णित किया है। इस प्रकार स्त्री के अंग प्रत्यंगों का वर्णन करके कवियों ने स्त्री रूप को बहुत महत्त्व दिया है। इस पर से यह प्रश्न उठता है कि क्या स्त्रियों में ही रूप होता है, पुरुषों में नहीं। इस विषय में कवि कहते हैं कि अन्य बातों में पुरुष स्त्री की अपेक्षा ऊंचा हो सकता है मगर रूप के विषयमें उसका दर्जा नीचा ही है। स्त्रियों के रूप के सामने पुरुष अपने जीवन को पतंग के समान समर्पित कर देते हैं। स्त्रियों के रूप की मोहनी पुरुषों को अपने काबु में कर लेती है। रावण का सर्व नाश स्त्री के रूप ने ही किया है। तुकोजीराव होल्कर को राज्य छोड़ने के लिए स्त्री की मोहिनी ने ही विवश किया था। दामोदरलालजी महन्त एक वैश्या के पीछे ही खराब हुए हैं। रूप के गुलाम बनने और स्त्रियों में अधिक रूप है यह धारणा बांध लेने से वेश्याओं की वृद्धि हुई है और कुलांगनाओं को कष्ट भोगना पड़ता है।

क्या सचमुच स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुन्दर होती हैं। यदि अधिक सुन्दर होती तो उन्हें रूप वृद्धि के लिए कृत्रिम साधनों को इस्तेमाल करने की आवश्यकता होती। जिसके मूल दांत अच्छे हैं वह बनावटी दाँत क्यों बिठायेगा। जिसकी आखोंमें रोशनी है वह चश्मा क्यों लगायेगा। जिसके पांव अच्छे है वह रबर या लकड़ी के पैर क्यों लगायेगा। कृत्रिम साधनों का उपयोग तब किया जाता है जब असलियत में खामी हो। स्त्रियों में रूप की पूर्णता होती तो वे सौन्दर्य वृद्धि के लिए नकली साधनों का उपयोग नहीं करतीं। वे बनावटी साधनों से अपने को सजाती हैं इसी से मालूम होता है कि उनमें रूप की कमी है। स्त्रियों को शृंगार सामग्री बहुत प्रिय होती है अतः इसकी पूर्ति करके पुरुष उन्हें अपने काबू में करते हैं। दूसरी बात, प्राकृतिक रचना पर विचार करने से भी मालूम होता है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ सुन्दर नहीं होती। पुरुष अधिक सुन्दर होते हैं। मोहान्धता के कारण स्त्रियों को अधिक सुन्दर माना जाता है। मयूर और मयूरनी को एक जगह खड़ा रखकर देखा जाय तो यह बात स्पष्ट मालूम होगी कि मयूर अधिक सुन्दर होता है। मयूर की गर्दन और पुच्छ मयूरनी से अधिक अच्छे होते हैं। मुर्गे और मुर्गी को देखिए। जैसी [illegible] मुर्गे की होती है वैसी मुर्गी की नहीं। गाय और सांड में सांड

शरीर पर मुकुट कुण्डल आदि न थे। वस्त्र भी थे या नहीं इसका पता नहीं है। बैठे भी वृक्ष के नीचे थे ; फिर भी रूपवान् थे। अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि रूप हृदय में है।

श्रेणिक जैसे को भी रूपने आश्चर्य चकित कर दिया। उन मुनि का ऐसा कैसा रूप था। रूप की परीक्षा उसका विशेषज्ञ ही कर सकता है। हीरे की परीक्षा जौहरी ही कर सकता है। कहा जाता है कि कोहिनूर हीरा कृष्णा नदी के किनारे पर किसी किसान को मिला था। मिला किसान को मगर उसकी कीमत जौहरियों ने ही आँकी थी। राजा श्रेणिक हृदय का परीक्षक था अतः मुनि के रूप की सच्ची परीक्षा कर सकता था। उसने उनके हृदय को चेहरे और आँखों में देख लिया। यह बात आप भी जानते हैं कि दयालु और सदाचारी की आँखें कैसी होती है और व्यभिचारी की कैसी। आँखें देख कर ही आदमी के गुणावगुण का पता लग सकता है। पशु भी आँखें देख कर मनुष्य को समझ लेता है। देवता भी दयालु और सदाचारी के रूप पर मुग्ध हो जाते हैं। आप भी ऐसा रूप प्राप्त करने का यत्न कीजिये। कम से कम ऐसे रूपवान् की प्रशंसा तो अवश्य करियेगा। ऐसा करोगे तो भी कल्याण है।

सुदर्शन चरित्र

एक दिन जंगल से घर आता, नदिया आई पूर।
पैरी तीर जाने को बालक, हुआ अति आतुर ॥ धन. ११ ॥
धर के ध्यान नवकार मंत्र का, कूद पड़ा जल धार।
सिर ठूंठ घुस गया उदर में, पीड़ा हुई अपार ॥ धन. १२ ॥
छोड़ा नहीं नवकार ध्यान को, तत्क्षण कर गया काल।
जिनदास घर नारी कंखे, जन्मा सुन्दरलाल ॥ धन. १३ ॥

[illegible] नदी की [illegible] देखने लगा। [illegible]

उपयुक्त समझा। उन्होंने मस्तक पर रखे गये खीरों में बुराई अनुभव नहीं की। हम बीच में कौन होते हैं जो खीरे रखने की बात को बुरा कहने लगें।

बीमार को शक्कर कड़वी लगे और किसी को नीम मीठा लगे इस से शक्कर कड़वी और नीम मीठा नहीं हो जाता। विकृति के कारण ऐसा होजाता है। इस भौतिक दृष्टान्त से आध्यात्मिक बात को समझने की कोशिश करिये। ये खीरे नहीं हैं मगर मेरी अनादि कालीन बिमारी को मिटाने के लिए दवा है। कोई भाई इस वर्णन से यह अर्थ न निकाल ले कि मरते हुए जीव को बचाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह अपना कर्ज उतार रहा है। जो स्वेच्छा पूर्वक कष्ट सहन करें उनमें और जो निरूपाय होकर जबरदस्ती कष्ट सहन करें उनमें बड़ा अन्तर है। पहली अवस्था में शुभ ध्यान रहता है दूसरी में आर्तरौद्र ध्यान।

सुभग को सेठ के यहां जन्म लेना था। बिना पूर्व शरीर का परित्याग किए नवीन शरीर धारण नहीं किया जा सकता। नवकार मंत्र के प्रभाव से ही वह शुभ जोगवाई वाले कुटुम्ब में जन्म धारण करता है। अतः मंत्र के प्रभाव के विषय में शंका लाने की जरूरत नहीं है। कभी तत्काल फल मिलता है और कभी देरी से। फल के साथ पूर्व संयोगों का भी सम्बन्ध रहता है।

यदि सुभग का आयुबल शेष होता तो उसके बचाव के लिए किसी देव द्वारा जहाज लेकर उपस्थित होना कोई बड़ी बात न थी। उसका आयु पूरा होचुका था अतः खीरी पलटने में वही निमित्त कारण बन गई। इस विषय में कोई एक ही बात पकड़ बैठना ठीक नहीं है। अनाथी मुनि ने तो यह निश्चय किया था कि रोग मिट जाय तो संयम ले लूं और सनत्कुमार मुनि ने रोग मिटाने के लिए उद्यत देव से कह दिया था कि रोग मत मिटाओ यह मित्र के समान कर्म नाश करने में मेरा सहायक है। इस विषय में क्या कहना, जहां जैसा प्रसंग होता है वहां वैसा करना पड़ता है।

आजकल बुद्धिवाद का जमाना है अतः लोग अजीब अजीब शङ्काएं करते हैं। कहते हैं राम ने बिना अपराध सीता को वन में छोड़ दिया, युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दांव पर रख दिया और अपने सामने वस्त्र हरण करने दिए तथा नल ने दमयन्ती को भीषण वन में छोड़ दिया। ये हैं महापुरुषों के चरित्र।

धर्म और रूप

श्री जिनराज सुपार्श्व पूरो आश हमारी ॥ प्रा० ॥

भक्त लोग प्रार्थना में सारे संसार का निर्वाह होने की संभावना देखते हैं। भग° वे सब जीवों का एक ध्येय मानते हैं। इस पर से प्रश्न होता है कि संसार के लोगों की मनोदशा अलग अलग है। सब जीव त्यागी नहीं है। 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार हर प्राणी की रुचि और बुद्धि भिन्न भिन्न है कोई धनका इच्छुक है कोई धर्मका कोई काम का इच्छुक है और कोई मोक्ष का। ऐसी अवस्था में एक ही प्रार्थना में सब का निर्वाह कैसे हो सकता है। सब की इच्छायें कैसे फली भूत होसकती हैं। ज्ञानी इसका उत्तर देते हैं कि परमात्मा की प्रार्थना से किसी भी वस्तु की कमी नहीं रह सकती। जब कल्प वृक्ष ही मिलजाय तब कौनसी इच्छा अपूर्ण रहजाय। चिन्ता मणि के मिलने पर क्या

निश्चय ही वह पानी के बरतन को लेना पसंद करेगा जब प्यास न हो तब इत्र को पसन्द करे यह दूसरी बात है। और पैसे हो तो खरीदा भी जा सकता है। मगर पियास के समय पानी ही पसंद किया जायगा। इत्र नहीं। किसी भूखे के सामने एक तरफ बाजरे की रोटी और दाल आये तथा दूसरी तरफ मिट्टी के बने केले आदि पदार्थ आये तो वह क्या लेना पसन्द करेगा। भूखा भोजन ही चाहेगा। उसी प्रकार श्रेणिक राजा उन मुनि के रूप के सामने दुनिया की सब वस्तुओं को तुच्छ मान रहा है। वह मान रहा है, इत्र और खिलौनों के समान अन्य सब तुच्छ है। अन्य रूप मेरी भूख प्यास नहीं मिटा सकते मगर मुनि का रूप मेरी मनोकामनाओं को पूरी करने वाला है। यह सोचकर ही वह कह रहा है अहो! वर्ण और अहो! रूप।

वर्ण और रूप में क्या अन्तर है? शरीर के सुन्दर आकार के अनुसार जिसका रंग सुन्दर होता है उसे सुवर्ण कहा जाता है। उदाहरण के लिए सोने को समझिये। सोने को सुवर्ण कहा जाता है। यदि केवल अच्छे वर्ण अर्थात् रंग के कारण ही सोने को सुवर्ण कहा जाय तो अच्छा वर्ण पीतल का भी है। उसे सुवर्ण क्यों नहीं कहा जाता सोने में वर्ण के साथ दूसरी विशेषता भी है। सोने के परमाणुओं में यह विशेषता है कि यदि सोने को हजारों वर्षों तक जमीन में गाड़ कर रखा जाय और फिर बाहर निकाल कर तोला जाय तो उसका वजन पूरा उतरेगा। उसका वजन कम न होगा तथा उस पर जंग या कीट न चढ़ेगा। यह विशेषता पीतल में नहीं है। पीतल पांच दस वर्षों में ही बिगड़ जाता है। उस पर कीट चढ़ जाता है। सोने में यही विशेषता है कि वह सड़ता नहीं है। दूसरे वह तौल में भी बहुत भारी होता है। तीसरे उसके बारीक से बारीक तार निकाले जा सकते हैं।

राजा श्रेणिक अन्य लोगों के वर्ण की इनके साथ तुलना करके फिर कहता है अहो! इनका वर्ण अनुपम है। दूसरों के वर्ण में मलिनता या देरी में कीट लग सकता है मगर इन मुनि के वर्ण में धब्बा लगने की कोई सम्भावना नहीं है। मुनि के वर्ण में और अन्य के वर्ण में वही भेद है जो पीतल और सोने के वर्ण में है। मुनि सोने के समान हैं। क्या मुनि [illegible] की तरह [illegible] पर जंग न लगेगा। क्या इनको [illegible] न लगेगा। इनका [illegible] यह है कि जो [illegible] है उन्हें [illegible] की तरह [illegible] है। सोना [illegible] है [illegible] है और [illegible] है। इनको न [illegible] है और न [illegible] सकता है। [illegible] बिगड़ [illegible] है

[illegible]

में अन्तर हो जाता है। रंग अच्छा हो किन्तु यदि कान नाक आंख आदि अंग सुन्दर न होंगे उस दशा में रंग अच्छा मालूम न होगा। रंग के साथ आकृति अच्छी हो तभी शोभा है। मुनि का रंग भी अच्छा था और आकृति भी सुन्दर।

एक आदमी की आंखें बड़ी और एक की छोटी होती है। नाप पर यह अन्तर नहीं मालूम होता। फिरभी बड़ी दिव्य प्याले जैसी आंखों वाले में और छोटी आंखो वाले में बड़ा अन्तर होता है। सीता के स्वयम्वर में बड़े बड़े राजा रंग बैठे हुए थे। किन्तु सीता ने राम ही को पसन्द किया। उसे राम की आंखों में कोई विशेषता नज़र आई थी। वह विशेषता थी उनकी अनुत्सुकता जब कि अन्य राजाओं की आखें सीता के लिए बड़ी उत्सुक हो रही थीं रामचन्द्र उदासीन-अनासक्त भाव से बैठे थे जब किसी राजा ने धनुष न उठाया और जनक ने यह कह दिया कि— 'वीर विहीन मही मैं जानी' तब लक्ष्मण ने राम से कहा कि आपकी उपस्थिति में पृथ्वी वीर विहीन कैसे कही जा रही है? अपकी आज्ञा हो तो धनुष क्या चीज़ है ब्रह्माण्ड भी उठा लू। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर भी धीर गभीर राम शान्ति पूर्वक बैठे रहे। और कहा किसी राजा को यह धनुष उठाना हो वह उठा सकता है। बादमें कोई यह न कहदे कि मेरी मुराद रह गई। जब किसी ने न उठाया तो राम ने धनुष्य उठाया और सीताका वरण किया रामकी आखों में बेपरवाही थी। उनमें कामुकता या विषय विकार का लालच न था। यही तो सच्चा रूप है यही सौन्दर्य है।

यदि आप लोग भी ऐसे बनो तो इन्द्र भी आपका गुलाम हो जायगा। आप इस रूप के गुलाम मत बनिये। स्वतंत्र बनने की कोशिश करिये। आपको स्वतंत्र बनाने के लिये ही व्याख्यान सुनाये जाते है अतः स्वतंत्र बनिये।

मैने एक पुस्तक में पढ़ा है कि 'राजा प्रजा आदि के अनेक जुल्म हैं। मगर सबसे बड़ा जुल्म स्नेहराग है। स्नेहराग रूप जुल्म के विरुद्ध विद्रोह करने वाला सुशास्त्र है। राजा में भी शक्ति नहीं है कि वह स्नेहराग का विद्रोह कर सके'।

वीतराग प्रणीत शास्त्र स्नेह राग का सामना कर सकते है शास्त्र किस प्रकार स्नेह राग का सामना करते हैं यह बात बहुत लम्बी है अत अभी उसका [illegible] न करके [illegible] हू कि राजा का स्नेह राग मुनि को देख कर बदल गया अहो! रूप तो इसी [illegible] के पद का अर्थ यथावसर किया जायगा।

छोड़ा नहीं नवकार ध्यान को, तत्क्षण कर गया काल।
जिनदास घर नारी कूंखे, जन्मा सुन्दर बाल। रे धन० ॥ ३ ॥

बालकों में जैसा विश्वास और दृढ़ता होती है वैसा विश्वास और दृढ़ता बड़ों में नहीं देखी जाती। किसी बालक से उसके माता पिता यदि यह कह दें कि छत पर से कूद पड़ो तो वह कूदने के लिये तय्यार हो जाय मगर बड़ा आदमी शायद ही तय्यार हो। किसी बड़े आदमी को वृक्ष से नदी में कूदने के विषय में अनेक तरह के संदेह हो सकते हैं, मगर सुभग को कोई सन्देह नहीं हुआ। वह तो यही सोच रहा था कि मैं परीक्षा दे रहा हूं। वह नदी में कूद पड़ा। नदी में कूदते वक्त भी उसकी वही उमंग थी जो पहले थी।

कई लोगों की हानि न हो तब तक दूसरी उमंग होती है और हानि की संभावना देखते ही उनकी उमंग भी बदल जाती है। ज्ञानी लोग अपनी दशा बालकों जैसी बना लेते हैं। किसी छः मास के बालक को कोई गाली दे या अपमान करे वह समझ न होने के कारण दुःख नहीं मानता। ज्ञानीजन समझ होने पर भी गाली और अपमान अनुभव करके दुःख नहीं मानते। वे बालक के समान निर्विकारी और राग द्वेष से रहित होते हैं। सुभग दृढ़ विश्वासी था अतः नवकार मंत्र बोलता हुआ नदी में कूद पड़ा।

आपके कान में दस बीस हजार की कीमत के मोती हों अथवा गले में कण्ठा हो, उस समय कोई बैल आपके पेट में सींग मार दे अथवा कोई छुरा मार दे तो क्या आप वेदना अनुभव करते हुए भी मोती या कंठे की कीमत कम मानेंगे? बुखार आजाने पर क्या बुखार मिटादेने के लिए कण्ठा दे सकते हैं? आप कहेंगे बुखार और कण्ठे का क्या सम्बन्ध है। सुभग ने वेदना का सम्बन्ध नवकार के साथ नहीं जोड़ा। उसे नवकार मंत्र पर किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ।

कई लोग धर्म से कृत्रिम प्रेम करते हैं। वे धन, मान, स्त्री, पुत्र आदि पर जितना प्रेम करते हैं उतना धर्म से नहीं करते। आपत्ति आजाने पर मोती आदि की कीमत कम नहीं मानने लगते मगर धर्म करते कदाचित् आपत्ति आगई तो सारा दोष धर्म को देने लग जाते हैं। ऐसी अवस्था में धर्म पर विश्वास कहाँ रहा? कष्ट के समय भी दृढ़ता रहे तो समझना चाहिए कि विश्वास है।

आपका शरीर अस्वस्थ हो, हीरा लेकर आप जौहरी के पास जाओ तब भी वह पूरी कीमत देगा। शरीर की अस्वस्थता का प्रभाव हीरे की कीमत पर नहीं पड़ता। उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार धर्म और संसार व्यवहार का कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म आत्मा के लिए है। लेकिन लोगों को धर्म पर विश्वास नहीं होता। ज्ञानियों को कितना भी कष्ट हो वे अपने सिद्धान्त से नहीं गिरते। प्रह्लाद यदि राम का नाम लेना त्याग देता तो उसे अपने पिता का राज्य मिलता। राम नाम न त्यागने से उसे अनेक कष्ट भोगने पड़े। क्या उसने कभी राम नाम को दोष दिया? उसने यही सोचा कि मैं राम नाम अपनी आत्मा के लिए जपता हूँ। शरीर का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

सुभग ने नवकार मंत्र का ध्यान नहीं छोड़ा और जाप करता हुआ काल कर गया। आप कहेंगे, क्या काल कर जाना धर्म का फल है? इसका उत्तर है, हाँ, काल कर जाना भी धर्म का फल है। आप लोग केवल कार्य को देखते हैं हम कारण सुधारने का उपदेश देते हैं। आप लोग जिन इलेक्ट्रों से प्रकाश ग्रहण करते हैं उसका पावर हाउस यदि बन्द हो जाय तो क्या प्रकाश मिल सकता है? क्या तब लगे हुए ग्लोब में लाइट आ सकती है। कदापि नहीं। तब ग्लोब (लट्टू) बड़ा रहा या पावर हाउस (बिजलीघर)? पावरहाउस में गन्दगी होती है और धड़ धड़ आवाज होती है किन्तु ग्लोब सुन्दर सजे हुए कमरों में लगा रहता है। परन्तु ग्लोब को प्रकाशदान पावरहाउस ही करता है। आप जिस सोने को बहुत पसन्द करते हैं, उस की खानों में कितनी भीड़ और धमाल रहती है। भीड़ और धमाल में से ही सोना मिलता है। आप लोग आराम से बैठ कर भोजन करते हैं किन्तु भोजन तय्यार होने में कितनी दिक्कतें और कष्ट सहने पड़ते हैं यह बात आपकी अपेक्षा बहिनें अधिक जानती हैं। आप लोग केवल बना बनाया कार्य देखते हैं, कारण नहीं देखते। ज्ञानी कारण का स्वरूप बताते हैं। सुदर्शन बनने का जो कार्य है, उसका कारण नवकार मंत्र का ध्यान न त्यागना है। सुदर्शन बनने में वह मूल कारण था जिसकी वजह से सुभग ने नवकार मंत्र को गाढ़ा पकड़ रखा। एक भक्त ने कहा है—

हरिनो मारग छे शूरा नो, नहि कायर नु काम जोने।
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वलती लेवुं नाम जोने॥

[illegible] है। [illegible] नहीं [illegible]। [illegible]
[illegible] है। [illegible]

देखा है। सेठने कहा, आज ही सुभग मरा है और आज ही यह शुभ स्वप्न आया है अतः तुम्हारी पुत्र विषयक मनोकामना पूरी होती हुई मालूम पड़ती है। सुभग बड़ा शूर ही था। जब मैंने नदी में से निकाल कर उसका शव जलाया तब मालूम हुआ कि वह सचमुच एक तेजस्वी बालक था। उसके मुख पर ग्लानि का कोई चिह्न न था। उसका चेहरा प्रसन्न था। जैसा वह सदा रहता था वैसा मृत्यु अवस्था में भी था। मेरा अनुमान है कि वही आप के गर्भ में अवतरा है।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' के अनुसार सेठानी को दोहद भी अच्छे अच्छे उत्पन्न हुए। सेठजी ने अपना खजाना दान के लिए खोल दिया। 'जब कल्पवृक्ष ही घर में आया है तब संग्रह क्यों कर रक्खूं' सेठजी ने निश्चय किया। साधारण लोग पुत्र होने पर दुगुने जोश से धन संचय किया करते हैं। सेठजी ने इससे विपरीत आचरण किया। आगे के भाव यथावसर कहे जायंगे।

राजकोट
२०—७—३६ का
व्याख्यान

किन्तु यदि इस साढ़े तीन मात्रा वाले ऊँकार की एक आध मात्रा भी हटा दी जाय अथवा इधर उधर करदी जाय तो अर्थ का अनर्थ हो जाय। सब मात्राओं के सम्बन्ध से ही पूरा अर्थ निकलता है।

जिस प्रकार ऊँ में ऊ और बिन्दी का परस्पर सम्बन्ध है उसी प्रकार जगत् और जगत् शिरोमणि परमात्मा में भी परस्पर सम्बन्ध है। जगत् शिरोमणि हमारे निकट से निकट है फिर भी वह दूर माना जाता है अतः दूर पड गया है। 'आत्मा से परमात्मा दूर है' इस मान्यता के कारण ही जीव अनादि काल से इस संसार चक्र में अरघट्ट चक्र वत् घूम रहा है। परमात्मा को समीप लाने के लिए जगत् के सब जीवों पर प्रेम भाव रखना चाहिए। उनको अपनी आत्मा के समान मानना और तदनुसार आचरण करना चाहिए। ऊँ पर जैसे बिन्दी शिरोमणि है उसी प्रकार जगत् पर परमात्मा शिरोमणि है। सब प्राणी मित्रवत् प्रिय मालूम होने लगें तब समझना चाहिए कि परमात्मा सन्निकट है। यह नहीं हो सकता कि परमात्मा को तो आदर दो और जिस जगत् का वह शिरोमणि है उसका अनादर करो। परमात्मा से प्रेम करना और जगत् से वैर रखना परस्पर विरोधी वर्ताव है। बिना जगत् जीवों के साथ प्रेम किये परमात्मा से प्रेम नहीं किया जा सकता। बिन्दी के बिना ऊ व्यर्थ है और ऊ के बिना बिन्दी व्यर्थ है। दोनों के मेल में सार्थकता है। तद्वत् परमात्मा और जगत् का मेल ही सार्थक है। परमात्मा को प्राप्त करने के लिए जगत् के प्राणियों की सेवा करनी चाहिए। सेवा करते हुए परमात्मा को सदा हृदय में रखना चाहिए।

शास्त्र चर्चा-

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर कहा---

अहो ? वएणो, अहो ! रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खन्ति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥
तस्स पाये उ वन्दिता, काऊण य पयाहिणं।
नाइदूर मणासन्ने, पजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥

यह सिद्धान्त का पाठ है। वर्ण और रूप के विषय में कहा जा चुका है। अब आर्य और सौम्यता का अर्थ किया जाता है। आर्य शब्द का श्रीपन्नवणा सूत्र में बहुत खुलासा किया गया है। आर्य अनेक प्रकार से हो सकता है। कोई कर्म से आर्य होता है, कोई क्षेत्र

किन्तु यदि इस साढ़े तीन मात्रा वाले ऊँकार की एक आध मात्रा भी हटा दी जाय अथवा इधर उधर करदी जाय तो अर्थ का अनर्थ हो जाय। सब मात्राओं के सम्बन्ध से ही पूरा अर्थ निकलता है।

जिस प्रकार ऊँ में ऊ और बिन्दी का परस्पर सम्बन्ध है उसी प्रकार जगत् और जगत् शिरोमणी परमात्मा में भी परस्पर सम्बन्ध है। जगत् शिरोमणि हमारे निकट से निकट है फिर भी वह दूर माना जाता है अतः दूर पड़ गया है। 'आत्मा से परमात्मा दूर है' इस मान्यता के कारण ही जीव अनादि काल से इस संसार चक्र में अरघट्ट यत्र वत् घूम रहा है। परमात्मा को समीप लाने के लिए जगत् के सब जीवों पर प्रेम भाव रखना चाहिए। उनको अपनी आत्मा के समान मानना और तदनुसार आचरण करना चाहिए। ऊँ पर जैसे बिन्दी शिरोमणि है उसी प्रकार जगत् पर परमात्मा शिरोमणी है। सब प्राणी मित्रवत् प्रिय मालूम होने लगें तब समझना चाहिए कि परमात्मा सन्निकट है। यह नहीं हो सकता कि परमात्मा को तो आदर दो और जिस जगत् का वह शिरोमणि है उसका अनादर करो। परमात्मा से प्रेम करना और जगत् से वैर रखना परस्पर विरोधी वर्ताव है। बिना जगत् जीवों के साथ प्रेम किये परमात्मा से प्रेम नहीं किया जा सकता। बिन्दी के बिना ऊ व्यर्थ है और ऊ के बिना बिन्दी व्यर्थ है। दोनों के मेल में सार्थकता है। तद्वत् परमात्मा और जगत् का मेल ही सार्थक है। परमात्मा को प्राप्त करने के लिए जगत् के प्राणियों की सेवा करनी चाहिए। सेवा करते हुए परमात्मा को सदा हृदय में रखना चाहिए।

शास्त्र चर्चा–

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर कहा—

अहो ? वण्णो, अहो ! रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खन्ति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥
तस्स पाए उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूर मणासन्ने, पंजली पडिपुच्छई ॥ ७ ॥

यह सिद्धान्त का पाठ है। [illegible]
[illegible]
[illegible]

से, कोई धर्म से और भाषा से भी। वे मुनि धर्म आर्य थे। जो वाणिज्य आदि आर्य कर्म करता है वह कर्म आर्य और जो आर्य धर्म का पालन करता है वह धर्म आर्य है। आज कल लोग अपने को आर्य कहते हैं, मगर आर्य का अर्थ जानलेना चाहिए।

'आरात् सकलहेय धर्मेभ्य इत्यार्यः'

जो त्यागने योग्य सब कामों को त्याग देता है वह आर्य है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कौन कौन से काम त्यागने योग्य हैं गृहस्थ के लिए बारह व्रत बताये गये हैं। व्रतों में जिन बातों को निषिद्ध माना गया है उनका सेवन न करना गृहस्थ का कर्त्तव्य है। मुनि के लिए पञ्चमहाव्रत बताये गये हैं। जो निरतिचार इनका पालन करता है वह साधु आर्य है जो साधु के लिए अयोग्य कार्य हैं उन्हें नहीं करता वह धर्म आर्य है। मुख्य रूपसे साधु के लिए दो बातों से सर्वथा दूर रहना अत्यावश्यक है। साधुता की यह पहली और मुख्य शर्त है कि कनक और कामिनी से दूर रहा जाय। जो साधु कनक और कामिनी से दूर रहता है वह धर्म आर्य है।

संसार के जितने झगड़े होते हैं वे खास कर कनक और कामिनी के निमित्त से ही होते हैं। इस सकल मुद्राप्रसार ने अर्थात् सोने चांदी और तांबे के सिक्कों ने कितना गज़ब ढा रखा है और अशान्ति फैला रखी है। आज लोग रात दिन मुद्रा के लिये प्रयत्न करते हैं। इसे पाकर भी आप सुखानुभव नहीं कर पाते। मुद्रा के लिये लाखों मनुष्यों का घात तक किया जाता है। इधर से गैस का प्रयोग करके उधर के आदमियों को मार डाला जाता है। और उधर से भी यही होता है। ऊपरी कारण कुछ भी बताये जाय मगर वास्तविक और भीतरी कारण धन का लोभ है। जब से संसार में सिक्के का आदर बढ़ा है तब से संसार की कैसी दशा हुई है यह बात इतिहासकारों ने बताई है। मैं अपने बचपन की बात कहता हूं कि उस वक्त मारवाड़ में लोग वस्तु देकर बदले में अनाज, सब्जी, नमक, मसाला आदि वस्तुएं लेते थे। वस्तुओं का आपस में विनिमय अदला बदला कर लिया जाता था। जिसके पास घी न होता वह गेहूं देकर घी लेता था। तब लोग बड़े सुखी थे। आज जैसी अशान्ति न थी। किन्तु जब से सिक्के की वृद्धि हुई है तब से लोग दुखी और अशान्ति में पड़े हैं। अब तो नोटों का प्रचार हो गया है अतः संग्रह करने में दिक्कत नहीं रही।

साधु लोग इन सब से दूर हैं। वे पैसे को अपने निकट नहीं आने देते। उनके [illegible]

इच्छित वस्तु मिल जाती है अतः लोग उनके पीछे पड़े हैं । कामिनी के संसर्ग से भी दूर रहते हैं । कामिनी के मोह में फंस जाने से भी भयंकर हानियाँ होती हैं । कामिनी के लिए भी जगत् में बड़ी मारामारी होती है । लोग पैसे देकर भी कामिनी को खरीदते हैं । साधु के लिए कनक और कामिनी सर्वथा वर्जनीय है ।

आज कल लोग साधु का नाम धराकर भी ज्ञान खातों के नाम से श्रावकों के पास रुपये रखवाते हैं और कहते हैं कि ज्ञान के प्रचार के लिए दलाली करने में क्या हर्ज है । वे श्रावकों से अपने मन मुताबिक खर्च करवाते हैं पैसे पर ममत्व भाव रखते हैं । श्रावक गोया उनके खजांची हुए । जब उनका आर्डर होता है कि अमुक पंडित या व्यक्ति को इतनी तनख्वाह दे दो, दे दी जाती है । पैसे किसी के पास रहें, पैसे के उपयोग के लिए आज्ञा देने वाले परिग्रह धारी गिने जायंगे । वे धर्म आर्य नहीं कहे जासकते ।

राजा श्रेणिक के मनोभाव बताने में गणधरों ने कमाल किया है श्रेणिक राजा कहता है अहो ! इन मुनि में कितनी सौम्यता है सौम्यताका अर्थ समझिये । चन्द्रमा के सामने नजर करके चाहे कितनी देर तक देखा जाय आंखों को नुकसान न होगा बल्कि लाभ होगा । उसमें गर्मी के पुद्गल है ही नहीं । उसे रस सागर भी कहते हैं । समस्त फलों में रस प्रदान करने वाला चन्द्र ही है । औषधीश भी इसका नाम है । सूर्य का नाम आताप है और चन्द्र का उद्योत । चन्द्रवत् ये मुनि भी सौम्य थे । उन्हें कोई देखता ही रहे उसकी आंखें अघाती न थी ।

आधुनिक वैज्ञानिक और खगोल शास्त्रियों का मत है कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशित नहीं होता है । सूर्य के प्रकाश से वह प्रकाशित होता है । किन्तु जैन शास्त्रों में सूर्य और चन्द्रमा दोनों को स्वप्रकाशी बताया गया है । सूर्य का नाम आताप और चन्द्र का उद्योत है । चन्द्र में शीतलता है और सूर्य में गर्मी । दोनों का सम्बन्ध नहीं है । यदि चन्द्र में सूर्य के कारण प्रकाश देने की शक्ति है तो दिन में चन्द्रमा प्रकाशित क्यों नहीं होता । जब कि निकट से सूर्य किरणें उस पर पड़ती है । एकादशी आदि तिथियों में जब चन्द्र सूर्य आमने सामने पड़ते हैं तब चन्द्रमा फीका क्यों रहता है । हीरे पर जब सूर्य की कीरणें पड़ती है तब वह विशेष प्रकाशित होता है उसी प्रकार दिन में चन्द्र पर सूर्य की कीरणें पड़ने पर उसे विशेष प्रकाशित होना चाहिए । अतः स्पष्ट है कि चन्द्र में सूर्य से प्रकाश नहीं आता । वह स्वयं प्रकाशित है ।

वे मुनि चन्द्र के समान सौम्य थे। आर्य और सौम्य शब्दों का परस्पर सम्बन्ध है। जो आर्य होगा वह सौम्य भी होगा और जो आर्य न होगा वह सौम्य भी नहीं हो सकता। जो अनार्य कार्यों से अपने को दूर रखता है वही सौम्य हो सकता है। जिस प्रकार वृक्ष के फल फूल और पत्ते देख कर उसकी जड़ का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार उन मुनि की सौम्यता देख कर राजा श्रेणिक ने उनको आर्य माना है। उनकी क्षमा शीलता, निर्लोभता और विषय विरहितता स्पष्ट मालूम हो रही थी।

आजकल विज्ञान ने बड़ी उन्नति की है। प्रकृति के अनेक रहस्यों का इसके द्वारा उद्घाटन हुआ है। नजानी बातें भी आज जानने में आई है। इसकी सहायता से शास्त्र की बातें समझने की कोशिश की जाय तो कितना लाभ हो। शास्त्र पर का अविश्वास भी कम हो जाय। कम से कम आप लोग अनुमान प्रमाण को अवश्य समझ लिजिये। इसके द्वारा आपके बहुत से संशय छिन्न हो जायंगे। पुनर्भव की ही बात लीजिये। अनेक लोगों को मरकर वापस जन्म लेने के विषय में संदेह है। आप अनुमान प्रमाण से पुनर्जन्म पर विश्वास कर सकते हैं। किसी व्यक्ति को देखते ही उसके प्रति स्नेह भाव जागृत हो जाता है और किसी को देखते ही वैरभाव या घृणा भाव पैदा होता है। इसका क्या कारण है। मानना होगा कि इसमें पूर्व जन्म के संस्कार कारणी भूत है। पहले भव में जिस व्यक्ति के साथ हमारा सुसम्बन्ध रहा उसको उसको वर्तमान में देखकर प्रेमभाव जागृत होता है और जिसके साथ पूर्वभव में अनिच्छित सम्बन्ध रहा था उसे अभी देख कर वैर या घृणा पैदा होती है। लैला और मजनू का पूर्वभव का स्नेह सम्बन्ध रहा होगा तभी विशेष रूप सौन्दर्य न होने पर भी दोनों में एक दूसरे के प्रति गहरा आकर्षण था। श्री सूय गडांग सूत्र में पुनर्जन्म मानने के लिए कई प्रमाण दिये गये हैं उनमें एक, बालक द्वारा जन्मते ही बिना किसी के सिखाये स्तनपान करने लगजाना भी प्रबल प्रमाण है। बालक का सर्व प्रथम स्तनपान करने लगना पूर्व जन्म का अभ्यास साबित करता है।

आप कह सकते है कि पूर्व जन्म मानने से हमें क्या लाभ है और न मानने से क्या हानि है। इसका उत्तर यह है कि पूर्वजन्म मानने से अनेक लाभ है। जबतक आत्मा को यह विश्वास न हो जाय कि मैं अमर हूं तब तक पुरुषार्थ करने के लिए उसमें उत्साह नहीं आसकता। वह कर्तव्य का ज्ञान भी तभी ठीक तरह करसकता है। उत्साह लाने या कर्तव्य का ज्ञान करने के लिए ही आत्मा को अमर मानना ठीक नहीं है मगर वह अमर है

अतः उसे अमर मानना चाहिए। आत्मा कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मैं न रहूँगा यदि न रहने का विचार भी करता है तो केवल शरीर के न रहने का करता है। उस वक्त भी विचार करने वाला आत्मा साक्षी भूत रहता ही है।

आत्मा अमर है। जैसे वस्त्र बदले जाते हैं वैसे शरीर भी बदले जाते हैं। आप पोशाक और शरीर को न देखिये मगर उनमें रहे हुए आत्मा का खयाल कीजिये। आत्मा के सुधार में सब सुधार समाजाता है। आज शरीर के सामने आत्मा को भुलाया जा रहा है। दारू मांस का सेवन और वर कन्या विक्रय इसी बात से बढ़े हैं। जिसका वर्तमान सुधर जाता है उसका भविष्य सुधरा हुआ ही है। अर्थात् जिसका यह लोक सुधर गया उसका परलोक भी सुधर गया समझना चाहिए।

इस विषय में पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एक बात कहा करते थे। एक बुढ़िया का घर स्मशान के मार्ग पर था। उसके घर के सामने होकर ही मुर्दे ले जाये जाते थे। वह बुढ़िया धार्मिक खयालात की थी। अतः धर्म वार्ता सुनने के लिए कोई न कोई उसके पास बैठा ही रहता था। जब कोई मुर्दा ले जाया जाता देखती तब यह कहती, यह जीव स्वर्ग को गया है। कभी कहती यह नरक में गया है। उसके पास वाले पूछते, माता! तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि अमुक स्वर्ग को गया है या नरक में। बुढ़िया उत्तर देती, भाई! मैंने देखा तो नहीं किन्तु अनुमान करती हूं कि वह स्वर्ग अथवा नरक में गया है। मुर्दे को ले जाने वाले लोगों की आपसी बातें सुनकर मैं अनुमान लगाती हूं। जब लोग यह कहते जाते हैं कि अहो! यह कितना पर उपकारी और भलाआदमी था, मैं उसके स्वर्ग जाने की कल्पना करती हूं। ऐसा उपकारी आदमी स्वर्ग न जायगा तो कौन जायगा।

लोग जिस बात की निन्दा किया करते हैं वह न करना और जिसकी प्रशंसा किया करते हैं, वह करना यही तो स्वर्ग का मार्ग है। रामदास ने कहा—

" जनी निन्दंति सर्व सोडून दयावा,
जनी वन्दति सर्व भावे करावा "।

अर्थात् लोग जिस काम की निन्दा करें वह छोड़ देना और जिसकी प्रशंसा करें वह सर्व भाव से करना चाहिए। यही स्वर्ग का मार्ग है।

जिस व्यक्ति के लिए यह कहा जाता हो कि अच्छा हुआ जो मरगया। इसके कारण अनेक लोग त्रास पाते थे। यह क्या मरा है अ.म बुराई मरगई है। ऐसा आदमी नरक में जाता है।

अब एक बात और इस विषय में जाननी रह गई है। दुनिया में निन्दा और स्तुती भी स्वार्थवश की जा सकती है। जिसका जिससे मतलब सिद्ध होता है वह उसकी प्रशंसा करता है और दूसरा उसकी निन्दा। किसकी निन्दा स्तुति पर खयाल करके स्वर्ग नरक की कल्पना की जाय? श्रेष्ठ और समझदार लोग जिस काम की निन्दा करें वह त्याज्य है और जिसकी प्रशंसा करें वह कर्त्तव्य रूप है। यदि सच्चा आर्य बनना है तो अच्छे काम करियेगा। संवत्सरी नजदीक आ रही है अतः क्षमा मांगने और क्षमा देने योग्य अपनी आत्मा को तय्यार करिये। ऐसा न हो कि जिसके साथ आपका वैर भाव है उसको छोड़ कर सारे जगत् के जीवों को खमालो। ऐसी क्षमा मांगने का कुछ अर्थ नहीं है। परमात्मा जगत् शिरोमणि है अतः उसके नीचे के प्राणियों के साथ प्रेम भाव रखिये। इसके बिना परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकता। यह काम वही कर सकता है जो अनुमान प्रमाण से अथवा स्वात्मप्रमाण से आत्मा को अजर अमर मानता है।

सुदर्शन चरित्र—

जिनदास सेठ ने अनुमान प्रमाण से ही यह बात जानी थी कि मेरी स्त्री की कोख में सुभग आया है। उसने आते हुए साक्षात् न देखा था मगर सुभग के शव पर प्रसन्नता के चिह्न देखकर अनुमान से जाना था। आज प्राचीन तत्वों पर विचार नहीं किया जाता बल्कि उनकी अवहेलना की जाती है। यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि शास्त्रों में कैसी महत्त्वपूर्ण बातें भरी पड़ी हैं।

जब स्त्री गर्भवती होती है तब उसके दो हृदय होते हैं। एक खुद का और दूसरा बालक का। दो हृदय होने के कारण उसकी इच्छा को दोहद कहा जाता है। उसकी इच्छा गर्भ की इच्छा मानी जाती है। जैसा जीव गर्भ में होता है वैसा ही दोहद भी होता है। दोहद के अच्छे बुरे होने का अन्दाजा लगाया जा सकता है। श्रेणिक को कष्ट देने वाला उस का पुत्र कोणिक जब गर्भ में था तब उसकी माता को अपने पति श्रेणिक के कलेजे का मांस खाने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। दुर्योधन जब गर्भ में था, उसकी माता को कौरव वंश के लोगों के कलेजे खाने की इच्छा हुई थी। गर्भ में जैसा बालक होता है

वैसा दोहद होता है। दोहद पर से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि गर्भस्थ बालक कैसा होगा। बालक के भूत और भविष्य का पता दोहद से लग सकता है। आज कल सांसारिक प्रपञ्चों का बाजार गरमागरम अधिक होता है अत. स्वप्न याद नहीं रहा करते रात्री में नदी के बहाव का शब्द जोर से सुनाई देता है इसका अर्थ यह नहीं होता कि रात में नदी जोर का शब्द करती है। वह सदा समान रूप से बहती है। किन्तु उस वक्त वातावरण में शान्ति होने से शब्द स्पष्ट सुनाई देता है। स्वप्न के विषय में भी यही बात है। शास्त्र में सब बातें है। यदि उनको ठीक तरह से समझने की कोशिश की जाय तो ज्ञान होगा कि उनमें भूत भविष्य का ज्ञान करने का भी तरीका छिपा हुआ है।

शास्त्र में केवल तात्विक बातें ही नहीं है किन्तु व्यवहारोपयोगी सामग्री भी पड़ी है। मेघकुमार के अध्ययन में गर्भवती स्त्री के कर्तव्य बताये गये है। बालक को उत्पन्न करना यह हिंसा है मगर उत्पन्न करने के बाद उसका पालन पोषण करना दया का काम है।

आज कल संतान वृद्धि के कारण लोग संतति नियमन करना चाहते हैं। यह अच्छी बात है। किन्तु दु:ख है कि संतति नियमन का वास्तविक मार्ग ब्रह्मचर्य का पालन करना है उसे छोड़ कर लोग कृत्रिम उपायों को काम में लाते है। अपने विषय भोग को तो छोड़ना नहीं चाहते मगर संतति निरोध चाहते हैं। यह प्रशस्त मार्ग नहीं है। इसमें दया भाव भी नहीं है। संतान उत्पन्न होने की क्रिया ही न करना निरोध का ठीक रास्ता है।

सन्तानोत्पत्ति कब न करना चाहिये और कब विषय भोग से दूर रहना चाहिये इसका भी ध्यान रखना चाहिये। जब घर में खाने के लिये न हो अथवा उत्पन्न होने वाले बाल बच्चों की ठीक प्रकार से परवरिश करने की सामर्थ्य न हो तब सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करना पाप है। बहुतसे लोग आगे पीछे का ख्याल किये बिना संतान वृद्धि करते जाते है। वे अपने बच्चों के शरीर की नींव जमाने के लिये न उन्हे दूध पिला सकते हैं और न कोई पौष्टिक खुराक ही दे सकते हैं बच्चों को साफ सुथरा रखना अच्छे स्वच्छ वस्त्र पहिनाना, उनके लिये पठन पाठन का समुचित प्रबन्ध करना आदि बातें वे सोच ही नहीं सकते ऐसे लोग अपने कर्तव्य से च्युत होते है।

बहुत निर्बल होगें तो वह भाव धर्म कर सकेगी गर्भवती के लिए भी यही बात लागू होती है। अनशन रूप तपस्या के सिवा अन्य धर्म करणी करने के लिए उसे छूट है। कहने का मतलब यह है कि गर्भ या बच्चे पर दया करना पहला धर्म है। दया ही के लिए तो सब धर्म करणी है। मूल का विच्छेद करके पत्तों को नहीं सींचा जाता।

एक पंथ ऐसा भी है जो अनुकम्पा करने में पाप मानता है। उस पंथ की अनुयायिनी एक स्त्री ने अपने समक्ष अपने नादान बच्चे को अफीम खाने से न रोका और कहने लगी कि मैं सामायिक में बैठी हू, मेरे गुरु का मुझे उपदेश है कि सामायिक में अनुकम्पा करना वर्जित है। वह बालक मर गया। मरने के बाद वह रोने लगी। 'जब चिड़ियन खेती चुग डारी, फिर पछताये का होवत है'। भगवान महावीर का यह मत नहीं है कि किसी पर अनुकम्पा करना पाप है। भगवान् का तो यह फरमाना है कि यदि ब्रह्मचर्य का पालन न कर सको तो तुम्हारी भूल के कारण जो जिम्मेवारी आपड़े उसे निभाओ। अर्थात संतान पर करुणा करो। छोटे वृक्ष को जिस प्रकार सुधारा जा सकता है उस प्रकार बड़े को नहीं सुधारा जा सकता। भगवान् फरमाते हैं कि गर्भस्थ बालक में माता जैसा चाहे वैसा संस्कार डाल सकती है। अपने आचरण द्वारा डाल सकती है यह बात मैं निमित्त कारण की कह रहा हूं। उपादान कारण की बात अलग है। उपादान के साथ निमित्त आवश्यक है। सूयगडांग सूत्र में उपादान के साथ सहकारी कारणों को आवश्यक बताया है। मिट्टी में घड़ा है मगर कुम्भकार बनाये तब वह बनता है। सुवर्ण में जेवर हैं मगर सोनी बनाये तब है। बच्चे में सब कुछ बनने की शक्ति है मगर माता माता गुरु आदि का योग मिले तब यह शक्ति प्रादुर्भूत होती है।

गर्भ के समय की स्थिति बड़ी नाजुक होती है। मा और बच्चे का पूरा पुण्य होता है तब सुख पूर्वक डीलीवरी (बालक का जन्म) होता है। आजकल मेटरनिटीहोम (प्रसूति गृह) चले हैं मगर पहले माता पिता प्रसूति सम्बन्धी सब बातों से परिचित होते थे। जो पिता प्रसूति समय में सहायक नहीं हो सकता वह पिता होने योग्य नहीं है।

अर्हदासी की कौख में सुख पूर्वक बालक बढ़ रहा है अब आगे क्या होता है यह बात यथावसर कही जायगी।

राजकोट
२३—७—३६ का
व्याख्यान
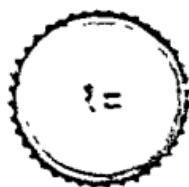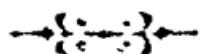
सच्ची क्षमा

"श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये रे ....।"

मान लीजिये एक सुनार के हाथ में सोने का डला है। यहां सोना वाच्यार्थ है। लेकिन सोनार कहता है कि मैं इस सोने के डले के जेवर बना दूंगा। सुनार का यह कहना लक्ष्यार्थ है। सोने में जेवर रूप बनने की योग्यता है। सोनार द्वारा जेवर बनाने की बात सोचना लक्ष्यार्थ है। कुंभार और स्त्री मिट्टी का ढेला तथा आटे का पिंड लेकर बैठे हैं। मिट्टी का ढेला और आटे का पिंड वाच्यार्थ हैं। किन्तु कुंभार ने घड़े बनाने और स्त्री ने फुलके बनाने का मन में संकल्प कर रखा है यह संकल्प लक्ष्यार्थ है।

आत्मा अभी वाच्यार्थ में है जब यह परमात्मा बन जायगा तब लक्ष्यार्थ हो जायगा। सोने के आभूषण, मिट्टी के बर्तन आटे के फुलके बन जाना लक्ष्यार्थ सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा से परमात्मा बन जाना लक्ष्यार्थ सिद्ध है। हम अभी वाच्यार्थ में परमात्मा हैं लक्ष्यार्थ में नहीं। आत्मा में परमात्मा बनने की योग्यता व शक्ति है यह बात ज्ञानीजन अपने अनुभव से कहते हैं। अतः आत्मा को अपना लक्ष्यार्थ न भूलना चाहिए। यदि स्त्री आटे का पिंड लेकर बैठी ही रहे तो लोग उसे मूर्ख बतायेंगे। किन्तु बुद्धिमान होने का दावा करने वाले मनुष्य अनादि काल से आत्मा को लिए बैठे हैं, परमात्मा बनने की क्रिया नहीं करते, यह कितने आश्चर्य की बात है।

आजकल के कामों में आप लोग वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ को नहीं भूले हैं। परमार्थ के काम में ही भूल हो रही है। अतः इस बात पर गौर करना चाहिए। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध वही है जो मिट्टी और घड़े का, सोने और उसके बने आभूषणों का, आटे के पिंड और उससे बनी रोटी का है। आत्मा और परमात्मा के बीच में जो अन्तर हो रहा है उसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। यह दूरी है, आत्मा का परमात्मा से विमुख होना। आत्मा की दृष्टि परमात्मा की ओर नहीं है किन्तु विषय वासना की ओर है। इस अन्तर को दूर करने से आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

यह बात अब उदाहरण द्वारा समझाता हूँ। [illegible] वाच्यार्थ के अनुसार ही [illegible] दर्शन कर रहा है। वह देख रहा है कि ये मुनि जैन हैं इनका लक्ष्यार्थ भी देखा [illegible] यह देखकर वह मुनि के [illegible] [illegible] है। [illegible] है वह [illegible] बनने की

लकड़ी आदि से बनी पाहिली को पाहिली नहीं कहा किन्तु पाहिली बनाने वाले के उपयोग को पाहिली कहा है। श्रेणिक मुनि के लक्ष्यार्थ का ध्यान करके स्वयं वैसा बन रहा है। मुनि को देखकर वह कहता है—

> अहो ! वण्णो अहो ! रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ।
> अहो खंति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥
> तस्स पाये उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
> नाइदूर मणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥

अर्थ—अहा ! इनका वर्ण, अहा ! इनका रूप, अहा ! इन आर्य की सौम्यता, अहो इनकी क्षमा, अहो इनकी मुक्ति, अहो इनकी भोगों में असंगतता। 'अहो' शब्द परम आश्चर्य का द्योतक है। इन मुनि के वर्ण-रूप आदि को देखकर राजा बड़ा हैरान था। ६। इन मुनि के पैरों में वन्दन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके, न अति दूर न अति संनिकट बैठ कर हाथ जोड़ कर प्रश्न पूछता है।

बहुत से व्यक्ति मोह या ममता से वर्णन करने में मर्यादा का अतिरेक कर जाते हैं। अतिशयोक्ति से काम लेते हैं। कवि लोगों ने स्त्री के रूप सौन्दर्य का वर्णन करने में अतिशयोक्ति का बहुत उपयोग किया है। यहां तक कह डाला है कि बेचारा चन्द्रमा स्त्री के मुख की क्या समता कर सकता है। अपना मुख छिपाने के लिए ही वह दिन को कहीं छिपा रहता है और रात होने पर प्रकट होता है, मोहान्धता के वशीभूत होकर वस्तुओं को देखने से उनका वास्तविक दर्शन नहीं हो सकता।

राजा श्रेणिक बिना किसी प्रकार की लाग लपेट के सीधे [illegible] इन मुनि के रूप सौन्दर्य और इनके गुणों का वर्णन कर रहा है। अतिशयोक्ति का लवलेश भी नहीं है। वह सोच रहा है वस्तु को किसी अपनी [illegible] भिन्न भिन्न कर सकती है [illegible] नहीं कर सकती। इन मुनि का सौन्दर्य [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सौम्यता के समान क्षमा का भी राजा श्रेणिक ने बहुत बखान किया। मुनि के चेहरे की शान्त मुद्रा देख कर राजाने उनको अति क्षमाशील कहा है। आज कल लोग क्षमा का अर्थ डरपोक पन करते हैं। यह उनकी भूल है। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' क्षमा बहादुर का भूषण है। कायर की क्षमा दीनता गिनी जायगी। एक उदाहरण से यह बात समझाना चाहता हूं।

तीन आदमी साथ साथ बाजार जा रहे थे। बाजार में एक बदमाश ने उन तीनों से कहा अरे दुष्टों! बेवकूफों कहां जा रहे हो? तीनों में से एक ने मन में यह सोचकर चुप्पी साधली कि यह आदमी बड़ा तगड़ा है इससे मैं मुकाबला न कर सकूंगा। दूसरे ने उसका सामना किया और डबल गालियां दे कर उसे दबा दिया। तीसरे ने सोचा ऐसे ना समझ आदमी की बातों का उत्तर देना ठीक नहीं है। इसने मुझे दुष्ट और बेवकूफ कहा है सो कहीं ये दोनों दुर्गुण मेरे में तो नहीं हैं'। वह बदला लेने की कल्पना भी नहीं करता। वह तो अपने हृदय को टटोलता है।

पहिले आदमी द्वारा गालीदेने वाले से बदला न लेना कायरता है। क्योंकि उसके मन में गाली देने की और बदला लेने की भावना विद्यमान है मगर सामने वाले से डर कर अपनी कमजोरी के कारण गाली नहीं देता है। ऐसे आदमी कभी २ यों भी कह देते हैं होगा जी, दुष्टों के साथ कौन दुष्टता करे। कीचड़ में पत्थर डालने से अपने ही छींटे उड़ेंगे। दर असल ऐसे आदमियों की क्षमा के पीछे कायरता निवास करती है अतः यह क्षमा क्षमा नहीं किन्तु कायरता गिनी जायगी। मुकाबला करने की शक्ति न होने से मुकाबला नहीं किया गया है। शक्ति होती तो अवश्य बदला लिया जाता।

दूसरे आदमी ने व्यावहारिक दृष्टि से अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। मगर इस प्रकार कर्त्तव्य पालन में कभी कभी बड़ा अनर्थ पैदा हो सकता है। गाली देने वाले को प्रति गाली देने से हाथा पाई की नौबत पहुँच जाती है। हाथा पाई से दण्डा दण्डी और शस्त्रा शस्त्री तक बात पहुंच जाती है फिर मुकदमा बाजी होती है और वर्षों तक वैर भाव बढ़ता जाता है।

तीसरे आदमी की क्षमा सचमुच क्षमा है। गाली देने वाले ने अपना शस्त्र फेंका जिसको इस व्यक्ति ने पहले सहन किया और शस्त्र फेंकने वाले के सम्बन्ध में किंचित् भी [illegible] किए बिना अपना हृदय [illegible] [illegible] [illegible] कि मुझ में दुष्टता और बेवकूफी

राजा श्रेणिक ने मुनि के साथ जिस प्रकार अपना सम्बन्ध जोड़ लिया था उसी प्रकार आप लोग भी साधु संतों से अपना सम्बन्ध जोड़िये । आप रेल का निर्माण नहीं कर सकते मगर उसमें बैठते जरूर हो । आप स्वयं क्षमाशील और निर्लोभी नहीं बन सकते तो कम से कम इन गुणों के धारक साधुओं से सम्बन्ध तो अवश्य जोड़िये। पावर केवल एंजिन में होता है मगर अन्य डिब्बों के आंकड़े एंजिन से जुड़े रहते हैं अतः वे भी उसके पीछे पीछे खिंचे चले जाते हैं। और निर्दिष्ट स्टेशन तक पहुँच जाते हैं। आप भी महात्मा लोगों के आंकड़े से अपना आंकड़ा जोड़ दोगे तो कल्याण हो जायगा । अनाथी मुनि के साथ सम्बन्ध करने के कारण श्रेणिक ने तीर्थंकर गोत्र बांध लिया था ।

राजा श्रेणिक क्षत्रिय था । वह प्रसन्न होकर कोरी वाहवाही करने वाला न था। जब उसने मुनि के गुण जान लिए तब वह उन्हें नमन करने के लिए उद्यत हो गया। वास्तव में गुण जाने बिना नमन करने का कोई अर्थ नहीं है। केवल हाड़ ही न देखने चाहिए गुण भी देखने चाहिए। जिन में गुण न हो उनको नमन करना अनुचित है । राजा ने पहले गुण जाने । जानकर गुणों की कद्र करने के लिए नमन करने का विचार किया किसी बात को जान लेना मात्र ही कर्त्तव्य की इति श्री नहीं हो जाती । भारत की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के लिये कहा जाता है कि पहले उसमें केवल लेक्चर बाजी ही होती थी । जब यह अनुभव किया गया कि केवल भाषण देदेना कोई वकत नहीं रखता, रचनात्मक कार्य प्रारंभ किये बिना केवल भाषण देना गुनगुनाना है ।

गुनगुनाना दो प्रकार का होता है । एक साधारण मक्खी गुनगुनाती है, दूसरी शहद की मक्खी । साधारण मक्खी गुनगुनाकर इधर उधर से गन्दगी लाकर भोजन पर फैलाती है और रोग उत्पन्न करती है । मगर शहद की मक्खी का गुनगुनाना इससे भिन्न है वह फूलों पर जाकर गुनगुनाती है उन से रस ग्रहण करती है । एक गुनगुन रोग फैलाता है, दूसरा शहद पैदा करता है । वैज्ञानिकों का मत है कि शहद के बराबर कोई मिठाई नहीं है। वैद्यों का भी यही मत है । गुनगुनाना भी तो ऐसा गुनगुनाना कि जिससे कुछ निर्माण हो ।

भाषण आदि देकर दूसरों के दोष प्रदर्शन भी किए जा सकते हैं और गुण प्रदर्शन भी । पहिली मक्खी के समान रोग फैलाने वाले मत बनो किन्तु शहद की मक्खी के समान गुण प्रचारक बनो । केवल निन्दक या आलोचक ही रहोगे तो कहीं के न रहोगे ।

न खुदा ही मिला न विशाले सनम, न इधर के रहे न उधर के सनम ।

'तस्स गब्भस्स अणुकम्पट्ठयाए'

अर्थात् धारिणी रानी ने उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए ऐसा किया, वैसा किया इत्यादि। शास्त्र का ऐसा वचन होते हुए भी यह कहना कि आपेवाली बाई को पानी पिलाने में भी तेले का दण्ड आता है महज अज्ञानता सूचित करता है।

धनवान् लोगों ने अपने बर्ताव से गरीबों के लिए अनेक अड़चनें उत्पन्न करदी हैं। विवाह शादी में हजारों रुपये खर्च करके धनवान् लोग लक्ष्मी का मजा लेते हैं। उनकी देखादेखी गरीब लोग भी अपने घर बार बेचकर ऐसा करते हैं। अब धनवानों ने अपनी बीबियों को प्रसूति गृह में भेजना शुरु किया है तो गरीब उनकी नकल क्यों न करेंगे। प्रसूतिगृह में भक्ष्य अभक्ष्य का ख्याल नहीं रखा जाता। शराब तक दिया जाता है। हमारे शास्त्रों में प्रसव सम्बन्धी सब बातें बताई हुई हैं। उन को सीखकर आचरण में लाना हर एक माता पिता का कर्त्तव्य है। यदि कोई पुरुष इन बातों को नहीं जानता है तो उसे तब तक शादी करने और सन्तानोत्पत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है।

शास्त्र में बालक के जन्म समय के लिए ऐसा पाठ आया है—

आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया

अर्थात्—स्वस्थ माता ने स्वस्थ बालक को जन्म दिया। बालक भी आनन्द पूर्वक जन्मा और माता भी कुशल रही। ऐसा तब हो सकता है जब माता पिता प्रसव सम्बन्धी सब बातों का ज्ञान रखते हों।

सेठ जिनदास के घर भी आनन्द पूर्वक पुत्र का जन्म हुआ। सेठ ने पुत्र जन्म की खुशी में बहुत उत्सव किया। आजकल के उत्सवों में और सेठ द्वारा मनाये गये उत्सव में बड़ा अन्तर है। आजकल उत्सव इस प्रकार मनाये जाते हैं जिससे गरीबों को कठिनाई पैदा हो जाती है। उत्सवों में गरीबों की सहायता पहुँचाने के बजाय उनपर बहुत बुरा असर पड़ता है। अपने गरीब भाइयों को सहायता पहुँचाना सच्चा सहधर्मी वात्सल्य है। एक आध बार लड्डू बाँट देने से कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। सहधर्मी वात्सल्य के अनेक मार्ग हैं। विवेक की जरूरत है। [illegible] सहधर्मी है, [illegible] है। [illegible] सहधर्मी वात्सल्य हो सकता है।

गरीब मनुष्य और प्राणियों को सुख पहुँचे। जो अपने सुख का ही खयाल रखता है वह परमात्मा को प्रिय नहीं होता किन्तु जो अपने सुख दुःखों की परवाह किये बिना दूसरों के सुख के लिए हरदम तय्यार रहता है वह पुण्यवान् है और वही प्रभु का प्यारा भी है। धनवत्ता पुण्यवान् का चिह्न नहीं है। धन तो वैश्या और बेइमानों के पास भी होता है।

जिनदास सबको सुख पहुँचाता था अतः सब का प्रिय पात्र था। आज पुत्र जन्म के कारण उसके यहां आनन्द छा रहा है। आगे का भाव आगे देखा जायगा।

राजकोट
२३—७—३१ का
व्याख्यान

सच्ची जय

" जय जय जिन त्रिभुवन धनी ....प्रा० "

अल्पज्ञ समझदार लोग समझते हैं कि प्रार्थना कहीं बाहर से आकर की जाती है अथवा बाहर के शब्द कड़ियों में जोड़े जाते हैं। किन्तु समझदार लोग कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है यों तो दुनिया में असली और नकली दोनों प्रकार की चीजें होती हैं। और आजकल काल प्रभाव से असली वस्तुओं का महत्व हमारी बुद्धि में घटता जा रहा है और नकली का बढ़ता जा रहा है। फिर भी जो विशेषता असली में होती है वह नकली में नहीं हो सकती। आजकल सोना, चांदी, हीरा, मोती आदि नकली बन मिलते हैं। असली असली ही रहेगा और नकली नकली ही।

प्रार्थना भी दो प्रकार की होती है। एक असली दूसरी नकली। जो प्रार्थना हृदय से की जाय वह असली और जो केवल बाहर और होठों से की जाय, जिसके पीछे

जगह से घूमना शुरू किया वहीं आकर पूरा करना चाहिए। आवर्तन और प्रदक्षिणा में अन्तर है। आवर्तन का मतलब हाथ जोड़कर हाथों को एक कान से शुरू करके दूसरे कान तक लेजाना एक आवर्तन है। मुनि वन्दन के पाठ में 'पयाहिणं' पदका अर्थ प्रदक्षिणा करता है।

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने वाली हिन्दु बालिका अपने प्राण देकर भी पति का साथ न छोड़ेगी। उस समय की गई प्रतिज्ञा से भी विमुख न होगी। निष्ठावान् पत्नी प्रदक्षिणा के बाद पति के सिवा समस्त पुरुषों को पिता और भाई के समान मानेगी। निष्ठावान् पुरुष भी इसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करता है।

यह लौकिक व्यवहार की बात हुई। यहां तो लोकोत्तर मुनि की प्रदक्षिणा की बात चल रही है। राजा ने मुनि की प्रदक्षिणा करके उनके गुणों को अपना किया है। उनको अपना गुरु मानकर हाथ जोड़कर न अति समीप और न अति दूर बैठ गया। बहुत समीप बैठने से अपने अंग प्रत्यंगों से आसातना होने की सम्भावना रहती है और बहुत दूर बैठने से उनके द्वारा कही हुई बातें नहीं सुनाई देतीं। इस प्रकार बैठकर राजा ने मुनि से प्रश्न किया।

आजकल भी प्रश्न पूछने का रिवाज तो विद्यमान है मगर प्रश्न पूछने के साथ जितने विनय की आवश्यकता है उतना नहीं दिखाई देता। विनय रहित प्रश्न पूछना, वैसा है, जैसा पपीहा पानी के लिए पियू पियू की रट लगाता रहे किन्तु पानी बरसने पर अपना मुख बन्द करले। नियम भाव से गुरु का उत्तर शिष्य हृदय में धारण नहीं कर सकता। विनय पूर्वक बैठकर राजा श्रेणिक ने यह प्रश्न किया—

तरुणो सि अज्जो पव्वइओ, भोग कालम्मि संजया।
उवट्ठिओ सिसामण्णे, एयमट्ठं सुणेमिता॥

राजा स्वयं अनेक कला-कौशल, विज्ञान-दर्शन आदि तत्त्वों का जानकार होने से उनके सम्बन्ध में प्रश्न पूछ सकता था। किन्तु ऐसा न करके एक सादा प्रश्न किया। प्रश्न पूछने के पहले मुनि से इजाजत लेली कि आपकी आज्ञा होतो एक प्रश्न पूछूं। जब मुनि ने कहा कि तुम जो पूछना चाहो, पूछ सकते हो तब राजाने पूछा कि हे मुने! मैं यह जानना

संसार में दो प्रकार के लोग हैं। एक तो वस्तु का सदुपयोग करने वाले और दूसरे दुरुपयोग करने वाले। कुछ लोग इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर यह विचार करते हैं कि दूसरी योनियों में जो सुख सुलभ न था वह इस जन्म में मिला है अतः खूब भोग भोगने चाहिए। पर ज्ञानी कहते हैं कि भोग भोगने से मनुष्य शरीर का सदुपयोग नहीं होता। भोग भोगने से पाशविक जीवन उन्नत बनाता है। कदाचित् आप पशुओं से ज्यादा भोग भोग सको तो बड़े पशु कहला सकते हो मनुष्यता के लिए भोगों का त्याग आवश्यक है। भोग तो मनुष्य और पशुओं में समान हैं।

आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्य मेतत्य शुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें पशु और मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती हैं। यदि पशु से मनुष्य में कोई विशेषता है तो वह धर्म की है। मनुष्य धर्म का आचरण कर सकता है अर्थात् आत्मा से परमात्मा बनने का प्रयत्न कर सकता है। पशु नहीं कर सकता। यदि मनुष्य धर्म न करे तो वह पशुतुल्य है। फिर उसके और पशुओं के कामों में कोई फर्क नहीं रह जाता। आप चाहे सौ सौ रुपये का माल खाते हो और ऐसा विचारते हो कि हमारा [illegible] का एक कण होता है, [illegible], किन्तु यह तो पशु भी खा सकता है यदि उसे खिलाया जाय। न मिलने की अवस्था में तो मनुष्य भी [illegible] नहीं खा सकता। आप भले ही बढ़िया कपड़े पहिनो और रंग महलों में निवास करो [illegible] पशु को ऐसा कर सकते हैं कहीं कि उनसे ऐसा करवाया जाय किसी राजा ने कुत्ते कुत्ती का विवाह कराया और उसमें लाखों रुपये खर्च कर दिए। क्या इससे कुत्ता कुत्ती मनुष्य बन गये? कदापि नहीं। यदि विचार किया जाय तो आप लोग पशुओं का झूठा खाते ही हैं। [illegible] है। [illegible] का झूठा है। [illegible]। अतः आहार, निद्रा, भय, और मैथुन की दृष्टि से मनुष्य में पशुओं से विशेषता नहीं पाई जाती।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] के गुणों का [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सफलता मानो । राजा श्रेणिक ने मनुष्य जीवन को भोग भोगने के लिए मानकर ही मुनि के सामने प्रश्न रखा है मुनि क्या उत्तर देते हैं इसका विचार फिर किया जायगा ।

सुदर्शन चरित्र—

> पंच धाय दुलरावे लाल को, पाले विविध प्रकार ।
> चन्द्र कला सम बढ़े कुँवरजी, सुन्दर अति सुकुमार ॥धन०॥१५॥

यह पुण्यवान् की कथा है । लोग पुण्यवान् कहलाने में महत्त्व समझते हैं किन्तु वास्तव में कौन पुण्यवान् है और किस प्रकार पुण्यवान् हुआ जाता है यह बात इस चरित्र से समझिये ।

जिनदास सेठ ने सबकी सम्मति से बालक का नाम सुदर्शन रख लिया । पांच धायों की संरक्षकता में बालक बढ़ने लगा । भीतर पांच धायें संभाल रखती थीं और बाहर अठारह देश की दासियां बालक को शिक्षा देती थीं ।

यह प्रश्न होता है कि एक बालक को संभालने के लिए इतनी दासियों की क्या आवश्यकता थी ? इसका समाधान यह है कि पांच धाईयों के जिम्मे पांच काम थे । एक दूध पिलाती, दूसरी स्नानादि कराती, तीसरी शरीर मंडन करती, चौथी गोद में लेकर खेलाती और पांचवीं खिलौनों से खेलाती तथा अंगुली पकड़ कर चलाती फिराती थी । एक धाय यह सब काम कर सकती है किन्तु सार्वत्रिक विकास के लिए पांच धायों की जरूरत थी । दूध पिलाने के लिए गाय भैंस आदि की अपेक्षा धाय विशेष उपयोगी गिनी गई है क्यों कि दूध में भी बच्चों के संस्कार घड़ने की शक्ति रही हुई है । पशु दूध की अपेक्षा स्त्री का दूध उत्तम है । 'जैसा आहार वैसा उद्गार' के अनुसार दूध पिलाने में भी खास विचार रखना चाहिए ।

किसी भाई के मन में यह शंका हो कि दूध भी गाय के अंगों में से निकलता है और मांस भी उसके अंगों से है, अतः मांस खाने में क्या हर्ज है, तो उसे नीचे लिखी बात ध्यान में लेनी चाहिए ।

दूध निकालने में कष्ट नहीं होता किन्तु यदि न निकाला जाय तो कष्ट होता है । इसके विपरीत [illegible]

वेदना होती है। दूध प्रेम के आकर्षण से निकलता है जबकि मांस क्रोध के वशीभूत होकर। जब बच्चा स्तनपान करता है तब माता को प्रेम होता है और दूध आने लगता है। यदि कोई बच्चा स्तन काट खाय तो माता को गुस्सा आता है। जो गाय हमें दूध पिलाती है उसी का मांस खाना हरामखोरी है। क्रोध में मरे हुए पशु का मांस खाने से खाने वाले में क्रोध के संस्कार आये बिना नहीं रह सकते। मांस खाने से शैतानियत आती है। दूध उत्तम आहार में गिना जाता है।

गोद में खेलाने वाली धायका भी खयाल करना चाहिए। वृक्ष का पौधा जैसी भूमि में रहता है वह वैसा ही होता है उसी प्रकार बच्चा भी जैसे संस्कार वाली धाय की गोद में खेलेगा उसके गुणावगुण को ग्रहण करेगा। नहलाने धुलाने और शरीर मंडन का भी बालक के विकास में पूरा स्थान है। खिलौनों का भी बालक पर असर पड़ता है। एक जगह देखा गया कि एक बाई रबर का पुतला लेकर खेल रही थी। उसे प्यार कर रही थी। उसका रंग भूरा था। इससे मालूम होता है कि भूरा बालक सबको पसंद पड़ता है। काले रंग का कम पसंद पड़ता है। आजकल विदेशी खिलौनों ने बहुत नुकसान पहुंचाया है। खिलौने ऐसे हो जिनसे स्पर्श करने से स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचे।

धाय बालक को अंगुली पकड़ कर उसे चलना सिखती है। वह बच्चे की चाल अपनी चाल मिलाती है। इस प्रकार धीरे धीरे चला कर उसके शरीर में ताकत पैदा करती है। चाल में भी शिक्षा की आवश्यकता है। यदि आपको लिखने की शिक्षा मिली हो तभी आप सुन्दर अक्षर अक्षर और भाव व्यक्त कर सकते हैं। जिसको जिस काम की शिक्षा मिली हो वही वह काम सुन्दरता से कर सकता है।

बच्चे का विकास धीरे धीरे होता है। जल्दी करने से कुछ नहीं होता बहुत से लोग अपने छोटे बच्चों को जल्दी जल्दी ज्ञानी बना देना चाहते हैं और उन पर उनकी शक्ति से ज्यादा वजन डाल देते हैं। जिससे बच्चों की बुद्धि विकसित होने के बजाय कुण्ठित हो जाती है। इसी प्रकार बच्चों में रहे हुए इस जन्म या पूर्व जन्म के कुसंस्कारों को मिटाने के लिए भी बड़े धैर्य की जरूरत है। मारने पीटने या अन्य गन्दे तरीकों से यह काम नहीं हो सकता। माता पिताओं की उतावल से बच्चे की उन्नति में बाधा पड़ती है। उतावल करने से स्कूलों और कालेजों में बच्चों के चरित्र कैसे बिगड़ जाते हैं यह बात जानने वाले ही जानते हैं।

पांच धाय माताओं के अलावा अठारह देश की अठारह दासियां भी रखी हुई थीं जो सुदर्शन को विविध शिक्षाएं देती थीं। भिन्न भिन्न देश की भाषा का ज्ञान कराना, बातचीत के सिलसिले में ही जुदा जुदा देशों की भाषा बालक सीख सकता था और उनके पहनाव व रीति रिवाजों का ज्ञान भी कर लेता था। आजकल तो बेचारे बच्चे अंग्रेजी के हिज्जे याद करते करते परेशान हो जाते हैं। सात समुद्र पार की विदेशी भाषा का बालक की इस नाजुक आयु में कितना बुरा असर होता है। समझ में नहीं आता कि क्यों छोटे बच्चों पर यह वजन डाला जाता है।

जब सुदर्शन आठ वर्ष का हुआ तब पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया। आजकल पांच वर्ष का बच्चा हो गया कि भेजा पाठशाला को। जब सुदर्शन को अनेक बातों का ज्ञान हो गया तब पाठशाला को भेजा गया था। जब सुदर्शन आठ वर्ष का हो गया तब लोग उसका शरीर और स्वभाव देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। उसके रंग ढंग से लोगों ने अनुमान लगा लिया कि यह होनहार बालक है। आगे क्या होता है सो यथावसर बतलाया जायगा।

राजकोट
२६—७—३६ का
व्याख्यान

卐

मानव धर्म

"श्रेयांस जिनन्द सुमर रे..........प्रा०"

आज मुझे मानव धर्म पर बोलना है। किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है तथा प्रार्थना करना भी मानव धर्म है अतः उस [illegible] में कुछ कहता हूं।

इस प्रार्थना में कहा है कि हे आत्मन्! उठ जाग। परमात्मा का स्मरण कर। आज मैं हिन्दी भाषा में ही बोलूंगा। मुझे मालूम है कि बाइयों को मेरी हिन्दी भाषा समझ-

करने में दिक्कत होगी किन्तु उन्हें उत्साह रखकर समझने की कोशिश करनी चाहिये। हिन्दी देश की राष्ट्र भाषा है। बीस करोड़ व्यक्ति इसे बोलते हैं मैं आपकी भाषा अपनाता हूं अतः आप भी मेरी भाषा अपनाइयें।

परमात्मा की प्रार्थना क्यों करनी चाहिए और वह कहां से आती है यह बताने के लिए मैं उदाहरण देता हूं। मान लीजिये एक बच्चे के हाथ में गन्ना है, जिसे आप शेरड़ी कहते हैं। दूसरे बच्चे के हाथ में शक्कर है। शक्कर वाला बच्चा कहने लगा देख मेरी शक्कर कितनी मीठी है। तब गन्ने वाला लड़का बोला। क्या शक्कर की बड़ाई मारता है। तेरी शक्कर आई कहां से है! मेरे गन्ने में से ही तेरी शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने में शक्कर ही शक्कर है।

दोनों बच्चों की बात चीत से यह मालूम होजाता है कि गन्ने में शक्कर ही शक्कर है, यह बात और निखालस शक्कर दोनों ठीक है। गन्ने में से शक्कर निकालने के लिए अनेक क्रियाएं करनी पड़ती है तब निखालस शक्कर बनती है। गन्ने में दूसरी चीजें मिली रहती हैं मगर शक्कर शुद्ध है। शक्कर और गन्ने के मिठास में अन्तर है।

जिस प्रकार गन्ने में शक्कर व्याप्त है उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना भी आत्मा में व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि गन्ने में जिस प्रकार मिठास के उपरान्त कचरा होता है उसी प्रकार आत्मा में प्रार्थना के साथ साथ बहुत सारा कचरा भरा हुआ है गन्ने में से जैसे रस अलग निकाल लिया जाता है और कचरा अलग फेंक दिया जाता है उसी प्रकार यदि पुरुषार्थ किया जाय तो आत्मा का मेल-कचरा भी दूर हो सकता है और तब वह निखालस प्रार्थनामय बन जायगा। महात्मा लोगों ने आत्मा में व्याप्त प्रार्थना को पदों द्वारा हमारे सामने रखी है मगर वह निकली आत्मा में से ही है। यदि अनन्य भाव से प्रार्थना की जाय तो ऐसा अनुभव होने लगेगा कि किसी दूसरे से प्रार्थना नहीं की जा रही है किन्तु अपने भीतर विराजमान शुद्ध निरञ्जन आत्मदेव से ही प्रार्थना की जा रही है। वह भी बाहर के शब्दों द्वारा नहीं किन्तु भीतर से प्रस्फुटित हुए शुद्ध परिणामों से की जा रही है।

यदि कोई व्यक्ति यह विचार कर निराश हो जाय कि जिनके भीतर से प्रार्थना प्रस्फुटित होती है वे ही लोग प्रार्थना कर सकते हैं, मैं क्या करूं, तो यह उसकी भूल है। महात्माओं के द्वारा रचित पदों कड़ियों का बार बार उच्चारण करने से कभी तुम्हारे भीतर भी प्रार्थना निकलने लगेगी। प्रयत्न से सब कुछ साध्य है। प्रयत्न से ही गन्ने में से शक्कर

निकलती जाती है। जो कुछ होगा वह करने से ही होगा। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कुछ न होगा। जब तक भीतर से प्रार्थना न निकले तब तक संतों की बनाई हुई कड़ियों को ही गाया करो। कुछ न कुछ रस उनमें भी मिल ही जायगा।

मानव-धर्म

आज युवकों की ओर से मुझे सूचना मिली है कि मैं मानव धर्म पर व्याख्यान दूं। वैसे तो मैं प्रतिदिन व्याख्यान सुनाता हूं वे सब मानव धर्म के सम्बन्ध में ही हैं किन्तु आज इस विषय पर खास बोलना है। मैं इस विषय पर ठीक बोल सकूंगा या नहीं इसका निर्णय आप श्रोताओं पर अवलम्बित है। मगर यह बात निश्चित है कि हम भाड़े के टट्टू नहीं हैं कि जो व्याख्यान देकर ही रह जाय। हमारे व्याख्यान को कोई माने या न माने मगर हम स्वयं प्राण देकर भी उसकी बातों का पालन करेंगे।

मानव धर्म पर कुछ बोलने के पूर्व हम यह जानलें कि मानव किसे कहते हैं। जिसके नाक, कान, आंख, हाथ, पैर आदि हों तथा जिसकी शक्ल आप हम जैसी हो वह मानव गिना जाय तो बहुत से पशुओं को भी मानव मानना पड़ेगा। बन्दर की शक्ल मानव जैसी होती है। बल्कि एक पूछ विशेष होती है। कई जल के प्राणी भी मानवाकृति के होते हैं। क्या उनको मानव कहा जाय? कदापि नहीं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार मनन शील को मनु कहते हैं और मनु की सन्तान को मानव। जिसे धर्म अधर्म, पुण्य पाप, कर्तव्य अकर्तव्य और हिता हित का विवेक हो वह मनु है। मनु की सन्तति मानव है। ज्ञानवान् की सन्तान को मानव कहा गया है। कहने का मतलब यह है कि केवल तुम स्वयं ही ज्ञानवान् नहीं हो किन्तु तुम्हारे पूर्वज भी ज्ञानवान् थे। भगवान् ऋषभदेव की सन्तान में मनु नाम के कुल गुरु भी थे। मनुस्मृति के रचयिता भी मनु थे। मुसलमान भी आदम को मानते हैं और आदम की सन्तान को इन्सान कहते हैं। आप अपने पूर्वजों को मत भूल जाइये। उनके संस्कार आप में पराक्रम से आ रहे हैं इसी कारण आप आज इस स्थिति में हैं। वेदान्त और उपनिषदों में मानव का महत्व बताया है। मनुष्य को अग्नि भी कहा गया है। अन्न और पानी उसके पेट में जाकर भस्म हो जाते हैं। पेट में जाकर अन्न पानी किस प्रकार भस्म होते हैं और किस प्रकार उनका [illegible] और [illegible] होता है यह [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] मनुष्य एक [illegible] है। [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और

डाल कर उसको कोरी रख देते हैं। बिना धर्म के न तो सुधार ही हो सकता है और न जीवन ही बन सकता है।

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में उपक्रम के छः भेद बताये गये हैं १ नाम उपक्रम २ स्थापना उपक्रम ३ द्रव्य उपक्रम ४ क्षेत्र उपक्रम ५ काल उपक्रम ६ भव उपक्रम। सब उपक्रमों के वर्णन का अभी समय नहीं है अतः सम्बन्धित उपक्रमों के विषय में कुछ कहता हूं। भूत और भविष्य को छोड़कर जो वर्तमान में बरता है उसका उपक्रम, द्रव्य उपक्रम है। इसके सचित्त और अचित्त दो भेद हैं। सचित्त उपक्रम के द्विपद चतुष्पद और अपद में तीन भेद हैं। द्विपद में मनुष्य, चतुष्पद में पशु और अपद में वृक्षादिकों का समावेश होता है। इन सब का उपक्रम होता है। उपक्रम भी दो प्रकार से होता है। १ वस्तु विनाश और २ परिक्रम। वस्तु को भ्रष्ट करना यह वस्तु विनाश है और वस्तु को नाना प्रकार से सुधारना संस्कारित करना परिक्रम है। मनुष्य का शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास करना उसका परिक्रम करना है। जैसे मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता रही हुई है किन्तु जब तक कुंभकार क्रिया द्वारा उसकी शक्ति को विकसित न करे, घड़ा नहीं बन सकता। मिट्टी का उपक्रम किये बिना उसका घड़ा नहीं बन सकता। बिना उपक्रम के कोई मिट्टी में खीचड़ी नहीं पका सकता हंडिया मिट्टी की ही बनती है मगर उपक्रम करने से बनती है। बिना उपक्रम के मिट्टी का ढेला, ढेला ही बना रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य शरीर भी एक प्रकार से मिट्टी के ढेले के समान ही है मगर उसका परिक्रम किया जाय तो यह ढेला ऐसे चमत्कार करके दिखा सकता है जिन्हें देखकर दुनिया चकित रह जाती है।

शक्ल या इन्द्रियों की बनावट के कारण ही कोई मानव नहीं कहा जा सकता। मानव तो तब कहा जायगा जब धर्म की बातों का उसमें संस्कार या परिश्रम किया जायगा। आज परिश्रम को विकास कहा जाता है। जिस व्यक्ति का जिस विषय में विकास हो वह उसी ओर प्रगति कर सकता है। जो पढ़ा लिखा है वह थोड़ी देर में बहुत कुछ लिख सकता है। मगर बे पढ़ा व्यक्ति चार हरुफ लिखने में भी बहुत समय लगा देगा। उपक्रम ही इस अन्तर का कारण है। जिसने बचपन में लिखने का खूब अभ्यास किया है वह शीघ्र लिख सकता है। बड़ी उम्र में तो ऐसा मालूम होता है मानो हमारी कलम में सरस्वती उतर आई है मगर विचार करना चाहिए कि वर्तमान की इस सफलता के पीछे भूतकाल का कितना परिश्रम रहा हुआ है। किसी किसान से लिखने के लिए कहा जाय तो वह नहीं लिख

सकेगा क्योंकि बचपन में उसका इस विषय का परिश्रम नहीं हुआ है। यदि आप सदृश पढ़े लिखे लोगों से खेती करने की बात कही जाय तो आप इसमें सफल नहीं हो सकते क्योंकि इस विषय में आप का उपक्रम नहीं हुआ है। किन्तु यह न भूल जाइये कि आपका जीवन निर्वाह खेती के उपक्रम से ही होता है। कला कौशल के विकास को शास्त्रकार द्रव्य उपक्रम कहते हैं।

एक व्यक्ति में सम्पूर्ण उपक्रम नहीं पाया जाता। यदि व्यक्ति का सार्वत्रिक उपक्रम या विकास हो गया तब तो उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर न रह जायगा। व्यक्ति को निराश होने की जरूरत नहीं है उसे विकास के लिए हर क्षण प्रयत्न करते रहना चाहिए।

शास्त्र में मेघकुमार राजकुमार था। उसकी गर्भ से लेकर आठ वर्ष तक की उम्र में होने वाली सब क्रियाएं बराबर हुई थी। फिर उसे कलाचार्य को सौंप दिया। कलाचार्य के पास उसने लिखने से लेकर शकुन पर्यन्त की ७२ कलाएं सीखीं। इन बहत्तर कलाओं में मानव जीवन की आवश्यकता सम्बन्धी सम्पूर्ण बातें आजाती हैं।

पहले जमाने में हर आदमी बहत्तर कलाओं में प्रवीण होता था। उसे सूत्रतः अर्थतः और कर्मतः इन कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। सूत्रतः का मतलब है पहले इन कलाओं का सामान्य अर्थ के साथ मुखपाठ कराया जाता था। बाद में उनका विवेचन समझाया जाता था। पुस्तकों द्वारा या मौखिक हर कला का सिद्धान्त बताया जाता था यह अर्थतः शिक्षण हुआ। तत्पश्चात् प्रयोग करके, परीक्षण करके उनका अभ्यास कराया जाता था, यह कर्मतः शिक्षा हुई।

आजकल कालेजों की पढ़ाई का ढंग ही निराला है। बड़ी उम्र तक छात्र थ्योरी (सिद्धान्त) का अध्ययन करते रहते हैं मगर उस थ्योरी को प्रेक्टीस (अभ्यास) में उतारने की कोशिश नहीं की जाती। कोरी किताबी शिक्षा से क्या लाभ जो अमल में न लाई जाय। कालेजों में कृषि शास्त्र का अध्ययन करके खेती करने में विद्यार्थी शरम का अनुभव करे अथवा अपने नाजुक स्वास्थ्य के कारण ऐसा न कर सके तो इस अध्ययन का क्या फायदा हुआ। जब तक पढ़ाई को क्रिया का रूप न दिया जाय तब तक वह बेकार है।

अतः मुझे अपने युवक भाइयों से कहना है कि आप लोग केवल पुस्तकीय विद्या पढ़कर के ही न रह जाना अपितु उनमें सीखे हुए ज्ञान को व्यवहार में लाने की पूरी

कोशिश करना। आज भारत गारत इसी लिए हो रहा है कि उसके युवक थोड़ा पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करके ही अभिमान में फूल जाते हैं। पुस्तकों के ज्ञान से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं मगर कोरे ज्ञान से उनका व उनके कुटुम्ब का तथा देश का पेट नहीं भर सकता। ज्ञान के अनुसार क्रिया करना आवश्यक है।

सुना है एक अमरिकन व्यक्ति भारत में सिविल (ऊँची नौकरी) करके पेंशन याफ्ता होकर अपने देश को लौट गया। वहां एक दिन उन का एक भारतीय मित्र भ्रमण करता हुआ उनके घर पर आ निकला, भारतीय ने उनकी स्त्री से पूछा कि साहब कहां गये हैं। स्त्री ने जवाब दिया, बैठिये अभी आये जाते हैं। थोड़ी देर बाद एक सज्जन जांघिया पहिने हुए, हाथ में कुदाला लिए हुए और मिट्टी में सने हुए आये जिन्हें पहिचान कर भारतीय मित्र मन में बड़ा अचरज करने लगा कि एक बहुत बड़े पद पर कार्य कर चुकने वाला व्यक्ति, ऐसी शक्ल बनाकर खेत में काम करता है। वह साहब से मिलने के लिए आगे बढ़ा मगर साहब बिना कुछ बोले ही सीधा स्नान घर में चला गया। स्नान करके कपड़े पहिन कर अपने बैठक के कमरे में आकर भारतीय दोस्त को बुलाकर साहब बहादुर बातें करने लगे। बातचीत के दौरान में भारतीय ने पूछा कि कहां तो आपका वह रुआब और पोजिशन जो भारत में थी और कहां आज आप की यह दशा जो खेती करने पर उतर आये। साहब ने कहा ऐ मेरे दोस्त! तुम्हारे भारत देश में यही तो कमी है कि तुम लोग थोड़ासा ऊँचा पद पाकर फूल कर कुप्पा हो जाते हो। फिर उस मान मर्यादा के निर्वाह के लिए जीवन पर्यन्त कष्ट में पड़े रहते हो और शक्ति उपरान्त खर्च उठाते रहते हो। तुम्हारी देखा देखी हम लोगों को भी भारत में उसी झूठे पोजिशन में रहना पड़ता है। मेरे पास धन की कोई कमी नहीं मगर हम लोग अपने काम को नहीं छोड़ते। जो धन्धा मेरे पूर्वज वंशपरम्परा से करते आ रहे हैं उसे क्यों छोड़ा जाय।

मित्रों! अमेरिका के धनवानों की तो यह बात है और भारत के धनवान् और शिक्षित लोगों की यह दशा है कि वे दूसरों के लिए बोझा रूप बन जाते हैं। भारत का सौभाग्य है कि अभी तक भारतीय किसान इस सभ्यता तक नहीं पहुँचे हैं कि खेती बाड़ी छोड़ कर देश और समाज का जीवन भारभूत न करें। नहीं तो भारत को बड़ी कठिनाई में पड़ना पड़ता। आज देश भर में कुछ किसान ऐसे हैं, जो पढ़े लिखे हैं और वकालत करने में मजा समझते हैं, अन्न कम करते हैं। मगर सब किसान ऐसे नहीं हैं।

शक्ति कथित परिक्रम का खयाल कीजिये। ऐसा न हो कि पढ़े लिखे और बे पढ़ों के बीच एक मजबूत खाई तय्यार हो जाय! नये और पुराने लोगों के बीच मेल सधता रहे, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। नहीं तो जीवन निर्वाह कठिन हो जायगा। और काम न चल सकेगा।

शास्त्र में कही हुई बहत्तर कलाएं द्रव्य उपकर्म में हैं। कोई भाई यह कहे कि महाराज हमें द्रव्य उपक्रम से क्या मतलब है. हमें भाव उपकम बताइये जिससे हम हमारी आत्मा का कल्याण करें। उसको मेरा कहना है कि द्रव्योन्नति के बिना भावोन्नति नहीं होती। जिसका शरीर और मन कमजोर है वह क्या भावोन्नति करेगा! उस पर धर्म की शिक्षा का क्या असर होगा! आज शरीर का परिक्रम न किया जाने के कारण शरीर सशक्त नहीं है: अहमदनगर में राममूर्ति पहलवान ने कहा था कि मुझे कैसा ही दुबला और कमजोर पांच वर्ष का बच्चा सौंप दिया जाय मैं उसको बीसवें वर्ष में पहुंचते हुए राम मूर्ति बना दूंगा। परिक्रम से यह शक्य है। भाव परिक्रम के लिए द्रव्य परिक्रम आवश्यक है। यही कारण है कि शास्त्रों में संहनन (शरीर की मजबूती) को भी मोक्ष में निमित्त कारण माना है।

यह द्रव्य धर्म की बात हुई। भाव धर्म के लिए द्रव्य धर्म आवश्यक है। किन्तु केवल द्रव्य धर्म हो और भाव न हो तो वह द्रव्य धर्म आत्मा के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। शास्त्र में कहा है—

'सव्वे कला धम्म कला जिणइ'

अर्थात्—धर्म कला सब कलाओं से बढ़कर है। आप कहेंगे कि जिन्दगी निभाने का सब काम द्रव्य धर्म से चल जाता है फिर भाव धर्म की क्या आवश्यकता है। भाव धर्म के बिना कौनसा काम अड़ जाता है। इसका उत्तर यह है कि जिनके लिए द्रव्य धर्म का पालन किया जाता है उसी को अगर न जाना तो द्रव्य धर्म का पालन व्यर्थ हो जायगा। आप जो कुछ करते हैं वह आत्मा ही के लिए तो करते हैं अब आत्मा को ही न पहिचाना तो जीवन धारण ही व्यर्थ हो जायगा। भाव धर्म से आत्मा की पहिचान होती है और वह अपना निजस्व प्राप्त करता है।

किसी भाई को आत्मा किसे कहते हैं यह भी न मालूम हो अतः बता देता हूं कि आपका यह शरीर कार्य है या कारण। शरीर कार्य है। इसका कारण पंचभूत है।

घड़ी कार्य है और उसके कल पुर्जे कारण हैं। यहां तक समझने में तो भूल नहीं होती है। भूल इसके आगे होती है। आगे समझिये कि यदि यह शरीर कार्य है तो इसका कर्त्ता कौन है। किसने पंच भूतों के साथ मेल साधा है। कई भाई कहते हैं कि जैसे पुर्जों के सम्बद्ध होने से घड़ी चलती है। उसी प्रकार पांच भूतों के मेल से शरीर चलता है। आत्मा नामक छठे तत्व की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है. । हमारा यह कहना है कि आखिर घड़ी के पुर्जे भी किसी के मिलाये बिना अपने आप नहीं मिल गये, मिलाने से मिले हैं। उसी प्रकार पंच भूतों का मेल अपने आप नहीं हो जाता। मेल कराने के लिए किसी कर्त्ता की आवश्यकता है। जो कर्त्ता है वही आत्मा है। ईंट और चूना पृथक् पृथक् रखे पड़े हैं। जब कोई कर्त्ता—कारीगर उनको मिलाता है तब भवन बन कर खड़ा होता है। आप शरीर और पंच भूतों को तो माने और शरीर के कर्त्ता आत्मा को न माने यह कैसे हो सकता है। आपको मानना पड़ेगा।

मैंने मेरी कारेली नामक एक पाश्चात्य विदुषी के लेख का अनुवाद पढ़ा था। उसमें उसने बताया कि संसार के पदार्थों का रूपान्तर होता है, एकान्त विनाश नहीं होता। मोमबत्ती के जल जाने पर यह खयाल किया जाता है कि वह नष्ट हो गई किन्तु दर असल वह नष्ट नहीं हुई, उसका रूपान्तर हो गया, यदि जलती मोमबत्ती के पास दो वैज्ञानिक यंत्र रख दिए जायें तो उसके सब परमाणु एकत्रित हो जायंगे। जिनको मिलाकर फिर मोमबत्ती बनाई जा सकती है। पानी सूख जाने पर भी लोग खयाल करते हैं कि पानी नष्ट हो गया, मगर पानी नष्ट नहीं होता। पानी दो हवाओं के संयोग से बनता है। सूखा हुआ पानी हवा में मिल जाता है। फिर दो हवाओं के संयोग से पानी बन जाता है। घड़े को फोड़ा जाय तो उसकी ठीकरियां हो जायंगी। ठीकरियां फोड़ी जायंगी तो बारीक रेत हो जायगी किन्तु पदार्थ बिल्कुल विनष्ट न होगा। जब कि संसार की ये तुच्छ वस्तुएँ भी बिल्कुल विनष्ट नहीं होतीं तब आत्मा जो कि सब का मेल साधने वाला है, कैसे नष्ट हो सकता है।

इस आत्मा को जिस धर्म की आवश्यकता है वही मानव धर्म है। मैं मानव धर्म को जैन, बौद्ध, वेदान्ती, ख्रीस्ती, इस्लाम आदि साम्प्रदायिक अर्थ में न लेजाकर, उसके सामान्य सर्व साधारण रूप को बताना चाहता हूं। सामान्य रूप को कोई इन्कार नहीं कर सकता सब धर्मों ने सामान्य रूप को स्वीकार किया है। जिस मजहब में धर्म की सर्व सामान्य बातें नहीं है वह एक पक्षी माना जायगा। पहले इस्लाम की बात कहता हूं। कुरान में कहा है—

ला तो अजे योखल कुल्ला

अप्प समं मनिज्ज छप्पि कायं

अर्थात्—प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान मानो। जब प्राणी मात्र को आत्मवत् मान लिया जाय तब किसके साथ वैर विरोध किया जाय।

उदयपुर (मेवाड़) में एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया कि जब आत्मा अमर है, अविनाशी है किसी के मारने से मरता नहीं है, फिर किसी मारने या सताने से पाप कैसे हो सकता है। उत्तर में मैंने कहा था कि आत्मा अविनाशी है इसी लिए पाप लगता है और उसका फल भोगना पड़ता है। यदि आत्मा नाशवान् हो तब तो कोई झगड़ा ही न रहे। *मरने वाला और मारने वाला दोनों खत्म हो गये फिर क्या झगड़ा रहा। व्यवहार में भी मरे* हुए पर दावा नहीं होता, दावा जिन्दे पर होता है। आत्मा सदा कायम रहता है। शरीर रूप पोशाक बदल जाती है। आत्मा ने शरीर धन कुटुम्ब आदि को अपना मान रखा है। उसके द्वारा प्रिय माने हुए पदार्थों को उससे जुदा करना यही पाप है, हिंसा है जो सबको अपनी आत्मा के समान समझेगा 'तत्र कः मोहः कः शोकः' उसको क्या मोह और क्या शोक हो सकता है। यह सर्व सामान्य मानव धर्म है।

ठाणांग सूत्र में दस धर्मों का वर्णन है। इन धर्मों पर मैंने लम्बे व्याख्यान दिए हैं, जो पुस्तकाकार में प्रकट हुए हैं, और जिनको लोगों ने खूब पसन्द किया है। इसी प्रकार मनु ने भी दस धर्म बताये हैं। ठाणांग सूत्र प्रतिपादित और मनु द्वारा कथित दस धर्म सामान्य धर्म है जो मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी है। कोई कहीं भी रहे, किसी भी स्थिति में रहे, सामान्य धर्म का पालन करना आवश्यक माना गया है महाभारत में मानव का साधारण धर्म बताते हुए कहा है—

श्रद्धा कर्म तपश्चैव सत्यम क्रोध एवच ।
स्वेषुदारेषुसंतोषः शौचं विद्या न सूयिता ॥
आत्म ज्ञानं तितिक्षाच धर्मः साधारणो नृपः ।

१ श्रद्धा रखना २ सत्कर्म करना ३ तपस्या करना ४ सत्य बोलना ५ किसी पर क्रोध न करना ६ अपनी स्त्री में सन्तोष रखना ७ पवित्र रहना ८ विद्याध्ययन करना ९ किसी से द्वेष न करना १० आत्म ज्ञान करना। ये दस सामान्य धर्म हैं। जिन पर मैं [illegible] है

'अत्र निर्जने वने कुत्र तन्दुल कणानां संभमः ? निरूप्यतां तावत्, भद्रं इदं न पश्यामि' इस निर्जन वन में चाँवल के दानों का कहाँ संभव हो सकता है, जरा देखो, मैं इसमें कुशल नहीं देखता।

नेता ने सोच समझ कर बात कही मगर वे कबूतर क्यों मानने लगे। आज के युवक माने तो वे भी माने। नेता चुन लिया मगर उसकी आज्ञा पालन करने में कठिनाई मालूम देती है। एक युवा कबूतर को नेता की यह चेतावनी अच्छी न लगी। उसने कहा वृद्धों की बात सङ्कट के समय मानी जाती है। भोजन के समय मानने से भूखों मरने की नौबत आती है। साक्षात चाँवल दीख रहे हैं, फिर उन्हें न चुगना महज मूर्खता है।

आज के युवक भी यही बात कहते हैं कि यदि हम पुराने लोगों की बातें मानने लगें तो कोई सुधार नहीं हो सकता। लेकिन जो बड़ा या नेता होता है उसका क्या कर्तव्य है, यह ध्यान से देखिये।

कबूतरों के नेता चित्रग्रीव ने सोचा कि ये सब लोग एक हो गये हैं अतः इन से अलग रहकर आपस में फूट डालना ठीक नहीं है, कहा, चलो भूख तो मुझे भी लग रही है नीचे चलकर दानें चुगें। वह मन में मानता था कि इस कार्य में सङ्कट है फिर भी उसने सब के साथ रहना ही उचित समझा। संकट में ये लोग अवश्य मेरी बात मानेंगे।

सब उड़कर नीचे आ गये और दानें चुगने लगे। जब वापस उड़ने लगे तब सब के पैर जाल में फँस जाने से उड़ न सके। अब सब कबूतर इस युवा कबूतर को कोसने लगे कि तुमने नेता कहना न मानकर हम सब को फँसा दिया है। उस समय यदि नेता चाहता तो आपस में फूट डलवा सकता था। क्योंकि फूट डालने का सुन्दर अवसर था। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसने कहा इस युवा को दोष मत दो। जब आपत्ति आने वाली होती है तब मित्र भी शत्रु का काम कर बैठते हैं। इसका उद्देश्य सबको खिलाने का था फँसाने का न था। इस में यह क्या करे जो आपत्ति आगई। इसने अपनी बुद्धि में जैसा जँचा वैसी सलाह दी थी। अब इसे गाली या उपालम्भ देने से क्या होता है। हमारी आफत उपालम्भ से नहीं मिट जाती। वह तो उपाय करने से मिट सकती है।

आजकल दूसरों पर दोषारोपण करने और उपालम्भ देने की प्रथा बहुत चल गई है मगर लोग यह नहीं देखते कि किस बात के लिए हम उपालम्भ दे रहे हैं वह हमारे में तो

'नीतिस्ताव दीदृश्येव किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथा असमर्थः।
नीति तो ऐसी ही है कि पहले आत्म रक्षा करनी चाहिए किन्तु मैं अपने आश्रितजनों का दुःख सहन करने में सर्वथा असमर्थ हूं। अतः पहले इनको बचाओ, बाद में शक्ति हो तो मुझे बचाना। नीति और धर्म में यही अन्तर है कि नीति कहती है अपनी रक्षा करो, धर्म कहता है अपने आपको तथा अपनी प्रिय वस्तुओं को जोखिम में डाल कर भी दूसरों की रक्षा करो। नीति कहती है लाओ लाओ, धर्म कहता है देओ देओ। नीति स्वार्थ देखती है, धर्म परमार्थ देखता है। अधिक हुआ तो नीतिवान् अपने स्वार्थ के वक्त दूसरों को हानि न पहुँचाने का खयाल रख सकता है। मगर धर्मात्मा अपना सर्वस्व बलिदान करके भी दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करेगा। नीति मगज की उपज है, धर्म हृदय की उपज है।

जिस प्रकार माता पिता का धर्म बालक को प्यार करने जितना ही नहीं है किन्तु उसका पालन पोषण और ठीक रास्ते लगा देने का है, उसी प्रकार आगे बढ़ते जाओ और धर्म का निर्णय कर लो।' चित्रग्रीव ने अपने मित्र चूहे से कहा, देखो।

ज्ञाति द्रव्य गुणानाञ्च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि कदा किं तद् भविष्यति॥

मेरी और इन कबूतरों की जाति एक है, द्रव्य भी एक है दो पंख मेरे हैं और दो दो पंख इनके भी हैं तथा कबूतरों के सामान्य गुण भी इन सब में समान हैं। फिर क्या कारण है कि ये लोग मुझे अपना नेता मालिक या राजा मानें। मुझे नेता मानने का इन को क्या फल मिला और मैंने नेता बनकर क्या विशेषता की।

आज तो कहा जाता है कि बलवान् के दो भाग। दो भाग ही नहीं किन्तु बहुत से नेता या राजा बने हुए लोग उल्टा अपने आश्रितों का शोषण करते हैं। पशुबल वाले बड़े लोग अपने पशु बल के सहारे 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' के अनुसार टट्टू नेता या राजा या सरकार बने हुए हैं। किन्तु कर्तव्य का पालन किये बिना सच्चा नेतृत्व नहीं मिल सकता।

चित्रग्रीव कहता है, दोस्त! मेरे दो शरीर हैं, एक भौतिक शरीर जो पंच भूतों से बना है और बाहर उस [illegible] न, दूसरा धर्म शरीर जो मेरी आत्मा के साथ

कायम रहेगा। मेरे बन्धन काटकर तू मेरे इस नाशवान् भौतिक शरीर की रक्षा कर सकेगा किन्तु मेरे साथियों के बन्धन काटकर मेरे अविनाशी यशः शरीर की रक्षा कर सकेगा।

मित्र की उदारता पूर्ण बातें सुनकर चूहे को बड़ा हर्ष हुआ और हर्षावेश में आकर धड़ाधड़ सब के बन्धन काटकर फेंक दिए। कहने लगा कि हे चित्रग्रीव ! तेरे ये विचार त्रिलोक पति बनाने वाले हैं। जो केवल अपने बन्धनों को न काटकर सब के बन्धनों को काटने की कोशिश करता है वही तो त्रिलोक पति है। स्वयं कष्ट सहन करके दूसरों को सुख पहुँचाना यही मानव धर्म है। स्वार्थ से ऊँचा उठना ही मानव धर्म है।

चित्रग्रीव ने अपने साथियों को हिदायत दे दी कि बीती हुई घटना को याद करके कभी भविष्य में लड़ना मत 'बीति ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहि'

आप लोग भी दूसरों को सुख पहुंचाने का प्रशस्त मार्ग अपनाइये और परमात्मा से यह प्रार्थना कीजिये कि—

दयामय, ऐसी मति हो जाय।
औरों के सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय।
अपने सब दुःखों को सहलूं, पर दुःख देखा न जाय॥ दया०॥

राजकोट
२६—७—३६ का
व्याख्यान

नोट—आज का व्याख्यान काठियावाड़ युवक जैन परिषद् की प्रार्थना से मानव धर्म पर दिया गया है।

सच्ची साधुता

प्रणमुं वासुपूज्य जिननायक, सदा सहायक तू मेरो । प्रा० ।

प्रार्थना में विचित्र प्रकार के विधान करने से उस में विशालता आ जाती है। कोई भाई यह सोचकर प्रार्थना करना बन्द न करदे कि मैं प्रार्थना की विशालता नहीं समझता अतः मैं क्यों इस झंझट में पड़ूं। जो हृदय से प्रार्थना करता है उसके मन में ऐसा विचार नहीं आता।

उदाहरण के लिए एक आदमी के हाथ में एक रत्न जड़ित अंगूठी है, वह उसकी कीमत नहीं जानता है। किसी जौहरी ने अंगूठी देखकर कहा, यह अंगूठी तुझे कहां से मिल गई, यह बहुमूल्य है। यह बात सुनकर वह आदमी प्रसन्न होगा या नाराज ? प्रसन्न होगा। वह अंगूठी को अपनी मानता है अतः उसे प्रसन्नता होती है। यदि अपनी न मानता होता और किसी दूसरे की ख्याल करता तब तो उसे प्रसन्नता न होती। वह कीमत नहीं जानता तो क्या हुआ। जौहरी की बात पर विश्वास करके प्रसन्न होता है।

इसी प्रकार प्रार्थना की विशालता या गूढ़ार्थ समझ में न आये तो भी ज्ञानियों द्वारा उसकी महिमा सुनकर यदि प्रार्थना को अपनी मानते हो तो अवश्य आनन्द आना चाहिए।

भगवान् वासुपूज्य की प्रार्थना में क्या तत्त्व भरे हुए हैं, उनका रहस्य बताने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है फिर भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करने का सब को अधिकार है। कोयल सब आम्रमञ्जरियों का गुणगान नहीं कर सकती फिर भी समय पर अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बोलती ही है। सच्चे भक्त भी, परमात्मा की प्रार्थना के संपूर्ण रहस्य को बताने में असमर्थ होते हुए भी, निन्दा स्तुति का खयाल किये बिना, अपनी शक्ति के अनुसार कुछ कहते ही हैं। प्रार्थना में कहा है:—

> खल दल प्रबल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो।
> तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरिय न होय प्रकटे चेरो॥

संसार में जिनको दुष्ट कहा जाता है, जिनका उद्देश्य दूसरों को कष्ट देना ही है, ऐसे दुष्ट यदि सज्जन को अपने घेरे में ले ले, तो भी वह नहीं डरता है। भक्त उस समय यह सोचता है कि इनका घेरा मुझे कुछ और ही शिक्षा देता है। जिस प्रकार सच्चा विद्यार्थी शिक्षक की छड़ी को अपने लिए सहायक रूप समझता है, वह मेरी विद्योन्नति करने में बहुत सहायता करती है, उसी प्रकार दुष्टों द्वारा आये हुए विघ्नों को भक्त लोग प्रसाद मानते हैं। दुष्टों की ठोकरें हमें परमात्मा की तरफ धकेलती हैं, ऐसा मानते हैं हमारी आत्मा सदा अविनाशी है। दुष्ट अधिक से अधिक हमारा शरीर नाश कर सकते हैं। शरीर नाश से हमारा कुछ नहीं बिगड़ता वह तो नाशवान् है ही। एक दिन नष्ट होगा ही। अहा! भक्तों का यह कितना ऊँचा मार्ग है। वे हर हालत में निर्भय और दृढ़ चित्त रहते हैं। अतः आनन्द तो कभी उनका साथ नहीं छोड़ता। इस प्रकार की दृढ़ता और निर्भयता रखने से कभी दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड़कर मित्र या शिष्य बन जाते हैं। यह बात दूसरी है कि कोई [illegible] कुछ नहीं बिगाड़ [illegible] कुछ न [illegible] बिगाड़ सके। मुनि उनको

[illegible]

तथा चेष्टाएं देखकर साधुता असाधुता का निर्णय करना बड़ी बात नहीं है । 'आकृति र्गुणान्कथयति' शरीर की आकृति ही बता देती है कि कौन गुणी है ।

मैं साधुओं से भी अपील करता हूँ कि महात्मा लोगों जागो ! जागो । आपके कारण धर्म की निन्दा हो रही है अतः समझो और विचार करो । साथ में श्रावकों से भी कहना है कि सब को एक धार से पानी मत पिलाओ । विवेक से काम लो ।

राजा श्रेणिक उन मुनि को साधु ही समझता था और इसी लिए उनको वंदना की और उनकी प्रशंसा करके अपने मन की शंका उनके सामने रखी। उल्टा प्रश्न किये बिना बात का रहस्य प्रकट नहीं होता । मुनि ने भी सीधा उत्तर दिया है । आजकल के साधुओं की तरह यह न कह डाला कि चल तुझे इन बातों से क्या मतलब । तेरा काम राज्य करना है तू साधुओं की बातों को क्या जाने । किन्तु अनाथी मुनि कैसा जवाब देते हैं । यह जैन साधुओं का चरित्र प्रकट करता है । मेरी ताकत नहीं कि मैं अनाथी मुनि का हूबहू चितार खींचकर आपके सामने रख सकूं । यदि वे साक्षात् होते तो भी उन्हें देखकर इतना आनन्द नहीं आता जितना गणधरों की वाणी द्वारा उनका चरित्र सुनकर आ रहा है । अनाथी मुनि ने तो राजा श्रेणिक को ही सुधारा होगा किन्तु गणधरों की कृपा से उनके चरित्र द्वारा न मालूम कितने लोग सुधरेंगे । बहुत भाई इस अध्ययन की प्रतिदिन स्वाध्याय करते हैं । पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० इस अध्ययन का प्रायः नित्य स्वाध्याय किया करते थे । वास्तव में यह अध्ययन है ही स्वाध्याय के योग्य ।

राजा के प्रश्न का मुनि ने उत्तर दिया—

> अणाहोमि महाराय ! णाहो मज्झ न विज्जइ ।
> अणुकंपगं सुहिं वावि, किंचि नाभिसमेमहं ।९॥

हे महाराजा ! मैं अनाथ था, मेरा रक्षण करने वाला कोई न था, न कोई मेरा पालन करने वाला था अतः मैंने संयम धारण किया । साधु बन गया ।

नाथ किसको कहते हैं, यह पहले जान लें । जो योग और क्षेम करे वह नाथ है । 'अलब्धस्य लाभो योगः, लब्धस्य परि पालनं क्षेमः' अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करना योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना क्षेम है । जो नहीं मिली हुई वस्तुको दिलावे और [illegible] परिपालन करे वह नाथ है ।

अनाथी मुनि कहते हैं ' मेरा कोई नाथ न था, कोई मेरा रक्षण करने वाला न था धर्म समझकर भी मेरी कोई अनुकम्पा दया करने वाला न था, संकट समय में काम आ वाला कोई मित्र भी न था अतः मैंने संयम धारण कर लिया ' ।

मुनि का उत्तर सुनकर साधारण लोग यह खयाल करते हैं कि यह कोई रंक आदमी होगा । खाने पीने सोने बैठने आदि की कठिनता होगी अतः दीक्षा लेली है । अथवा 'नारी मुई गृह सम्पत्ति नासी, मुण्ड मुण्डाय भये संन्यासी ' के कथनानुसार स्त्री चल बसी होगी, सम्पत्ति बरबाद हो गई होगी अतः सिर मुण्डा कर साधु बन गया है ।

राजा को भी मुनि का उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ होगा । उसे मन में यह कल्पना आई होगी कि अभी तो इतना घोर कलियुगी समय नहीं आया है कि कोई आदमी रक्षण के अभाव में दुख पाये । आजकल भी यदि कोई दीन अनाथ जन हो तो उसे अनाथालय में भेज दिया जाता है । वह समय तो चौथे आरे का था । अतः राजा को मुनि का उत्तर सुनकर बड़ा अचरज हुआ ये मुनि ऋद्धि सम्पन्न मालूम होते हैं फिर इनके लिए ऐसी नौबत कैसे आगई इनका कथन ऐसा मालूम देता है जैसे चिन्तामणि रत्न कहता हो, मुझे कोई रखने वाला नहीं है, कल्पवृक्ष कहे कि जगत् में मेरा आदर नहीं है और कामधेनु कहे कि मुझे जगत् में कहीं स्थान नहीं । जिनका शरीर शंख, चक्र, गदा पद्म आदि लक्षणों से युक्त हो, उनका कोई रक्षणहार नाथ न हो यह कैसे संभव हो सकता है ।

हंसते और विचार करते हुए राजा ने मुनि से कहा, ऋद्धि सम्पन्न मालूम देते हुए भी आप अपने को अनाथ कैसे बता रहे हैं । कवि लोग कहते हैं कि विधाता हंस से रुष्ट कर उसके रहने के कमल वन को नष्ट कर सकता है, मानसरोवर सुखा सकता है लेकिन दूध पानी को पृथक् पृथक् कर देने के उसकी चोंच के गुण को तो वह भी नहीं मिटा सकता । मैं नहीं जानता कि आप कौन थे किन्तु आपके देखने मात्र से स्पष्ट मालूम देता है कि आप ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति हैं । मैं इस प्रश्नोत्तर को लम्बा करना नहीं चाहता, चाहिये यदि आप अनाथ हैं तो मेरे नाथ बनिये । मैं आपका नाथ होता हूं ।

किसी बात को ऊपर से देखकर उसका उल्टा अर्थ नहीं करना चाहिए, मुनि का उत्तर विश्वास करने लायक न मालूम होता था फिर भी राजा ने यह नहीं कहा कि आप अन्यथा भाषण कर रहे हैं । उसने सीधा कह दिया यदि नाथ न होने के कारण ही आपने

घर बार छोड़कर दीक्षा अंगीकार की है तो मैं आपका नाथ बनता हूं। आप मेरे साथ चलिये। मेरे राज्य में किसी बात की कमी नहीं है।

राजा श्रेणिक ने विवेक रखकर जैसा सुन्दर उत्तर दिया वैसा विवेक आप लोग भी रखिये। कोई बात आपको ठीक न जँचे अथवा आपकी समझ में न आवे तो आप एक दम से किसी पर आक्षेप मतकर डालिये।

अब मैं जूनागढ़ के दीवान साहिब से कुछ कहता हूं। मुझे दीवानसा से कुछ लेना देना नहीं है, न किसी मुकदमा में ही उनकी सिफारिश की मुझे जरूरत है। मगर उनपर आप लोगों की अपेक्षा बोझा अधिक है। उनका बोझा हलका करने के लिए कुछ कहता हूं और जो कुछ कहूंगा वह आपके लिए हितकारी होगा अतः ध्यान से सुनिये। पचीस व्यक्ति जाते हों, उनमें से किसी के सिर भार रखादो तो सब का ध्यान उसीकी ओर आकर्षित होगा। दीवान सा पर संसार का बोझा अधिक है अतः इनको लक्ष्यकर के सब कहता हूं।

सुना है कि मलाबार से सागवान आदि लकड़ियाँ लाई जाती हैं। जब कि लकड़ियाँ दरिया में (समुद्र में) पड़ी रहती हैं तब उनको एक डोरी से बांधकर एक बच्चा भी जिधर चाहे उधर उनको घुमा फिरा सकता है। किन्तु जब लकड़ियाँ बाहर निकाली जाती हैं तब उन्हें उठाने के लिए अनेक आदमियों की जरूरत होती है। इस अन्तर का कारण क्या है। जब तक लकड़ियाँ दरिया में थी तब तक उनका आधार दरिया ही था। बाहर निकलने पर दरिया आधार न रहा। आप लोगों से मैं पूछता हूं कि आप लोग संसार व्यवहार का सारा बोझा अपने सिर पर ही ले लोगे अथवा दरिया के समान किसी का सहारा ग्रहण करोगे। यदि सारा बोझा अपने ऊपर ही ले लोगे तो उसके भार से दब जाओगे अतः परमात्मा रूपी दरिया पर अपना बोझा छोड़ दीजिये जिससे आपका काम पानी में लकड़ी के समान हल्का हो जाय।

संसार व्यवहार में किस तरह रहना चाहिए, यह बात एक उदाहरण से समझाता हूं। वृक्ष पर बन्दर भी बैठते हैं और पक्षी भी बैठते हैं। अब वृक्ष के टूटने का अवसर आवे तब किसको दुःख होगा। पक्षी तो यह सकते हैं कि हम वृक्ष के ही सहारे नहीं हैं, हमारे पंख हैं, अब [illegible] हम पर बैठे हैं [illegible] हम अपने पंखों के सहारे उड़ जाते हैं।

मृत्यु होगई। किन्तु बात यह नहीं है। आगे जिस ऋद्धि सिद्धि का वर्णन किया जायगा वह नवकार मंत्र के प्रताप से ही सुदर्शन को प्राप्त हुई है।

पांच धायों और अठारह देश की दासियों द्वारा उसका लालन पालन और सामान्य शिक्षण हुआ था। जब वह आठ वर्ष का हो गया तब उसके पिता ने विद्या पढ़ाना आरंभ कर दिया। एक कवि ने कहा है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंस मध्ये बको यथा॥

वे माता पिता अपनी संतान के शत्रु हैं, जो उसे नहीं पढ़ाते। वह संतान, हंसों की पंक्ति में बगुला जैसे शोभा नहीं पाता, वैसे ही सभा में शोभित नहीं होती। आप लोग अपनी संतान को हंस जैसी बनाना चाहते हो या बगुले जैसी। यदि हंस जैसी बनाना चाहते हो तो उसे विद्या पढ़ाओ और संस्कारी बनाओ। आप लोग कह सकते हैं कि हमारे राजकोट में सब लोग पढ़े लिखे हैं यहां अनेक स्कूल्स हैं अतः यह उपदेश यहां व्यर्थ है। किन्तु जो पढ़े लिखे लोग हैं उनकी विद्या कैसी है, इस तरफ भी ध्यान देना चाहिये।

सा विद्या या विमुक्तये

विद्या वह है जो मुक्त करे। बन्धन से छुड़ाये। किस के बन्धन से छुड़ाये? विषय विकार और पाप के बंधन से। आधुनिक शिक्षा ऐहिक जीवन की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं है वह पारमार्थिक जीवन की क्या रक्षा करेगी। दस ग्रेजुएट्स एक साथ जंगल में जा रहे हों, मार्ग में कोई बदमाश उन्हें लूटने लगे तो क्या वे अपना रक्षण कर सकते हैं? भाग तो न जाएंगे? सुना है एक सांप के भय से साठ आदमी मर गये। यदि उनमें एक भी आत्मा बली होता और अपना भोग देकर भी दूसरों को बचा सकता तो सब की मृत्यु न होती। आजकल बातें बनाने वाले बहुत हैं। कहा भी है—

'आओ मियांजी खाना खाओ, करो बिस्मिल्लाह हाथ धुलाओ।
आओ मियांजी छप्पर उठाओ, हम बुड्ढे जवान बुलाओ'॥

इस कहावत में बनाये हुए मियाजी खाना खाने के समय तो जवान थे मगर छत उठाने के वक्त बुड्ढे बनगये। इसी प्रकार बातूनी बहुत हैं मगर काम करने वाले थोड़े हैं।

राजा का आश्चर्य

२२

रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥ प्रा० ॥

परमात्मा की प्रार्थना करते समय भक्त को मन में कैसी भावना रखनी चाहिए, यह बात इस प्रार्थना में बताई गई है। कहा गया है, हे आत्मन् तू अपनी पूर्व स्थिति को याद कर। पूर्व स्थिति का स्मरण करने से बहुत लाभ होता है, उन्नति होती है। पहले कहां किस स्थिति में रहा, इसका विचार करने से मालूम होगा कि कितनी कठिनाई से यह भव प्राप्त हुआ है। वर्तमान भव की दस बीस, पचीस पचास वर्ष की आयु को व्यर्थ न जाने देकर उचित उपयोग में लगाने की बुद्धि, पूर्व भव का संस्मरण करने से पैदा होती है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने पर यही विचार निश्चित रूप से आयेगा कि—

रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये।

हे जीव ! तू भगवान् विमलनाथ की सेवा कर। सेवा करने के लिये प्रार्थना में स्पष्ट कहता है कि मोहनी कर्म को नष्ट करके-क्षय करके सेवा कर। प्रार्थना के समय संसार की इन वस्तुओं को तुच्छ मान। उदाहरणार्थ आपके पास एक रुपया है। आप उस रुपये का त्याग नहीं कर सकते। किन्तु यदि रुपये की एवज में मोहर मिलती हो तो आप रुपये का त्याग कर सकते हो। यदि रत्न मिलता होतो आप मोहर को त्यागने में भी हिचकिचाहट न करोगे। इसी प्रकार यदि परमात्मा की भक्ति मिलती होतो उसके लिए सर्वस्व सब कुछ त्यागने के लिए उद्यत रहना चाहिए। भक्ति के सामने जगत् की सब जड़ वस्तुएं तुच्छ हैं। जो कुछ होता है करने से होता है कोरी बातें बनाने से कुछ नहीं होता। मैं करूंगा तो मुझे लाभ होगा और आप करोगे तो आपको। मैं तो जो बात है, आपके सामने रख रहा हूं। एक आदमी परोसने का काम करता है। यदि वह सब को परोस दे और खुद न खाये तो वह भूखा ही रहेगा। परोसने वाले को क्या लाभ हुआ। इसी प्रकार परोसने वाले परोसदे और जीमने वाले ऊंघते रहें भोजन का उपयोग न करें तो भी परोसना व्यर्थ हो जाता है।

मोहिनी कर्म नाश करके प्रार्थना करने से बचे हुए मोहिनी कर्म का भी नाश हो जाता है। पहले धन स्त्री पुत्रादि पर का मोह हलका करके भगवान् की प्रार्थना करिये। प्रार्थना करने से मोहनीय कर्म का अवशिष्ट अंश भी नष्ट हो जायगा और आप भगवान् बन जाओगे। यदि आप सम्पूर्ण मोह को न छोड़ सको तो कम से कम सांसारिक कामों को मुख्य मत मानो उन्हें गौण समझो। आज तो प्रभु प्रार्थना गौण हो रही है और दुनियादारी के काम मुख्य बन रहे हैं। यही भूल है। आप इस आदत को बदल दीजिये। प्रार्थना को मुख्य बनाईये और दुनियादारी को गौण। प्रार्थना के समय सांसारिक पदार्थों में से ममत्व बुद्धि को हटा दीजिये।

शास्त्र चर्चा—

यही बात अब शास्त्र द्वारा बतलाते हैं। राजा श्रेणिक अनाथी मुनि से पूछता है कि आपने भर यौवन में दीक्षा क्यों अंगीकार की है। अनाथी मुनि ने उत्तर दिया कि मेरा कोई नाथ न था, मैं अनाथ था, अतः दीक्षा ली है। मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत चकित हुआ।

> तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
> एवं ते इड्ढिमंतस्स कहं नाहो न विज्जई ॥ १० ॥

मगधेश का अधिपति राजा श्रेणिक मुनि का उत्तर सुनकर हँसने लगा और कहने लगा कि इस प्रकार के ऋद्धिसम्पन्न तुम्हारे नाथ कैसे नहीं है। यहाँ श्रेणिक शब्द से राजा का परिचय हो जाने पर भी मगधाधिप शब्द का प्रयोग इस लिए किया गया है कि मुनि के उत्तर से हँसने वाला व्यक्ति कोई साधारण आदमी नहीं है किन्तु मगध देश का मालिक है। कुछ लोग पुनरुक्ति दोष को दूर करने की कोशिश में रहते हैं गणधरों ने जान बूझकर पुनरुक्ति का प्रयोग किया है। माता जिस प्रकार बड़े प्रेम से बार बार एक ही बात को अपने बच्चे को समझाती है उसी प्रकार गणधर भी बार बार एक बात को समझाते हैं जिससे जन साधारण भी शास्त्रों की गहन बातों को हृदयगम कर सकें। दूसरी बात साधारण और विशेष व्यक्तियों के हँसने में भी अन्तर होता है।

हँसकर राजा कहने लगा कि आप जैसे ऋद्धिसम्पन्न व्यक्ति को कोई नाथ न था यह बात जँचने में नहीं आती। अब पहले यह जान लेना चाहिए कि ऋद्धि किसे कहते हैं। ऋद्धि दो प्रकार की होती है। १ बाह्य ऋद्धि २ अन्तरंग ऋद्धि। बाह्य ऋद्धि में धन धान्यादि का समावेश होता है और अन्तरंग ऋद्धि में शरीर की सम्पन्नता और इन्द्रियों का पूर्ण विकसित होना है। मुनि के पास उस वक्त बाह्य ऋद्धि न थी किन्तु अन्तरंग ऋद्धि थी। उनकी आकृति बड़ी अच्छी थी। कहावत है कि 'यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति' जहाँ सुन्दर आकृति हो वहाँ गुण निवास करते हैं। और आकृति गुणों को कह देती है 'आकृतिर्गुणान् कथयति'। आकृति शुद्ध होने से गुण भी शुद्ध होते हैं। जिसकी आँखें बड़ी हों और उनमें लाल डोरे पड़े हों, कान लम्बे, ललाट विशाल, चौड़ा कपाल और सर्वांग सुन्दर पूर्ण इन्द्रियाँ हों, वह पुण्यवान ही होगा। यही बात सोचकर राजा ने कहा कि ऐसे व्यक्ति का कोई नाथ न हो यह कैसे हो सकता है।

[illegible]

यहां से जाकर यह कहा जाता है कि हम आपका इन्तजाम कर देंगे आप क्यों यह कठिन व्रत अंगीकार कर रहे हो। यह भोग के त्याग की महिमा है। जिसने दिल से भोगों का त्याग कर दिया है उसके इर्दगिर्द भोग चक्कर काटा करते हैं किन्तु सच्चे त्यागी महात्मा वमन किये हुए को पुनः नहीं अपनाते। जो भोगों के लिए लालायित रहता है भोग उससे दूर भागते हैं। जो लाओ, लाओ, करता रहता है उसे वह वस्तु नहीं मिलती और न वैसी मनुहार ही उसकी होती है।

राजा ने मुनि से कहा कि आप चलिये और मेरे राज्य में ऐश आराम कीजिये। आप यह न खयाल कीजिये कि मैंने घर बार और कुटुम्ब कबीला छोड़ दिया है अतः अब किनके साथ रह कर भोगोपभोग भोगूगा। आपको मित्र भी मिलेंगे और ज्ञाति भी। आपने दीक्षा लेकर कोई बुरा काम नहीं किया है जिससे कि मित्र और ज्ञाति वाले आप से घृणा करने लगें। मित्र और ज्ञाति के लोग आपको आदर की दृष्टि से देखेंगे और आपका सन्मान करेंगे। वे यही कहेंगे कि अच्छा हुआ सो संयम छोड़ दिया और हमारे में आ मिले हो। मैं आपको यह बात किसी अन्यकारण से नहीं कह रहा हूं किन्तु मनुष्य जन्म की दुर्लभता का खयाल करके कह रहा हूं। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को भोगभोगे बिना वृथा खो देना ठीक नहीं मालूम देता।

आजकल भी अनेक लोगों का यह विचार है कि साधु बन कर जीवन का सत्यानाश करना है। अच्छा खाना पहनना और नवीन आविष्कार करना, इसी में जीवन की सार्थकता है। साधु तो इनके त्याग का उपदेश देते हैं अतः उनके पास जाकर वक्त नष्ट करना है। ऐसे लोगों की दृष्टि में भोग भोगना और दुनियां को अपनी कुछ देन दे जाना ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है श्रेणिक राजा भी यही बात कह रहा है। वह विषय भोग में ही जीवन की उपयोगिता समझता है। यह बात तो निःसन्देह माना गया है। कि मनुष्य जन्म परम दुर्लभ है। किन्तु इस बात में बड़ा विवाद है कि इसका उपयोग भोग भोगने में करना चाहिये अथवा [illegible]।

[illegible]

इधर के पुद्गल उठाकर उधर रखना और अपनी ज्ञाति या कला पर अभिमान करना मनुष्य जन्म की सार्थकता नहीं है वस्तुतः मनुष्य जन्म की सार्थकता आत्मा से परमात्मा बनने की कला में है। यह काम मनुष्य जन्म के बिना नहीं हो सकता और यही कारण है कि ज्ञानियों ने मनुष्य जन्म को महान् दुर्लभ बताया है। यदि आत्मा से परमात्मा बनने के लिए प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य जन्म सार्थक है अन्यथा उसकी कोई विशेषता नहीं है। भक्त तुकाराम कहते हैं।

> अनन्त जन्म जरी केल्या तपराशि तरीहान पावसी मसे देह ऐसा हा निदान।
> लागळासी हाथीं त्यांची केली माही भाग्यहीन ॥

अर्थात् अनन्त जन्म तक पुण्यराशी एकत्रित करने पर यह मनुष्य जन्म मिलता है। पुण्यबल से यह दुर्लभ मानव देह हाथ में आया है फिर भी भाग्यहीन व्यक्ति मिट्टी की तरह इसको खो देते हैं।

भगवान् विमलनाथ की प्रार्थना में कहा गया है कि जीव सूक्ष्म निगोद से बादर निगोद में, बादर निगोद से स्थावर योनि में अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में जन्म लेता है। फिर वे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चतुरिंद्रिय और पंचेन्द्रिय में क्रमशः आता है। पंचेन्द्रिय में भी मनुष्य की योनि बड़े भाग्य से ही प्राप्त होती है। मनुष्य योनि के साथ आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल का योग मिलना और कठिन है। यदि यह भी योग मिल जाय तो सत्श्रद्धा और तदनुकूल आचरण होना सब से कठिन है। मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी कठिन मंजिल को ते करने में है। धर्माचरण अथवा जीव से शिव बनने का काम इसी दुर्लभ देह से शक्य है अतः जीव से शिव बनने में ही मनुष्य देह की सार्थकता है। भोग भोगने में मनुष्य जीवन वृथा बरबाद हो जाता है कोई भी बुद्धिमान आदमी बावना चन्दन को चूल्हें में जलाना पसन्द नहीं करेगा। मानव देह के द्वारा भोग भोगना, बावना चन्दन को भट्टी में झोंकना है। यह इसका बेहतर उपयोग नहीं है। राजा श्रेणिक ने अपने विचारों के अनुसार अनाथी मुनि को भोग भोगने के लिए प्रार्थना की है। मुनि के उत्तर को सुनकर राजा आश्चर्य चकित होकर मुस्करा रहा है। और राजा की प्रार्थना सुनकर मुनि भी मुस्करा रहे हैं। अपना अपना पक्ष लेकर दोनों मुस्करा रहे हैं। मुनि तो यह विचार करके मुस्करा रहे हैं कि जो स्वयं अनाथ हो वह दूसरों का क्या नाथ बनेगा। और राजा इस लिए मुस्करा रहा है कि ऐसे व्यक्ति को नाथ न मिलना बड़ी ताज्जुब की बात है। राजा के द्वारा नाथ बनने के लिए की गई प्रार्थना का मुनि क्या उत्तर देते हैं यह बात आगे बताई जायगी।

सकता है। साधुओं के प्रताप से ही आज सुदर्शन का चरित्र गाया जारहा है। साधु की कृपा से ही सुभग सुदर्शन बना है। अतः साधुओं की निन्दा करना छोड़कर उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लीजिये। साधु लोग संसार समुद्र में पुल के समान है। किसी नदी पर जब पुल बना दिया जाता है तब एक चींटी भी सुगमता से नदी पार कर सकती है नहीं तो हाथी भी कठिनाई से पार कर पाता है।

सुदर्शन बहत्तर कलाएं सीखकर नौजवान हो चुका है। पहले के जमाने में जब तक लड़का कलाएं न सीख लेता और उसके सोते हुए सातों अंग जागृत न हो जाते तब तक उसका विवाह नहीं किया जाता था। इसके पूर्व विवाह कर देना बहुत हानिप्रद है।

बाल विवाह में न केवल आध्यात्मिक हानि होती है मगर व्यावहारिक और शारीरिक हानि भी होती है। मान लीजिये कि एक गाड़ी में पचीस जवान आदमी बैठे हैं और दो छोटे बछड़े उसमें जुड़े हुए है। क्या वे बछड़े उस गाड़ी के भार को खींच सकते हैं? और क्या ऐसी गाड़ी में सवार होने वाले दयावान् कहे जा सकते हैं? कदापि नहीं। इसी प्रकार किसी का विवाह सम्बन्ध जोड़ना भी संसार व्यवहार का भार है। छोटे बच्चों को इस सम्बन्ध में जोड़ देना और बाराती बन कर विवाह कराना दयावानों का काम नहीं हो सकता। समझदार और दयावान् ऐसी शादियों में शरीक नहीं सकते। क्या कोई भाई इस [illegible] बात की प्रतिज्ञा ले [illegible] मैं [illegible] वर्ष से कम उम्र के लड़के और तेरह [illegible] से कम उम्र की लड़की की शादी में लड्डू न खाऊंगा! कन्या और वर को बड़ी सुशिक्षा की जरूरत है। आजकल जाहिर तौर पर लग्न होने के पूर्व ही कन्या और वर का शारीरिक सम्बन्ध होने की बातें सुनने में आती हैं। यह अत्याचार है। [illegible] में कुमारिकाश्रम खुले हुए हैं, जहां विवाह के पूर्व होने वाली सन्तानों का पालन होता है तथा वहीं पर कुमारिकाएँ बच्चे पैदा कर डालती है। भारत में ऐसी बात तो नहीं है फिर भी [illegible] में कुछ [illegible] है। [illegible] यह है कि [illegible]।

[illegible] किन्तु [illegible] आई हुई है [illegible] [illegible] किसी देश

की भाषा सीखने के साथ साथ उस देश की बुरी बातें न सीखना चाहिए। दूसरे देशों की अच्छाइयाँ ग्रहण करने में किसे एतराज हो सकता है? मेरा मतलब तो इतना ही है कि अंग्रेजी भाषा के साथ अंग्रेजों की यह सभ्यता और संस्कार अपने में प्रविष्ट न होने देने चाहिए जो हमारा धर्म कर्म भ्रष्ट करते हों। भारत देश सदाचार को जीवन का उच्चतम आदर्श मानता है। इस आदर्श की रक्षा करते हुए विद्यार्थी सब कुछ सीख सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि मेरे खयाल से हमारी अपनी भाषा में और विदेशी भाषा में माता और दासी जितना अन्तर है। हमारी देशी भाषा माता के समान है और विदेशी भाषा दासी के समान। यदि कोई व्यक्ति माता का आदर करना छोड़कर दासी का आदर करने लगे तो यह ठीक न कहा जायगा। हिन्दू सभ्यता के अनुसार माता पिता और गुरु देव तुल्य माने गये हैं। वेदों में कहा है 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव आचार्य देवो भव'। जैन शास्त्रों में भी कहा है 'देव गुरुजण सकासा' अर्थात् मां देव और गुरुजन के समान है। माता का स्थान दासी से सदा ऊँचा रहता है। आज स्थिति विपरीत है। हमारी राष्ट्र भाषा जो कि माता के समान है दासी की हालत में हो रही है और अंग्रेजी भाषा उसके स्थान में माता बन रही है, यह देखकर भारत हितैषियों को दुःख होता है।

कोई भाई यह दलील पेश करे कि अंग्रेजी भाषा बहुत विकसित है अतः उसके अध्ययन में अधिक रस लिया जाता है और आदर भी किया जाता है तो मेरा उत्तर है कि मेम गोरी है और माता काली है अतः माता की अपेक्षा मेम का अधिक आदर करना क्या वाजिब है? यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा या राष्ट्र भाषा के स्थान पर माना जाता हो तो मेरा एक बार नहीं किन्तु हजार बार विरोध है। और यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा की दासी मानकर अध्ययन किया जाय तो मेरा कोई विरोध नहीं है। भाषा का युवक युवतियों पर प्रभाव पड़ता है अतः इतना इशारा किया गया है।

स्त्री और पुरुष में बहुत कुछ साम्य भी होता है और बहुत कुछ वैषम्य भी। दोनों के सहयोग से काम ठीक होता है। कुछ विभिन्नता है। पुरुष कठोर कार्य करते हैं और स्त्रियाँ कोमल। पुरुष बाहर काम करते हैं स्त्रियाँ घर में। जिस प्रकार वृक्ष में कोमल और कठोर दोनों प्रकार के भाग होते हैं और दोनों के होने से ही वृक्ष की शोभा है उसी प्रकार स्त्री और पुरुष के सहयोग से सुन्दर जीवन बनता है। पिछले योग को

काम हो वही उसे करना चाहिए। आज स्थिति बदल रही है। पुरुषों का काम स्त्रियों को सौंपा जा रहा है। इससे हानि है। सुना है कि हानि को महसूस करके हिटलर ने स्त्रियों को घर लौटने और घर का काम करने की आज्ञा दी है। स्त्रियों की उन्नति अपने योग्य कार्यों के करने में ही है। इससे वे अपनी और भावी पीढ़ी महान् उन्नति साध सकती है।

स्त्रियों और पुरुषों को बहत्तर और चौसठ कलाएं सीखना बहुत जरूरी है। यदि सूर्य और चन्द्रमा में कला न होती वे किस काम के? इसी प्रकार जिस स्त्री पुरुष में कला न हो वह किस कामका। कला सीखे बिना गृहस्थ जीवन की उन्नति नहीं हो सकती।

सुदर्शन बहत्तर कलाएं सीखकर घर आया। उसके सोते हुए सातों अंग जागृत हो चुके थे। घर आने से सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। सेठने कलाचार्य को इतना पुरस्कार दिया कि उसकी कई पीढ़ियां खाती रहें। केवल पुरस्कार ही न दिया किन्तु उसका उपकार भी माना। सेठने कलाचार्य से कहा, मैं आपका बड़ा एहसानमन्द हूं। आपने मेरे पुत्र को ऐसा योग्य बना दिया है कि वह अपना जीवन सुख पूर्वक बीता सकेगा। आपने कोरी कला ही नहीं सिखाई है किन्तु विनय गुण भी सिखाया है मैंने कच्चे सोने के समान उसे आपके सुपुर्द किया था आपने भूषण बना कर मुझे सौंपा है। आपका यह उपकार कदापि नहीं भुलाया जा सकता।

आजकल शिक्षा पूरी कर लेने के बाद लड़के अपने पिता को नौकर समझने लगते हैं। थोड़ा किताबी ज्ञान हासिल करके वे अपने को समझदार होशियार और सर्व गुण सम्पन्न समझने लग जाते हैं अपने मां बाप का यथोचित आदर नहीं करते। यह शिक्षा का दोष है। उन्हें शिक्षा ऐसी मिलती है कि वे मां बाप से अपने को श्रेष्ठ समझने लगते हैं वे अपनी बुनियाद को भूल गये हैं। सुदर्शन के चरित्र से युवा और वृद्धों को नसीहत लेनी चाहिए।

जब से सुदर्शन घर आया है तब से अनेक लोग अपनी अपनी कन्याओं के साथ सुदर्शन का विवाह करने की मांग सेठ के सामने रख चुके हैं। किन्तु सेठजी सब को टालते गये। वे किसी योग्यतम कन्या की तलाश में हैं। आजकल प्रायः सम्बन्ध के मामलों में धन को प्रधान स्थान दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति धनवान् है तो सब अन्य बातों की तरफ ध्यान न दिया जायगा। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' दुनिया के सब गुण सोने में आकर टिक जाते हैं किन्तु इस विषय में शास्त्र क्या कहता है सो जरा ध्यान देकर सुनिये। शास्त्र में कहा है—

भगवान् नेमीनाथ तीनसौ वर्ष की उम्र तक कुँवारे रहे थे क्या उन्हें कन्या नहीं मिलती थी ? ऐसी बात न थी। किन्तु बिना स्वीकृति विवाह करना उन्हें इष्ट न था। आज कल लड़के लड़कियों से कौन पूछता है कि तुम्हारा अमुक के साथ विवाह करें या नहीं।

सुदर्शन के पिता ने सुदर्शन से पूछा कि पुत्र ! तुम्हारे योग्य कन्या की सगाई की बात मेरे सामने आई है अतः तुम्हारी क्या इच्छा है सो बताओ। तुम्हारी स्वीकृति होतो सगाई कर ली जाय। सुदर्शन क्या उत्तर देता है, यह आगे बताया जायगा।

राजकोट
२१—७—३६ का
व्याख्यान

द्वारा शक्य नहीं है तब आप क्यों विवेचन कर रहे हैं। इसका उत्तर यह ही है कि मैं भी अपूर्ण ही हूं। और अपूर्ण हूं इस लिए वर्णन करता हूं और आप लोग भी अपूर्ण हैं अतः श्रवण करते हैं। इस प्रकार कह सुन कर अपूर्णता से पूर्णता में प्रवेश करना है। पूर्णता में पहुंचने का यह प्रयत्न है। पूर्णता कहीं बाहर से नहीं लानी है। पूर्णता हमारे भीतर छिपी हुई है, उसे प्रकट करने की आवश्यकता है। सूर्य स्वयं प्रकाशी है उसी प्रकार आत्मा भी पूर्ण है। सूर्य पर जैसे बादल आ जाते हैं तब वह छिपा हुआ मालूम होता है उसी प्रकार आत्मा पर भी राग द्वेष रूप आवरण आजाता है तब वह अपूर्ण ज्ञात होता है। आवरण हटते ही आत्मा पूर्ण बन जाता है। आत्मा स्वयं चिदानन्द स्वरूप है।

आत्मा के ऊपर जो आवरण लगे हुए हैं उन्हें हटाने के लिए घबड़ाने की जरूरत नहीं है। उपाय और पुरुषार्थ के द्वारा यह शक्य है। उपाय और पुरुषार्थ करने से आत्मा के आवरण दूर होकर उसकी वास्तविक शक्ति प्रकट हो सकती है। जिन अनन्त नाथ की स्तुति की जा रही है वे भी एक दिन कर्म रूप आवरण से आवृत थे किन्तु पुरुषार्थ करके उन्होंने उस पर्दे को चीर कर दूर फेंक दिया। हम भी वैसा कर सकते हैं।

क्या पूर्णता प्राप्त करने के प्रयत्न में शरीर पालन की क्रिया को भुला दिया जाय? शरीर पालन जरूरी चीज है। साधु भी शरीर पालन के लिए गोचरी करते हैं। गृहस्थों के पीछे संसार लगा हुआ है अतः सांसारिक कर्त्तव्यों को छोड़कर पूर्णता प्राप्ति के प्रयत्न में कैसे लग सकते हैं।

भाइयो! इस प्रकार शरीर पालन का नाम लेकर अपने असली ध्येय को भुला देना ठीक नहीं है। शरीर का पालन न किया जाय ऐसा कोई नहीं कहता। किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में देखने की चेष्टा करनी चाहिए। मुख्य को मुख्यता और गौण को गौणता देनी चाहिए।

शरीर से ज्ञानी भी रहते हैं और अज्ञानी भी। आत्मा परमात्मा को मानने और न मानने वाले सभी शरीर से निर्वाह करते हैं। दोनों प्रकार के लोगों का खान पान भी समान है। बाहर व्यवहार की बातें भी समान हैं। फिर ज्ञानी और अज्ञानी में बड़ा अन्तर है। वह अन्तर क्या है और किस विशेषता के कारण, यह अन्तर है यह समझने की बात है। शरीर और इन्द्रियां समान होने पर भी ज्ञानी और अज्ञानी में बड़ा अन्तर है। और वह अन्तर है समझ का। ज्ञानी वस्तु को दूसरी दृष्टि से देखता है और अज्ञानी दूसरी

छूटे हैं। ज्ञानी संसार में रहकर सब व्यवहारों का पालन करता हुआ भी संसार के पदार्थों में आसक्त नहीं रहता किन्तु अज्ञानी फँस जाता है। ज्ञानी हेय को हेय और उपादेय को उपादेय मानते हैं किन्तु अज्ञानी उपादेय को हेय और हेय को उपादेय समझता है। समझ का ही फर्क है। साधु भी शरीर पालन करते हैं मगर उसके द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही शरीर पालन का नाम लेकर जो लोग असली ध्येय से दूर हटते हैं वे पूर्ण नहीं बन सकते। पूर्णता उनसे दूर भगती है। समझ प्राप्त हो जाने पर संसार व्यवहार पूर्णता प्राप्त करने में बाधक नहीं हो सकता। ज्ञानी को त्रिलोक का राज्य देने का लोभ बताया जाय तब भी वह अपने ध्येयको नहीं छोड़ता। वह अपने आत्मिक सुख के सामने तीनों लोक के राज्यसुख को भी तुच्छ समझता है। मतलब यह है कि अनन्त या पूर्ण बनने के लिए दिल की भ्रांति मिटाना आवश्यक है।

शास्त्र चर्चा—

राजा श्रेणिक मुनि से कह रहा है कि हे मुने! आपको यह दुर्लभ मनुष्य शरीर मिला है, आप इसका अपमान क्यों कर रहे हैं। आपके इन सुन्दर कानों में कुण्डल कैसे अच्छे सोहेंगे। गले में हार कितना सुन्दर मालूम देगा। आप दिव्य शरीर को संयम धारण करके खराब क्यों कर रहे हैं। आप अनाथ हैं तो मैं आपका नाथ बनता हूं। चलिये मेरे राज्य में और भोग भोगिये।

मुनि का शरीर औदारिक शरीर है। उनको बिना मांगे और बिना परिश्रम के भोग की सामग्री और सनाथता मिल रही है। आप लोगों की दृष्टि में क्या कोई ऐसा मूर्ख व्यक्ति होगा जो ऐसे सुन्दर चांस (अवसर) को हाथ से खोदेगा। जिन भोगों के लिए मनुष्य लाला-यित रहता है और रात दिन जिनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील रहता है वे भोग अनायास ही प्राप्त हो रहे हैं। फिर भी मुनि उस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इसके विपरीत मुनि राजा से कहते हैं कि हे राजन्! मनुष्य जन्म की सार्थकता भोग भोगने में नहीं है वरन् भोग त्याग करने में है। भगवान ने कहा है—

नायं देहो देह भाजां नृलोके, कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।

हे पुत्रो! तुम्हारी यह देह भोग भोगने के लिए नहीं है। भोग तो सूअर खाकर [illegible] [illegible] भी भोगते हैं। वे भी [illegible] [illegible] करते हैं कि

भोग हमारे लिए हैं। उनके द्वारा भोगे जाने वाले भोगों को तुम अपना समझ कर कैसे भोगते हो।

कदाचित् बाघ मिलकर एक कॉन्फरन्स करें और इसमें यह प्रस्ताव पास करें, कि मनुष्य हमारे खाने के लिए ही बनाये गये हैं अतः मनुष्य भक्षण करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है तो क्या आप इस प्रस्ताव को मंजूर या पसन्द कर सकते हैं? कदापि नहीं। बाघ केवल हिंसा कर सकते हैं मगर मनुष्य में यह विशेषता है कि वह हिंसा और दया दोनों कर सकता है। दया करने में ही मनुष्य की मनुष्यता है। मनुष्य जीवन भोगों के लिए नहीं है। भोग तो पशु भी भोगते हैं और आनन्द मानते हैं

आप जिस सोने को पहिनकर अभिमान करते हैं क्या उस सोने की बनी जंजीर को कुत्ता नहीं पहिन सकता? आप जिस मोटर या बग्घी में बैठते हैं क्या उसमें कुत्ता नहीं बैठता? बड़े २ लार्ड और राजाओं के साथ उनके कुत्ते भी बैठते हैं। क्या इस से जमीन पर चलने वाला मनुष्य नीचे दर्जे का गिना जा सकता है। कभी नहीं। कुत्ता, कुत्ता ही रहेगा और मनुष्य, मनुष्य ही। कुत्ता तो क्या पर देवता भी मनुष्य की समता नहीं कर सकते। जितने भी तीर्थङ्कर या केवल ज्ञानी हुए हैं वे सब मनुष्य योनि में ही हुए हैं। मुसलमानों में भी जितने पयगम्बर हुए हैं वे इन्सान ही हुए हैं, फरिश्ते नहीं। मनुष्य जन्म का बड़ा महत्त्व है, वह भोग भोगने में पूरा करने के लिए नहीं है। तो क्या करने के लिए मनुष्य जन्म है? इसका उत्तर भागवत ने इस प्रकार दिया है।

तपो दिव्यं पुत्र कालेयन सत्वं सिद्धोयत् यस्मात् ब्रह्मसौख्यमनन्तम् ॥

ज्ञानी जन कहते हैं, यह मनुष्य शरीर भोग भोगने के लिए नहीं है मगर तप करने के लिए है। केवल अनशन करलेना अर्थात् भूखे रहजाना ही तप नहीं है। अनशन तो तप का अंग है। आजकल कुछ लोग अनशन तप की निन्दा किया करते हैं। वे कहते हैं कि अनशन कर कर के ही जैन लोग दुर्बल और बुज़दिल हो गये हैं। मेरा कहना इस का विपरीत है। मैं कहता हूं कि जैनियों में जो शक्ति और तेज विद्यमान है वह अनशन तप के प्रभाव से ही है। इस विषय में अभी अधिक नहीं कहता। अभी तो यह कहता हूं कि भोजन और मैथुन तो पशु पक्षी भी करते हैं। वे तप नहीं सकते। अज्ञान पूर्वक कष्ट सहन करते हैं, यह दूसरी बात है। मगर स्वेच्छा से कष्ट सहन करना और तपस्या करना उनके बूते के बाहर की बात है। [illegible] मनुष्य ही कर सकता है। देवता भी नहीं कर सकते।

मुनि भी राजा श्रेणिक से यही बात कह रहे हैं कि हे राजन ! यह दुर्लभ मनुष्य देह भोग भोगने के लिए नहीं है। जो लोग इस देह को भोग भोगनेका साधन मानते हैं वे अनाथ हैं। तू देह को ऐहिक सुख भोगने के लिए साधन समझता है अतः स्वयं अनाथ है। जो खुद अनाथ हो वह दूसरो का क्या नाथ बनेगा।

अप्पणावि अणाहोऽसि, सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कस्स नाहो भविस्ससि ? ॥ १२ ॥

हे मगधाधीप श्रेणिक ! तू स्वयं अनाथ है। स्वयं अनाथ होता हुआ तू किसका नाथ बनेगा ?

'यह शरीर भोग भोगने के लिए है' ऐसी भावना आते ही आत्मा गुलाम और अनाथ बन जाता है। भोग की सामग्री इकट्ठा करने के लिए उसे अनेक खटपटें करनी पड़ती हैं। किसी की खुशामद, किसी की गुलामी, किसी के द्वारा भली बुरी बातें सुनना आदि सब कुछ करना पड़ता है। मनुष्य समझता है कि उसके पास जो ऐश और आराम के साजो सामान मौजूद हैं उसके कारण वह नाथ है किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि बात इसमें ठीक उल्टी है। जिस साजो सामान के कारण वह अपने को नाथ मानता है उसीके कारण दरअसल में वह अनाथ अथवा गुलाम बना हुआ है। उदाहरणार्थ समझिये कि एक आदमी सोने के कड़े पहिन कर अभिमान में चकचूर हो रहा है। वह अपने को कड़ों का स्वामी या नाथ मानता है। क्या वह आदमी सचमुच अपने कड़ो का स्वामी है ? ज्ञानी कहते हैं, नहीं। वह कड़ों का स्वामी नहीं किन्तु कड़ों का गुलाम है। रात को कड़े पहिन कर जब वह सोता है तब इन कड़ों की फिक्र में उसे नींद नहीं आती है। कहीं कोई चोर आकर हाथ में से कड़े निकाल कर न ले जाय, हाथ ही न काट डाले अथवा इन कड़ों के कारण कहीं मुझे ही न मार डाले। आदि संकल्प विकल्प में नींद हराम हो जाती है। ये कड़े उसके लिए हाथों में हथकड़ी और मन में भय के कारण बन गये। कहिये, वह कड़ों का नाथ है अथवा उन का गुलाम ?

एक महात्मा और एक सेठ साथ साथ जंगल में से होकर कहीं जा रहे थे। महात्मा के तन पर कपड़ा नहीं था किन्तु सेठजी के [illegible] अंगुली में एक हीरे की अंगूठी पहिनी हुई थी। दोनों [illegible] चल रहे थे। इतने में किसी [illegible]

का भय नहीं था। भय की कल्पना भी न थी। किन्तु बहुमूल्य अंगूठी के कारण सेठजी का कलेजा धक् धक् कर रहा था। जरासा कहीं पत्ता हिलता कि सेठजी सशंकित हो जाते, कहीं चोर तो नहीं आ रहा है। अहा ! हीरा जटित अंगूठी के नाथ बने हुए सेठजी के दिल की क्या दशा हो रही है, वह या तो वे खुद ही जानते हैं या कोई ज्ञानी ही जानता है। यदि कोई चोर आही जाय तो मुनि को भागना पड़ेगा या सेठजी को। अंगूठी के चले जाने से सेठजी को ही हाय तोबा करना पड़ेगा। जो नाथ होता है उसके दिल की दशा ऐसी नहीं होती। वह तो अपने निजानन्द की मस्ती में मग्न होकर बिना किसी प्रकार के भय या शंका के बेखटके अपने रास्ते चला जायगा। उसे किस बात का डर हो सकता है।

आप लोग स्त्री को परणे हो या स्त्री आपको परणी है। यदि स्त्री को आप परणे हो तो स्त्री के मर जाने पर आपको दुःखतो नहीं होगा न ? यदि आपको स्त्री के मर जाने पर दुःखानुभव हुआ तो आप स्त्री के मालिक न रहे किन्तु उसके गुलाम बन गये। स्त्रियों के लिए भी यही बात है। जब स्त्री किसी को अपना पति मानती है तभी उसके मर जाने पर उसे रंडापा भोगना पड़ता है। यदि स्त्री किसी को पति न मानकर परमात्मा के साथ ही अपना सम्बन्ध जोड़ती तो उसे विधवा होने का दुःख कभी न होता। विधवा होने पर भी अनेक स्त्रियां परमात्मा से सम्बन्ध न जोड़कर सोने के दागिने से नेह करती है। दागिनों के चले जाने पर फिर कष्ट उठाना पड़ता है। मतलब कि संसार के प्राणी एक प्रकार के भ्रम जाल में फँसे हुए हैं। अशरण को शरण और शरण को अशरण मान रहे हैं। राजा श्रेणिक भी अपनी ऋद्धि सिद्धि को शरण रूप मान रहाथा और अपने मन्तव्य के अनुसार मुनि को आमंत्रित कर रहा है कि आपभी मेरे साथ चलिये और संसार के सुखोपभोग करके जीवन को सफल बनाईये।

मुनि ने साफ और सीधा उत्तर दे डाला कि हे राजन् ! तू स्वयं अनाथ है वैसी हालत में मेरा नाथ कैसे बन सकता है। मुनि के उत्तर पर हम लोग विचार करें कि क्या राजा के पास कुछ कमी थी जिससे उसको अनाथ कहा गया। उसको किसी बात की कमी न थी। वह विशाल मगध देश का नरपती था। फिर भी मुनि ने उसे अनाथ बताया यह आश्चर्य की बात है। मुनि झूठ भी नहीं बोलते यह हम विश्वास रखते हैं। वस्तुतः बात यह है कि हमारी नाथ और अनाथ की व्याख्या दूसरी है और मुनि के मत की व्याख्या जुदी ही है। जिस वस्तु को अपना कर मनुष्य उससे विरक्त न हो, उसके विनष्ट होने पर खेद करता हो और मिल जाने पर खुशी मनाता हो, वह वस्तु उसे अपना गुलाम बना लेती है।

ऐसी वस्तु का वह मनुष्य मालिक नहीं कहा जा सकता। व्यवहार में वह उसका मालिक या नाथ कहा जायगा किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि वह दिल से उस वस्तु का गुलाम बना हुआ है। किसी वस्तु का कोई सच्चा मालिक तो तब गिना जायगा जब वह जिस क्षण चाहे उसी क्षण उसका त्याग कर सके। त्याग करने में दुःख न हो किन्तु खुशी हो।

बन्धुओ! जब श्रेणिक जैसा राजा भी अनाथ था तो आप किस गिनती में हैं। आप अपना ख्याल कीजिये कि हम भोगों के गुलाम हैं या मालिक? संसार के पदार्थ किसी को कैसे नाथ बना सकते हैं। जो जिस वस्तु का मालिक नहीं होता वह यदि उस वस्तु को किसी दूसरे को दे डालता है तो वह चोरी गिनी जाती है। जो स्वयं नाथ नहीं है वह दूसरों को स्वामित्व प्रदान कैसे कर सकता है। क्या यह अन्याय नहीं है कि एक अनाथ दूसरे का नाथ बनने की कोशिश करे।

मीरा को उसकी एक सखी ने कहा कि तेरा बड़ा भाग्य है जो राणा जैसे पति मिले हैं। रहने को सुन्दर महल और सुख भोगने के लिए विशाल वैभव मिला है। मीरा तू उदास क्यों रहती है। क्या राणा और यह वैभव तुझे अच्छा नहीं लगता? उठ! मैं तेरा और राणा का पारस्परिक मेल करा दूं। राणा मेरी बात मानते हैं। सखी का कथन सुनकर मीरा हँसने लगी। सखी कहने लगी कि स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा है कि अपना मानसिक अपना विचार वे स्वयं प्रकट नहीं करतीं। हँसी आदि चेष्टाओं से अपनी भावना बता देती हैं। मीरा! तेरी हँसी से मुझे मालूम होता है कि तू मेरी बात को स्वीकार करती है। क्यों ठीक है न? मीरा ने यह सोचकर कि [illegible] में उत्तर दिया कि—

सुन्दरी नो सुख कामो परणी बेठाडुं पाछे।
तेने घेर केम जईये मोहन प्यारा ॥ मुखडा नी माया लागी रे ॥

हे सखी! [illegible] कुछ नहीं [illegible] है। [illegible] किन्तु [illegible] प्रदान [illegible]

आदमी को अपना पति नहीं बनाती । ऐसा पति क्यों न बनाऊं जो सदा अमर रहे । 'वर वरिये एक साँवरोजी, चूडलो अमर हो जाय' ।

मीरा के समान ही फक्कड़ योगी आनन्द घन ने भी कहा है:—

ऋषभ जिनन्द प्रीतम माहरा और न चाहूं कन्त ।
रीझयो साहिब संग न परिहरे भांगे सादि अनन्त ॥

केवल स्त्री के साथ ही विवाह नहीं होता किन्तु भगवान् के साथ भी होता है । बूढ़े जवान बालक धनी गरीब सब भगवान् से अपना सम्बन्ध जोड़ सकते हैं । भगवान् से सम्बन्ध करने में जाति पांति का भी खयाल करने की जरूरत नहीं होती । यह विवाह अलौकिक है । उस अलौकिक प्रीतम से प्रेम तभी किया जा सकता है जब लौकिक प्रीति से प्रेम छूट जाय । परमात्मा के साथ प्रेम जोड़ने से अखण्ड सौभाग्य प्राप्त हो जाता है । मैं तो लग्न जुड़वा देने वाला पुरोहित हूं अतः अधिक कुछ न कह कर जिनकी इच्छा हो उनका परमात्मा के साथ सम्बन्ध करादूं । हमने तो खुद परमात्मा से लग्न कर लिया है । मैं अपने साधुओं से कहता हूं कि हम लोग परमात्मा से मेल करने के लिए घरबार छोड़ कर निकले हैं अतः कहीं ऐसा न हो कि श्रावकों या क्षेत्र विशेष के मोह में फँस जायँ और अपने मूल उद्देश्य को भूला दें ।

आप लोग संसार की जिन वस्तुओं से सगाई करना चाहते हो पहले उन से पूछ तो लो कि हमें दगादेकर बीच में सम्बन्ध विच्छेद तो न कर लोगी ? सब से पहले अपने शरीर ही से पूछिये कि जब तक मेरी इच्छा मरने की न हो तब तक तू मुझे छोड़ तो न देगा ? हाथ कान नाक आंखे आदि सब अंगों से पूछ देखिये कि मेरी मरजी के बिना तुम बीचही में दगा तो न करोगे ? यदि ये सब बीच ही में दगा दे सकते हैं तो इनके साथ आप कैसे बंध जाते हो क्यों इनसे प्रेम करते हो । भक्त लोग इस बात को समझते है अतः संसारकी किसी भी वस्तु के साथ वे अन्तरंग से प्रेम नहीं जोड़ते । अन्तरग से प्रेम एक मात्र परमात्मा से ही जोड़ते है, जो कभी जुदा नहीं होता ।

आप कहेंगे कि तब हम क्या करें ' मेरा उत्तर है कि आप इस शरीर को परमात्मा की सेवा में लगा दीजिये । मैं यह नहीं कहता कि आप शरीर को नष्ट कर डालिये या आत्म हत्या कर डालिये किन्तु प्रभु की प्राप्ति के लिए इसका उपयोग कीजिये । भोगों में इसका उपयोग मत करिये । परमात्मा से प्रेम ऐसा न कीजिये कि शरीर या प्रेम दोनों में से किसी एक

पिता की बात सुनकर सुदर्शन स्वाभाविक रूप से शरमा गया न मालूम विवाह की बात में कौनसा जादू भरा है कि कितना भी उद्दण्ड से उद्दण्ड व्यक्ति होगा तो भी विवाह के नाम से एक बार झेंप जायगा। सुदर्शन तो सुशील और कुलीन था। उसने गरदन नीची कर ली और कहने लगा पिताजी! यह घर मेरे से पूर्ण नहीं है, मेरे विवाह कर लेने पर पूर्ण बनेगा, ऐसा आपका विचार है, किन्तु क्या मेरे ब्रह्मचारी रहने से घर अपूर्ण और अशोभनीय गिना जायगा? पूज्य पिताजी! मेरी समझ के अनुसार तो ब्रह्मचारी का घर विशेष शोभास्पद होगा। जो ब्रह्मचर्य का पालन करके जगत् का निस्तार करते हैं वे तो महापुरुष गिने जाते हैं। जिनदास ने कहा, प्यारे पुत्र! यह बात श्रावक होने के कारण मैं भी मंजूर करता हूं कि ब्रह्मचर्य पालना बहुत उत्तम बात है, उसकी बराबरी कौन कर सकता है। मगर कभी कभी ऐसा होता है कि ब्रह्मचर्य का पालन भी नहीं होता और विवाह भी नहीं किया जाता। यह स्थिति अच्छी नहीं है। इससे तो यह बेहतर तरीका है कि एक स्त्री के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लिया जाय और गृहस्थी के गाड़े को सुन्दर ढंग से चलाया जाय। वे महापुरुष धन्य हैं जो आजीवन कठोर शील व्रत का पालन करके प्रभुप्राप्ति में अपने आपको लगा देते हैं। हमारे कुल में नीति विरुद्ध किसी काम का दाग न लगे अतः पंचों की साक्षी से हम तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं। तुम्हारी स्वीकृति के बिना हम नहीं करना चाहते। अतः स्वीकृति देओ। विवाह करना गृहस्थ का धर्म है। विवाह करके स्वदार सन्तोष व्रत का पालन किया जाता है। स्वस्त्री के सिवाय इतर प्रकार के सब मैथुन का त्याग किया जाता है। विवाह करने वाले को कोई पापी नहीं कहता। विवाह करना मध्यम मार्ग है। पापी तो वह गिना जाता है जो लोगों की दृष्टि में से अपने को अविवाहित दिखाकर अन्य तरीकों से अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है।

सुदर्शन ने विचार करके उत्तर दिया कि, पिताजी आप मेरा विवाह कर दीजिये। किन्तु मेरे लिए ऐसी कन्या ढूंढिये जो अत्यन्त सुन्दरी न हो किन्तु कुरूप भी न हो, कोमल भी न हो कठोर भी न हो, स्वच्छन्द भी न हो डरपोक भी न हो। मेरे काम में विघ्न डालने वाली न हो किन्तु जिसको मैं अच्छा मानता होऊं उसे वह भी अच्छा माने। मेरी रुचि के अनुसार उसकी भी रुचि हो। मैं उसे देख कर सन्तोष पाऊं और वह मुझे देख कर संतोष पावे। मैं उसके सिवा दुनिया की सब स्त्रियों को मा बहिन मानूं और वह भी मेरे सिवा सब पुरुषों को पिता भाई माने। मेरे काम वह कर सके और उसके मैं। यदि ऐसी कोई कन्या

भूरि प्रशंसा करते हैं। ऐसी कन्याएं हमारे समाज में भी होतो क्या हर्ज है ? मैं जबरदस्ती ब्रह्मचर्य पलवाने की बात नहीं करता मगर कोई कन्या स्वेच्छा से ऐसा करना चाहे तो उस के लिए यह मार्ग खुला रहना चाहिए।

आखिर सुदर्शन और मनोरमा का सम्बन्ध हो गया। दोनों ने आपसी बातचीत से एक दूसरे को समझ लिया। आजकल विवाह में बड़ी धूमधाम होती है और वृथा खर्चा भी बहुत किया जाता है किन्तु पुराने जमाने में एक ही दिन में सगाई और विवाह हो जाता था। दक्षिण देश में अभी भी यह प्रथा चालू है। यदि कन्या के पिता की सामर्थ्य है तो वह बारातियों को रोकता है और उन्हें जीमाता है अन्यथा वे चुपचाप अपने घर चले जाते हैं।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह विधि पूर्वक सम्पन्न होगया। पुत्र का ..न जाने पर माता पिता का क्या कर्त्तव्य है यह बात जिनदास और अर्हदासी के चरित्र होगा।

राजकोट
३०—७—३६ का
व्याख्यान

भूरि प्रशंसा करते हैं। ऐसी कन्याएं हमारे समाज में भी होतीं क्या हर्ज है? मैं जबरदस्ती ब्रह्मचर्य पलवाने की बात नहीं करता मगर कोई कन्या स्वेच्छा से ऐसा करना चाहे तो उस के लिए यह मार्ग खुला रहना चाहिए।

आखिर सुदर्शन और मनोरमा का सम्बन्ध हो गया। दोनों ने आपसी बातचीत से एक दूसरे को समझ लिया। आजकल विवाह में बड़ी धूमधाम होती है और वृथा खर्चा भी बहुत किया जाता है किन्तु पुराने जमाने में एक ही दिन में सगाई और विवाह हो जाता था। दक्षिण देश में अभी भी यह प्रथा चालू है। यदि कन्या के पिता की सामर्थ्य है तो वह बारातियों को रोकता है और उन्हें जिमाता है अन्यथा वे चुपचाप अपने घर चले जाते हैं।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह विधि पूर्वक सम्पन्न होगया। पुत्र का विवाह हो जाने पर माता पिता का क्या कर्त्तव्य है यह बात जिनदास और अर्हद्दासी के चरित्र से ज्ञात होगा।

राजकोट
३०—७—३६ का
व्याख्यान

परमात्म प्रीति

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवड़े बसो, प्यारा प्राण समान । ध्रु० ।

[illegible]

प्रार्थना विषयक विवेचन में चाहे किसी को पुनरुक्ति दोष मालूम देता हो मगर यह मेरा प्रिय विषय होने से दोष की परवाह किये बिना मैं इस पर कहता रहता हूँ।

प्रीति सगाई जग मां सौ करे, प्रीति सगाई न कोय।
प्रीति सगाई निरुपाधिक करी, सोपाधिक धन खोय ॥

योगी आनन्दघनजी कहते हैं कि प्रीति करने का रिवाज संसार में बहुत है। सब कोई प्रीति करते हैं और करने के लिए लालायित भी रहते हैं। मगर इस बात का निर्णय करना कठिन है कि यह प्रीति सोपाधिक है अथवा निरुपाधिक। प्रीति सकाम है या निष्काम। यद्यपि यह निर्णय कठिन है फिर भी सामान्य तौर से कहा जा सकता है कि संसार के पदार्थों के साथ किया जाने वाला प्रेम सोपाधिक होगा और परमात्मा के साथ किया गया निरुपाधिक।

संसार की प्रीति सोपाधिक कैसे है, यह जानने के लिये सब से पहले शरीर पर नजर डालिये। शरीर से मनुष्य प्रेम करता है किन्तु क्या मनुष्यों ने अनेक शरीर अग्नि की भेंट नहीं किये हैं? जिस शरीर को अपना मानते थे उसे भस्म देने में अपनापन कहां रहा? वास्तव में जो चीज कभी न कभी जुदा हो सकती है उससे किया हुआ प्रेम वास्तविक नहीं हो सकता। मनुष्य ने अज्ञानवश जड़ शरीर को अपना मान रखा है किन्तु एक दिन ऐसा आता है कि उसे अपना प्राणप्रिय शरीर को छोड़ देना पड़ता है। शरीर की प्रीति सोपाधिक प्रीति हुई। आत्मा के निज गुणों के साथ की प्रीति ही सच्ची और निरुपाधिक प्रीति है क्या आप लोगों कभी इस विषय पर विचार किया है।

लोग अपने कंधों पर अर्थी को उठाकर सैकड़ों मुर्दे अपने हाथों से जला आते हैं और यह क्षणिक कल्पना भी करते हैं कि एक न एक दिन इस शरीर को छोड़ देना पड़ेगा फिरभी यह सोपाधिक प्रीति नहीं छुटती। किसी मनुष्य के हाथ में सोने की हथकड़ी डली जाय तो क्या उसे दुःख न होगा? सोने की होने पर भी, है तो हथकड़ी ही और हाथों में होने से बड़ी अड़चन रहती होगी फिर भी सोने के मोह में फँसा हुआ मनुष्य उसे हथकड़ी न मानकर गौरव अनुभव करता है, यह आश्चर्य है। यदि मनुष्य में सच्ची समझ आ जाय तो वह ऐसी वस्तुओं से कभी प्रीति न करे जो बीच ही में दगा देकर अलग हो जाय। प्रीति वही सच्ची है जो सदा कायम रहे। सच्ची और निरुपाधिक प्रीति करने के लिए उपाधि और उपाधि के कारणों को त्यागना पड़ेगा। जिस प्रीति में किसी प्रकार की लाग लपेट हो,

जो प्रीति पराश्रित हो, जिसमें किसी वांछा की पूर्ति की ख्वाहिश हो तथा जो कायमी न हो वह सोपाधिक प्रीति है । किन्तु जो प्रीति स्वाश्रित हो, आत्मिक गुणों के साथ हो अथवा परमात्मा के साथ हो और कभी साथ छोड़ने वाली न हो वह निरुपाधिक प्रीति है । परमात्मा से निरुपाधिक प्रीति करने से आत्मा की अनादि कालीन भूख मिट सकती है ।

शास्त्र चर्चा—

निरुपाधिक प्रीति कैसे की जाती है यह बात शास्त्र विवेचन द्वारा बताई जाती है । राजा श्रेणिक और अनाथी मुनि दोनों वृक्ष के नीचे बैठे हैं । दोनों महाराजा हैं, मगर भिन्न भिन्न प्रकार के । राजा सोपाधिक प्रीति को सच्ची प्रीति मानता है और मुनि निरुपाधिक प्रीति को । जो इष्ट है प्रिय है प्रत्यक्ष आनन्द-दायक है उससे प्रेम करना प्रीति है यह बात मानकर ही राजा मुनि से कह रहा है कि आप मेरे साथ चलिए और संसार का मजा लूटिये । मैं आपका नाथ होता हूं । किन्तु इससे विपरीत मान्यता वाले अनाथी मुनि उत्तर देते हैं कि राजन् तू भूल में है । जिन पदार्थों के कारण मनुष्य गुलाम बना हुआ रहता है उनके होने से वह नाथ कैसे हो सकता है । तू स्वयं अनाथ है, मेरा नाथ कैसे बनेगा ।

मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत आश्चर्यान्वित हुआ । वह सोचने लगा कि मैं इनका नाथ बनने गया तो उल्टा मुझे ही अनाथ बना दिया । आश्चर्य में आकर राजा क्या कहता है यह शास्त्रीय गाथाओं द्वारा सुनिये ।

एवं वुत्तो नरिन्दो सो सुसंभन्तो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुय पुव्वं साहुणा विम्हयन्निओ ॥१३॥
अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अन्तेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोए आणा इस्सरियं च मे ॥१४॥
एरिसे सम्पयग्गम्मि, सव्वकाम समप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भन्ते ! मुसं वए ॥१५॥

मुनि के द्वारा यह कथन सुनकर कि 'राजन् तू [illegible] है [illegible] बनेगा' राजा को रोष आ गया । वह क्षत्रिय था । क्षत्रिय [illegible] मान गई [illegible] मेरे सामने कहते रहते हैं 'आप नहीं [illegible]

लगता है'। आपको बुरा नहीं लगता है यह अच्छी बात नहीं है। इसका अर्थ हुआ हमारे कथन का आप पर कुछ भी असर नहीं होता। यह बनियापन है। कहावत है कि— 'सिंह को बोल लगता है' अर्थात् सिंह के सामने गर्जना की भाप तो वह सामने होता है।

बड़े घासीरामजी महाराज जो कि मेरे धर्मोपदेशक थे, मेवाड़ के एक ग्राम के रहने वाले थे। मेवाड़ में झाड़ियाँ बहुत हैं। उन्होंने बताया कि—'एक बार मैं करौंदे खाने के लिए जंगल में गया था। वहाँ एक बाघ मेरे सामने दौड़ आया। मुझे तब भय लगा था किन्तु यह सुन रखा था कि—'बाघ की आँखों से आँखें मिलाये रहने से वह आक्रमण नहीं करता' मैं भी उस बाघ की आँखों से अपनी आँखें मिलाकर खड़ा हो गया। सिंह मेरी ओर ताकता रहा और मैं सिंह की ओर। एक पलक भी न मारी। अन्त में बाघ दूर जाकर धीरे २ लौटने लगा। मैंने यह भी सुन रखा था कि सिंह को बोल लगता है और वह ललकारने पर सामना करता है। इस बात की जाँच करने के लिए मैंने ललकार लगाई कि तुरंत सिंह वापस मेरा सामना करने के लिए आगया। मैं सोचने लगा कि अब की बार यह मुझे जिन्दा न छोड़ेगा किन्तु मैंने उसी प्रकार उसके समक्ष एक टकी लगा कर देखना आरंभ किया जिस प्रकार प्रथम अवसर पर रखा था। अब यदि यह चला जाय तो आयन्दा कभी ललकार न किया करूँगा। थोड़ी देर तक मुझ से दृष्टि मिला कर धीरे धीरे सिंह अपने रास्ते [illegible] गया।

मतलब यह है कि सिंह को बोल लगता है। आप लोगों को भी बोल लगाना चाहिए, मगर आप लोगों ने बनिया वृत्ति धारण कर रखी है अतः वचन नहीं लगता। राजा [illegible] क्षत्रिय था। वह यह बात सहन न कर सका कि 'यह अनाथ है'। 'किसी गरीब आदमी को अनाथ कह जाता तो बात सच्ची भी हो सकती थी किन्तु मुझ जैसे चाहे सम्राट आदि को अनाथ कह डालना कहाँ तक उचित है'। इस प्रकार सोचता हुआ राजा [illegible] हो गया। 'यदि अनाथ न मैं ये मुनि मुझे अनाथ कह देते तो भी मुझे दुःख न होता किन्तु [illegible] हुए इन्होंने मुझे अनाथ कहा है, यह कैसे सहन करूँ'।

[illegible] के मर्मस्थलों का [illegible] है। [illegible] मैं [illegible] उसका उद्घाटन करने में मैं असमर्थ हूँ फिर भी मुझे जो बात मालूम होती है वह [illegible] हूँ। [illegible] पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है कि [illegible] [illegible]। [illegible] भी [illegible] है और [illegible]। [illegible] अनाथ

राजा श्रेणिक साहसी व्यक्ति था अतः मुनि से कहने लगा कि 'मुनिराज ! मैं मगधेश हूं। मैं मगधेश का नाम मात्र का राजा नहीं हूं किन्तु राजा होने के लिए जिन रत्नों की जरूरत होती है वे अश्व रत्न आदि मेरे यहां है। मेरे यहां हाथी झूम रहे हैं। जितना जनसमुदाय मेरी सेवा करने वाला है उतना शायद ही किसी के हो। मैं अपने घोड़ों का खर्च डाका डाल कर नहीं चलाता हूं किन्तु बड़े २ नगरों के आयकर से चलाता हूं। बड़े २ राजाओं ने अपना अहोभाग्य समझ कर अपनी कन्या मुझे समर्पित की हैं। जो कन्याएं मेरी रानी बनी हैं वे भी अपने भाग्य की सराहना करती हैं कि मुझ जैसा पति उन्हें प्राप्त हुआ है। कई राजा ऋद्धि सम्पन्न होने पर भी रोगी रहते हैं अतः सुखानुभव नहीं कर सकते किन्तु मैं मनुष्य सम्बन्धी भोग भी बखूबी भोगता हूं। कई राजा (गूमड़ा) के समान होते हैं। फोड़े पर दवाई लगाई जाती है और मक्खियाँ उड़ाई जाती हैं उसी प्रकार उनका राज्याभिषेक करके चँवर उड़ाये जाते हैं। उनकी आज्ञा का कोई पालन नहीं करता। किन्तु मेरी आज्ञा अखण्ड चलती है। किसी की क्या ताकत है कि मेरी आज्ञा न माने। मुझे आपने अनाथ कहा है, इस बात का अचरज तो है ही, साथ में आप जैसे निर्ग्रन्थ मुनि भी झूठ बोलते हैं, इस बात का भी बड़ा ताज्जुब है। जिस प्रकार पृथ्वी द्वारा आधार न देना, सूर्य द्वारा प्रकाश न करना, आश्चर्यजनक है उसी प्रकार मुनि द्वारा झूठ बोलना भी आश्चर्यजनक है। मुनियों के लिये मेरे दिल में यह धारणा है कि वे झूठ नहीं बोला करते किन्तु आप मुझे अनाथ कह कर सरासर झूठ बोल रहे हैं। मुनिवर ! आपको झूठ न बोलना चाहिए'।

राजा ने मुनि से कहा तो यह कि आप झूठ मत बोलिये किन्तु कितनी विवेक भरी वाणी में। 'मा हु भंते ! मुसं वये' 'हे भगवान् ! झूठ मत बोलिए'। वाणी में विवेक की बड़ी जरूरत है। आदमीकी पहिचान उसकी बोलीसे होती है। इसके लिए एक कथा प्रसिद्ध है।

राजा भोजके समय में एक अन्धा आदमी था। वह राजासे मिलना चाहता था किन्तु अपने अन्धेपन और फटे पुराने कपड़ों का ख्याल सोचकर चुप रह जाता था किन्तु उसे राजासे मिलने की उत्कट इच्छा थी अतः रात दिन इसी फिराक में रहता था कि राजा से भेंट हो जाय। एक दिन उसने सुना कि राजा भोज इसी रास्ते से निकलने वाला है वह मार्ग में जाकर खड़ा हो गया। अंधे को रास्ते में खड़ा देखकर राजाके सिपाहीने उसे दूर खड़ा होने की बात कही। वह थोड़ा इधर उधर खिसक गया और वापस बीचरास्ते में खड़ा हो गया। भोज के सिपाही [illegible] उसके देखते रह जाता और उसके वहां

से चले आने पर अन्धा अपने स्थान पर आकर खड़ा हो जाता। ऐसा होते २ राजा स्वयं आ गया और अन्धे को देखकर पूछा कि कहो अन्धराज! मार्ग में कैसे खड़े हो? अन्धे ने कहा महाराज! आपकी मुलाकात के लिए खड़ा हूं। राजाने पूछा कि क्या तुम्हें दिखाई देता है जिससे तुमने मुझे पहिचान लिया। अन्धेने कहा, हजूर! जरा भी नहीं दिखाई देता। राजा ने पुनः प्रश्न किया, तब मुझे तुमने कैसे पहिचान लिया कि मैं ही राजा हूं। अन्धेने कहा! आपकी बोली से जान लिया कि आप ही राजा होंगे। आपके पहले अनेक सिपाहियों ने मुझसे रास्ते में से हट जाने के लिए 'चल बे अन्धे रास्ते में से हट जा' शब्द कहे थे किन्तु जब आपके मुख से 'अन्धराज' शब्द सुना तो मैंने अन्दाजा लगा लिया कि ये राजा ही होंगे। बड़े आदमी बड़े आदरवाची शब्दों का प्रयोग किया करते हैं। दूसरों के लिए किये गये शब्द प्रयोग से प्रयोग करने वाले के छोटे बड़े दिल का पता लग जाता है। राजा ने उसकी इच्छा पूरी करके उसे विदाई दे दी।

राजा भोजने अन्धे को अन्धा तो कहा मगर कितने विवेकपूर्ण आदर के साथ कहा। यही बात श्रेणिक के लिए भी लागू होती है। झूठ बोलने से रोकने के लिए कितने आदर वाले संबोधन से संबोधन किया। कहावत है कि—'वचने का दारिद्रता' अगर देने को कुछ न हो तो मीठे शब्द बोलने में क्यों कमी रखते हो।

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजे चहुं ओर।
वशीकरण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥

फारसी में भी कहा है—

जन के अधीन रहना प्यारी जबां दहन में।

हे प्यारे [illegible]! [illegible]

[illegible]

पूर्वज ने स्वप्न में आपको यह बताया कि आपके घर में एक तरफ सोना और दूसरी तरफ कोयला गड़ा है। देवयोग से आपके हाथ में कुदाला भी आगया। आप सोने की तरफ खुदाई करेंगे या कोयले की तरफ? यदि कोयले की तरफ खुदाई करेंगे तो कोयला हाथ पड़ेगा और हाथ काले होंगे सो अधिकाई में। हाथ मुँह में लगेंगे तो मुख भी काला होगा। आप कहेंगे हम सोना कहां छोड़ने वाले हैं, हम इतने मूर्ख नहीं है जो सोने को छोड़ कर कोयले की तरफ नजर करें। बन्धुओं! यही बात मैं भी आप से कहना चाहता हूं कि आप अपनी जबान से हित, मित और मनोहारी शब्दों का उच्चारण करके सोना निकालिये। अहितकारी और दुःख पहुँचाने वाले शब्दों का उच्चारण करके कोयला निकाल कर अपना मुख काला मत करिये।

बहिनों को भी मेरी खास आग्रह पूर्वक सूचना है कि वे गन्दे और भद्दे शब्द अपनी पवित्र जबान से न निकालें। कई स्त्रियाँ अपने लड़के को 'खोजगया' 'लकड़ में गया' आदि शब्दों से पुकारती हैं। यदि लड़के का खोज चला गया या वह लकड़ में पहुँच गया तो तुम्हारा क्या हाल होगा, यह तो सोचो। यह सब अज्ञानता का चिह्न है। आप लोग साधुओं की सत्संग करती हैं फिर भी ऐसे वचन बोलती हैं, यह जानकर दुःख होता है। भोजने अंधे को अन्धराज कहा था अतः वह राजा माना गया किन्तु दुष्ट सिपाहियों ने 'ओ बे अन्धे' कहा था अतः सिपाही ही समझे गये। जिसके पास जैसी वस्तु होती है वह दूसरों को वही देगा अन्य वस्तु कहां से लायगा। एक कवि कहता है—

ददतु ददतु गालीर्गालिवन्तो भवन्तः,
वयमिह तदभावात् गालिदाने ऽसमर्थाः।
जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं,
नहि शशक विषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥

अर्थ—आप हमें गाली दीजिये, क्योंकि आप गाली वाले हैं। हमारे पास गाली नहीं है अतः हम आपको गाली देने में असमर्थ हैं यह बात जगत् में विदित है कि जो वस्तु जिसके पास होती है दूसरों को वही वस्तु देता है। खरगोश का सींग कोई किसी को नहीं देता क्योंकि उसके होता ही नहीं है।

जापे जैसी वस्तु है वैसी दे दिखलाय।
वाको बुरा न मानिये वो लेन कहाँ से जाय॥

सहकारिता प्रकट होती है अतः अच्छी वाणी बोलनी चाहिए। आप लोग श्रावक और व्यापारी हो अतः ध्यान रखो कि कहीं आपकी वाणीसे आपके श्रावकत्व और व्यापारीपन में धक्का नहीं लग रहा है।

श्रेणिक राजाने मुनि को झूठ न बोलने के लिए उपालम्भ तो दिया है मगर उपालम्भ देने के लिए किस सभ्यता, नम्रता और विवेक का प्रयोग किया है उस पर ध्यान दीजिए।

सुदर्शन चरित्र

> रूप कला यौवन वय सरखी सत्य शील धर्मवान्।
> सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी महान् रे धन ॥१७॥
> श्रावक व्रत दोनो ने लीना पोषध और पचखान।
> शुद्ध भाव से धर्म अराधे, अदलक देवे दान रे धन ॥१८॥

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह सम्पन्न हो चुका है। आज विवाह प्रथा को सहज एक सामान्य वस्तु माना जाता है किन्तु विचार करने से ज्ञात होता है कि इसके पीछे गहरे तत्व छिपे हुए हैं। यह प्रथा भगवान ऋषभदेव ने चालू की है। मनुष्यों को मर्यादित और समाज में शान्ति रखने के लिए ही भगवान ने यह रिवाज दाखिल किया कि सब कोई अपना जोड़ा चुन ले और जीवन पर्यन्त उसके साथ अपना निर्वाह करे। सब से पहला विवाह स्वयं भगवान ऋषभदेवने सुमंगला के साथ करके यह परम्परा जारी की है।

यह बात समझने की है। विवाह करने का अधिकार किसको है और किसके साथ है? आजकल रुपयों का रुपयों के साथ विवाह होता है। रूप, शील और गुण में जो समान नहीं होते हैं उनको केवल धन देखकर जोड़ दिया जाता है। कुजोड़ या बेजोड़ विवाह करके प्रेम की कैसे आशा रखी जा सकती है। प्रेम की जड़ में पहले ही आग लगादी जाती है। पुरुष मन माने कार्य करने लगे और कहने लगे कि पुरुषों को सब कुछ करने का अधिकार है तो यह पुरुषों की ज्यादती है। पुरुषों ने ही लग्न की मर्यादा को भंग किया है। शास्त्र कहता है कि जो मर्यादा का पालन करता है वह पुरुषोत्तम है। जो मर्यादा का लोप करता है वह अधम पुरुष है विवाह में योग्य जोड़ा होना चाहिए। आजकल तो कहा जाता है कि '[illegible] लाकड़ा जोडना है, कारीगर जैसे चाहे जोड़दे'।

वर और कन्याओं का विवाह जोड़ने के लिए रुपयों की मांग करना कितना भद्दा और अनुचित रिवाज है यह स्त्र है या विक्रय चाहे विलायत जाने के नाम पर चाहे पढ़ाई के नाम पर, रुपये मांगना वर विक्रय ही गिना जायगा। क्या जाति वाले इन बातों पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते। लड़की वाला खुश होकर अपनी कन्या को कुछ भी दे यह बात दूसरी है मगर पहले से ही सौदा तै करना, बुरी बात है। इस प्रकार के सौदे में संतान के प्रति करुणा बुद्धि नहीं रह पाती। मुख्य बात लेन देन हो जाती है। रूप गुण और शील आदि गौण बन जाते हैं। भगवान् ने दूसरे व्रत में 'कन्नालिए' अर्थात् कन्या सम्बन्धी झूठ बोलने का निषेध किया है। इस में पुरुषों को पहले क्यों नहीं लिया, स्त्रियों को क्यों लिया गया? इसका कारण यह है कि नारी जाति माता का रूप लेती है। उसका आदर होना चाहिए।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

जहां नारियों का आदर सत्कार होता है वहां देवता रमण करते हैं। लक्ष्मी वहीं रहती है और वहीं आनन्द भी।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह हो गया है। विवाह इस लिए होता है कि जो काम स्त्री या पुरुष अकेले नहीं कर सकते वह दोनों मिलकर करें। कोई यह पूछे कि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्री या पुरुष अकेले नहीं कर सकते तो उनके लिए दृष्टान्त है, संसार में सब से प्रधान काम मनुष्यों की उत्पत्ति [illegible]। क्या मनुष्य कभी अकेली स्त्री से या अकेले पुरुष से उत्पन्न हुआ है? कदापि नहीं। जगत् की भावी पीढ़ी का निर्माण स्त्री पुरुष के जोड़े से ही होता है। प्रकृति ने [illegible] स्त्री पुरुष को जोड़ा है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों मिलकर ही सम्पूर्ण बनते हैं।

[illegible]

जैन रामायण में इस विषय की एक कथा है। राम लक्ष्मण और सीता वन में जा रहे थे। सीता ने लक्ष्मण से कहा कि लक्ष्मण मेरा मुँह कैसा हो रहा है, देखते हो। लक्ष्मण ने कहा जीहां देखता हूं आपको प्यास लग रही है। इतने में एक घर दिखाई दिया। राम ने कहा, वहां तलाश करो, पानी मिल जायगा। तीनों उस घर में गये। यह घर ब्राह्मण का था। उस समय ब्राह्मण कहीं बाहर गया हुआ था। ब्राह्मणी घर में थी। वह तीनों को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई। उसे इतना आनन्द मानो घर में देवता आगये हों ब्राह्मणीने एक चटाई डालदी और बैठनेके लिए प्रार्थनाकी। मीठी बातोंसे ही ब्राह्मणीने उनकी प्यास बुझादी। फिर ठंडा जल भर कर लाई और सब को पिला दिया। सब बातें कर रहे थे कि इतने में ब्राह्मण देवता बाहर से घर आ गये। तीनों को देखकर ब्राह्मण बहुत क्रुद्ध हुआ। तीनों के कपड़े धूल में भरे हुए थे ही। उसने सोचा न मालूम ये कौन हैं। ब्राह्मणी से कहने लगा 'न मालूम किन किन को घर में बुलाकर बैठा लेती है। मैं अनेक बार हिदायत कर चुका हूँ मगर तू ध्यान नहीं देती। आज इसके लिए मैं तुझे दण्ड दूँगा' यह कहकर ब्राह्मण चूल्हे में से जलती हुई लकड़ी लाया और उससे ब्राह्मणी को जलाने लगा। ब्राह्मणी सीता के पीछे पीछे छिपने लगी और बचाव के लिए प्रार्थना करने लगी। रामचन्द्र ने ब्राह्मण से कहा कि भाई यह क्या करता है। मगर वह लातों का आदमी बातों से कैसे मान सकता था। जब वह न माना और ब्राह्मणी को जलाने के लिए भागता ही रहा तब लक्ष्मण की आंखें लाल हो गईं और उन्होंने उसकी टांग पकड़ कर आकाश में फेंक दिया। राम कहने लगे, लक्ष्मण! यह ठीक नहीं किया। हम लोगों ने इस के घर आकर सत्कार पाया है और पानी पिया है। लक्ष्मण ने कहा, फेंक दिया है मगर वापस सम्भाल लूंगा, मरने न दूंगा। ज्योंही यह ब्राह्मण नीचे गिरा लक्ष्मण ने झेल लिया। उनकी शक्ति देखकर ब्राह्मण का दिमाग ठंडा हुआ।

कहने का भावार्थ यह है कि स्त्री भली हो और पुरुष नीच होतो भी काम नहीं चलता। राम जैसों का भी उस घर में अपमान हो जाता है। अतः विवाह में जोड़ी समान स्वभाव और गुणवाली होनी चाहिए। किन्तु पैसे के लोभी दलाल लोग जोड़ी नहीं देखते। वे तो अपनी दलाली सीधी करने के लिए मनमानी झूठी सच्ची बातें मिलाकर काम को पार लगा देते हैं। फिर बींद जानो या बींदनी। पूज्यश्री श्रीलालजी म० एक गांव में पधारे थे, वहां एक बूढ़ा शादी करना चाहता था। पूज्यश्री ने उस बूढ़े को समझाकर शादी न करने की प्रतिज्ञा दिलादी। इस बात से दलाल लोग बहुत नाराज हुए और कहने लगे [illegible] इनाम की थैली पर आपने लात मार

दी। बन्धुओं! इसमें महाराज का क्या दोष था। बुरे काम करने वाले संतों पर भी दोषारोपण कर देते हैं।

सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी बड़ी योग्य थी। दोनों का स्वभाव रूप गुण के आदि समान थे। दोनों के धार्मिक खयालात भी समान थे। जहां पति पत्नि में धार्मिक विश्वास में अन्तर होता है वहां सच्चा प्रेम नहीं हो सकता। वह प्रेम शारीरिक होगा आत्मिक नहीं। आत्मिक प्रेममें भावों और विश्वासों की एकता अनिवार्य है। आनन्द श्रावक ने भगवान महावीर से व्रत अंगीकार किये और घर आकर अपनी स्त्री शिवानंदा से कहा कि तुम भी जाओ और व्रत अंगीकार करलो। शिवानंदा गई और व्रत लेलिए। इस प्रकार जहां आपस में प्रेम और धर्म की साम्यता होती है वहीं आनन्द होता है। सुदर्शन मनोरमा की जोड़ी भी ऐसी ही है। आगे क्या होता है सो यथावसर बताया जायगा।

राजकोट
२१—७—३६ का
व्याख्यान